प्रणय

देवनारायण द्विवेदी

प्रणय

.D

मौलिक उपन्यास



लेखक —

देवनारायण द्विवेदी



प्रकाशक—

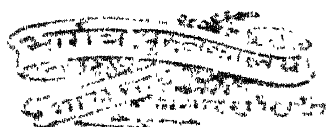
भार्गव पुस्तकालय,

गायघाट, बनारस सिटी ।



ीय संस्करण | अप्रैल १९३५ ई० मूल्य १।।)

प्रकाशक—



मुद्रक—

नारायण दास,

[illegible]-प्रेस, [illegible], मेरठ

प्रणयपर—

जगत् प्रसिद्ध मासिकपत्रिका 'माडर्न रिव्यू' की सम्मतिः—

Pranaya—A Novel, by Deo Narain Dwivedi. It is the second novel of Mr. Dwivedi, his first 'Kartavyaghat,' was published some time back. He has based his story on a true episode which happened to paint some scenes of our present-day social life, and he is partially successful. Notwithstanding some incsistecies and defects, the book, on the whole, forms interesting and wholesome reading.

February 1931

चाँदकी सम्मति—

प्रणय—लेखक श्री देवनारायण द्विवेदी।

"यह मौलिक उपन्यास द्विवेदीजीने एक सत्य घटनाके आधारपर लिखा है। इसमें स्वाभाविक गार्हस्थ्य चित्र अङ्कित है। कथानक हृदयग्राही और वर्णनशैली मजेदार है। साथ ही लेखक महोदय-ने देश और समाजकी परिस्थिति सुधारनेके लिए 'स्वरुचिपूर्ण कल्पनाशक्ति' से भी काम लिया है। फलतः यह उपन्यास भी है और परिस्थिति सुधारनेके लिए प्रोपेगण्डा भी। अर्थात् एक ही ढेलेमें दो शिकार किया गया है। इस सफलताके लिए लेखक महोदयको बधाई है!"

जुलाई सन् १९३१

भूमिका

वृक्ष-लताकी हरियाली नष्ट हो जाती है, जल-सिंचनके अभावसे; खड्ग-धार कुंठित हो जाती है, हाथ न लगानेसे; विद्याका लोप हो जाता है, आदान-प्रदानमें आलस्य अथवा कार्पण्य करनेसे; अश्व सदोष हो जाता है, अश्वारोहीके शैथिल्यसे या न फेरनेसे; ठीक इसी प्रकार भाव भी कुम्हिला जाता है, उसका उपयोग न करनेसे— व्यक्त न करनेसे।

आजसे कई वर्ष पहले हमें एक उपदेश-प्रद उपादेय सत्य घटना-का अनुभव हुआ था। इरादा था, उसे उपन्यास रूपमें जनताके समक्ष रखनेका। परमात्माकी यही अनुकम्पा क्या कम है कि अब-तब करते इतने दिनोंके बाद वह अभिलाषा पूर्ण हुई।

अवश्य ही उस नये भावकी उमंगमें यदि यह उपन्यास लिखा गया होता तो कुछ और ही होता; किन्तु सूखे भावका चित्राव-लोकन करना पाठकोंको नसीब न होता। अतएव इसके लिए शोक प्रकाश करना निष्प्रयोजन है। तब कुछ और होता, और अब कुछ और ही है। खिलने न पाकर असमयमें ही मुरझायी हुई पुष्प-

कलिका अपने पूर्व और भावी सौन्दर्यका स्मरण करा भावुक अवलोकन करनेवालोंके दिलमें कसकने भरा हुआ मीठा दर्द पैदा किये बिना नहीं रहती।

प्रस्तुत पुस्तक एक सत्य घटनाका आडम्बर-रहित नग्न चित्र है अवश्य; किन्तु यह कैसे कहा जाय कि उसको तूलिका फेरे बिना ही चित्रांकण किया गया है ? अथवा देश और समाजकी परिस्थिति सुधारनेके लिए स्वरुचि-पूर्ण कल्पनाशक्तिसे काम नहीं लिया गया है ?

पूर्ण-आशा है कि यह पुस्तक विज्ञ पाठक-पाठिकाओंके हृदयों में कोई अपूर्व वस्तु अङ्कित करके छोड़ेगी, और वह अङ्कन सदा अमिट रूपसे स्थित रहेगा। तभी हमारा परिश्रम भी सफल होगा।

साहित्याश्रम
पो० कछवा (मिर्जापुर)
ता० १८—६—१९२६ ई०

विनीत—
देवनारायण द्विवेदी

दोनों सिरीजमें निम्नलिखित

विशेषताएँ हैं:—

१—बहुत ही रोचक शिक्षाप्रद और सुन्दर जासूसी उपन्यास निकलते हैं।

२—महीन टाइपमें कम पृष्ठोंमें अधिक से अधिक मजमून दिया जाता है।

३—भाषा सरल, सुबोध और मुहाविरेदार रहती है।

४—पुस्तकोंकी छपाई, सफाईपर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता है।

५—रेलवे स्टेशनोंपर, प्रत्येक शहरकी अच्छी दूकानोंपर पुस्तकें प्राप्त होनेका प्रबन्ध है ताकि पाठकोंको पुस्तक प्राप्त करनेमें किसी तरहका कष्ट न हो।

६—प्रत्येक पुस्तकका मूल्य बहुत सस्ता रक्खा जाता है, और स्थायी ग्राहक बननेवालोंके लिए बहुत ही रियायत की जाती है।

बस जासूसी उपन्यासोंका आनन्द लेना हो तो तुरन्त नीचेके पतेपर पत्र और रुपये भेजकर स्थायी ग्राहक बन जाइये।

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट काशी।

नोट—पेशगी रुपयोंकी पुस्तकें पूरी हो जानेपर ग्राहकोंको फिर पेशगी भेजते रहना चाहिये।



पहला परिच्छेद

सामने भौंहें चढ़ाकर कहा,—मैं तुझे सैकड़ों बार समझा चुका कि जरा बुद्धिसे काम लिया कर। पर सब व्यर्थ। हाँ, किसीका हुक्म हो, तब तो! आज फिर दालमें नमक अधिक! तुझे तो घरमें बैठे रहना है, लेकिन लड़केको जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता है—वह पेटभर खा भी न सका, किसके बलसे काम करेगा? किसके भरोसे चिल्ला चिल्लाकर मजदूरोंसे काम करावेगा?

रमाकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे। नीचा सिर किये चिन्ता-मग्न हो अपने नाखूनसे जमीनकी मिट्टी खोदने लगी—अपने मुखसे एक शब्द भी न निकाल सकी।

इतनेमें सामने और भी कुपित होकर कहा,—यदि मुझे कायदे-से रहना हो तो ठीकसे काम किया कर, नहीं अपना रास्ता देख; पैदा किया, पाल-पोसकर सयाना किया, पढ़ाया-लिखाया; सोचा:

कि अब मेरे भी दिन सुखसे बीतेंगे। क्या पता था कि वह तो परदेशमें बैठा अपना पेट पाल रहा है, और मुझे सतानेके लिए तुमको यहाँ छोड़ गया। न एक पैसा भेजना, न घरकी सुध लेना,—वाह रे सपूत! उसका तो यह हाल, यहाँ बहूजीका मिज़ाज ही नहीं मिलता।

रमाकी घिग्घी बँध गयी थी; किन्तु साहस करके बड़े कष्टसे बोली,—क्या भाईजी बिना खाये ही चले गये माँ?

सास—नहीं, भाईजी तुझे खाकर गये हैं बेहया।

रमाने करुणा-कातर नेत्रोंसे सासकी ओर देखकर अत्यन्त नम्र शब्दोंमें कहा,—आज तो मैंने दालमें अन्दाज करके नमक छोड़ा था—माँ।

सास—क्या कहा, दुलहिनने अन्दाज कराया था?

रमाने सिर हिलाकर 'हूँ' का संकेत किया। तबतक बड़ी बहू (दुलहिन) लड़केको गोदमें लिए झनझनाती हुई सामने आ गयी। तमककर बोली,—झूठमें और नमक छोड़कर निर्दोष बनने चली है। मैं खड़ी होकर सब लीला देख रही थी माँ।

रमा यह झूठा लांछन सुनकर अवाक् हो गयी। कुछ बोल ही न सकी। सास यह कहती हुई वहाँसे उठकर चली गयी कि,—अबकी यदि वह पाजी किसी तरह यहाँ आ जाता तो मैं इन बहू रानीको उसके साथ ही यहाँसे विदा कर देती। मेरी जान तो बच जाती। ऐसी झंझट पालना मुझे पसन्द नहीं।

प्रणय

इस प्रकार सास तो चली गयी, किन्तु बड़ी बहू वहीं खड़ी होकर रमाको तरेरने लगी:—मानो वह घूरकर रमाको भस्म कर डालनेकी चेष्टामें थी। अन्तत निराश होकर उसे खंड खंड कर डालनेके लिए वाग्बाण छोड़ने लगी। जब उसका भी कोई फल न हुआ, तब न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती हुई वह भी चली गयी।

रमा मूर्तिवत् ज्योंकी त्यों वहीं बैठी सिसक रही थी। उस समय उसके चेहरेपर चिन्ताकी छाया न थी, बल्कि ग्लानिका अटल साम्राज्य था, उसके रुदनमें अपने भविष्य और कामनाका गहन अन्वेषण न था, वरं ग्लानिका अजस्र धारा-प्रवाह था। आज यदि उसके पति-देवता उसकी सुध-बुध रखते होते, चार पैसा कमाकर घर भेजते होते, तो क्या वह इतने शीघ्र घरवालोंकी नजरोंसे उतर जाती? लोग कहते हैं कि षोडश-वर्षीया नारीमें सारे भावोंका पूर्ण विकाश हो जाता है, किन्तु रमाका भोलापन देखकर यह मानना पड़ता है कि नहीं; उनमें कुछ युवतियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें सारे भावोंका संचार होते हुए भी उस अवस्थातक उनका पूर्ण प्रस्फुरण नहीं हुआ रहता—बचपनका बहुत-कुछ आभास उनमें पाया ही जाता है। यदि ऐसा न होता तो क्या भोली रमाके हृदयमें इस समय पतिकी मूर्ति अंकित न होकर माता-पिता और भाइयोंका चित्र अंकित होता!

मनुष्यके हृदयमें नाटकके पर्देकी भाँति विचारोंका परिवर्तन होता रहता है। रमाका रुदन तो बन्द न हुआ, किन्तु भावमें परिवर्तन

प्रणय

हो गया। [illegible] होना, अब उसके [illegible] कारण न रहकर [illegible] कारण बन गया। व्यक्तियोंके मायका [illegible] कमाकर पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ [illegible] अपनी [illegible] भूरि भूरि प्रशंसा आदि बातें एक-एककर उसके हृदयमें [illegible] करने लगीं। सुखकी स्मृति भी दुःख[illegible] कारण बन जाती है। पिता-गृहका वह स्वच्छन्द जीवन अब उसके लिए स्वप्न हो गया, माताका वह लाड़-प्यार दुर्लभ हो गया! स्त्रियोंके लिए ससुराल क्या कारा-गारसे भी अधिक भयानक है? सासका शासन क्या जेलकी बेड़ीसे कम दुःखप्रद है? यदि पति अविश्वासवान निकल गया तो उसमें किसका दोष? [illegible] माँ-बाप इस बातके अपराधी नहीं है? क्या निरपराधिनी रमाका तिरस्कार करना घोर अन्याय नहीं है?

रमाकी रुलाई क्रमशः रुकी, चिन्ताका मूल सवाल हुआ। पहले तो रमाकी सास उसे बहुत चाहती थी, फिर अब वह इतनी कठोर-ता क्यों दिखलाने लगी? क्या रमासे कोई भारी भूल हो गयी? किन्तु भूलें तो पहले भी रमासे हो जाया करती थी। सच बात तो यह है कि बुरे दिनमें कोई किसीका साथी नहीं—दुर्दिनमें मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। जब रमाके पतिदेव ही उसकाराया [illegible] प्रतीत होते हैं, तो फिर संसारमें उसके उनका कौन रह सकता है?"



दूसरा परिच्छेद

पं० शम्भूदयाल रामपुरके रहनेवाले हैं। इस समय इनकी पारिवारिक-वृत्ति, कृषि है। आजसे पचीस-तीस वर्ष पहले, इनकी आर्थिक-स्थिति बड़ी ही सन्तोष-जनक थी; किन्तु अब वह बात नहीं रह गयी है। हाँ, वाह्याडम्बर, अतिथि-सत्कार, धनाढ्य सगे-सम्बन्धियोंके साथ पारस्परिक व्यवहार-निर्वाह एवं वैवाहिक-व्ययमें अब भी किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ने पाया है। इन्हीं कारणोंसे पंडितजीकी अवस्था दिनपर दिन शोचनीय होती जा रही है। केवल खेती करनेके लिए थोड़ीसी जमीन-बची रह गयी है, बाकी जमीनपर महाजनोंका अधिकार है। इसके अतिरिक्त फुटकल देना भी पन्द्रह सहस्रके लगभग हो गया है, जिसका कई सौ रुपया सालाना सूद इन्हें देना पड़ता है। खेतीसे बचत होनेकी कौन कहे, सालमें चार-छः सौ रुपयेकी हानि होती है। इनके दो पुत्र और सात कन्यायें हैं। जिनमें एक कन्या अभी अविवाहिता है।

शम्भूदयाल द्वारपर एक चारपाईपर बैठे संस्कृतकी कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। किन्तु इनका चित्त गृहस्थीकी चिन्ता कर रहा था। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियोंके कार्य-वैपरीत्य समर्थसे उन्होंने पुस्तक समेटकर रख दी। खेतोंकी ओर टहल आना स्थिर किया।

प्रणाम

इतनेमें एक नौकरने आकर कहा,—अब भूसा [illegible] नहीं है; गाय, बछड़ा [illegible] आँगनमें [illegible]।

शम्भू—अच्छा, आज गाय बेचकर काम चला, कल भूसेका प्रबन्ध किया जायगा।

नौकर—[illegible] गाँव-गाँव, भूसा कहीं मिली भैया?

शम्भू—जितना दाम मिल सके, उतनेमें आजका काम निकाल, गायें भूखों न मरें। जा, जरा बाबूजीको बुला ला।

नौकर चला गया। शम्भुदयाल [illegible] टहलते हुए मकानकी ओर चले। [illegible] आनेकी आहट पाकर रमा आँगनमें [illegible] अपने घरमें चली गयी। शम्भुदयाल भी [illegible] घरमें चले। किन्तु भीतर जानेसे पहले ही दृष्टि दुर्गादासपर पड़ी। वह बाहर निकल आये। अवसर पाकर दुर्गादास बाहरमें हट गयी। शम्भुदयाल घरमें आकर पलँगपर बैठ गये। बोले—बच्चा भोजन करने गये?

ज्येष्ठ पुत्रका नाम लेना निषेध है। कहा भी है "आत्म नाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्य कलत्रयोः॥" इसीसे शम्भुदयाल अपने बड़े लड़के रामदयालका नाम न लेकर 'बच्चा' कहा करते थे।

स्वामीके मुखसे उक्त शब्द निकलते ही देवकीके मस्तकपर बल पड़ गये। बोली,—बच्चाको माँ-बापका बड़ा सुख मिल रहा है।

प्रणय

शम्भू—क्या किया जाय; आज मजदूर अधिक हैं, बिना किसी के रहे, वे कुछ भी काम न करेंगे—मजदूरी मुफ्तमें देनी पड़ेगी।

देवकी—अच्छी बात है, मजदूरी मुफ्तमें नहीं लगानी चाहिये, चाहे लड़केका शरीर भले ही गल जाय।

शम्भू—क्या अभीतक भोजन करने नहीं आये ?

देवकी—क्या आनेहीसे पेट भर जाता ?

शम्भू—साफ कहो क्या बात है। मेरी समझमें नहीं आता कि तुम क्या कह रही हो।

देवकी—समझमें कहाँसे आयेगा ? लड़का तो दिनभर मजदूरोंके साथ माथापच्ची करता है और घर यहाँ खानेके लिये आता है, तो छोटी बहूकी [illegible] खानेको भी नहीं देती। पर [illegible] कौन, वह तुम्हारी बेटी है न !

शम्भू—क्या उसने कुछ कहा भी तो ?

देवकी—आज [illegible] और कुछ नहीं [illegible] भी बहुत [illegible] तेज कर दिया। भोजन छोड़कर चला [illegible] [illegible] भी कम था—थोड़ी भी [illegible] [illegible] था, नहीं तो थालमें छोड़ देनेके बाद और [illegible] भी [illegible] [illegible] कौड़ीमें नींबू भी न दिया।

शम्भू—इसके बारेमें बहूको कुछ कहा तो नहीं न ?

देवकी—कोई कहकर ही क्या करेगा ? आप कह दीजिये सब तो।

शम्भू—अच्छा आने दो, लड़की है, थोड़ीसी [illegible] [illegible]

प्रणय

समझ में कुछ होता ठीक नहीं। अन्दाज ही तो है, अधिक हो गया, हो गया। आज रात, मैं तो यही सब सोचकर आया कि, इस समय चित्त विचलित है, चाहकर भी कहना चाहूँ, तो यहाँ तक और ही पहुँचूँगा आज।

देवकी पति-पत्नी मर्यादाको बहुत-कुछ समझती थी। स्वामीका उसपर जो अगाध प्रेम था, उसको भी वह भलीभाँति अनुभव करती थी। यदि और समय होता तो देवकी उनका आदर सत्-कार करती, किन्तु इस समय हठात् स्वामीका चिन्ताका हाल सुनते ही उसका हृदय इस प्रकार आतुर हो गया, जैसे ओलाका जल पड़नेसे उबलता हुआ दूध। विचार, वास्तवमें कोमल अवसादक है। देवकीका हृदय धड़कने लगा। स्वामीकी चिन्ता शीघ्र जाननेके लिए उसके चेहरे-पर कुछ कुतूहलपूर्ण अभिलाषाकी रेखायें खिंच गयीं। दिल करता था, पूछूँ; ख्याल करती थी, मुझसे हरकत करनेकी ताकत नहीं।

इतनेमें शम्भुदयालने कहा,—दो दिनसे भूख नहीं है। सर्वांगोंको कष्ट हो रहा है। कुछ समझमें नहीं आता कि क्या करूँ।

देवकीके हृदयका भार कुछ हलका हुआ। बोली,—इसीके लिए चिन्तित थे?

शम्भु—हूँ।

प्रणय

देवकीके दिलका रहा-सहा सन्देह भी विलुप्त हो गया। कई दिन पहले एक आदमीद्वारा स्वामी आनन्दकी बीमारीका समाचार मिला था। उसके दो ही तीन दिन बाद अच्छा होनेका समाचार भी किसी दूसरे आदमीसे मिल गया था। आज अचानक स्वामीको चिन्तित देखकर देवकीके हृदयमें मातृ-स्नेहका प्रबल स्रोत उमड़ पड़ा। सोचा, क्या आनन्दका कोई समाचार फिर तो नहीं आया? किन्तु जब स्वामीने अपनी चिन्ताका कारण कुछ और ही बतलाया, तब देवकीको शान्ति मिली।

जब विषादके धक्केसे क्रोधका शमन होता है, तब अल्प समयके लिए एक अपूर्व शान्ति उद्भूत होती है। इस समय देवकीके हृदयमें भी वही शान्ति उत्पन्न हुई। किन्तु उसकी इस शान्तिमें आँसू और पश्चात्तापका आभास था। आनन्दकी प्रतिमूर्ति उसके नेत्रोंके सामने नृत्य करने लगी। हाय, आनन्द न जाने किस दशामें होगा! क्या उसकी यह अवस्था परदेशमें रहनेकी है? बच्चेपर इतना कष्ट होना ठीक नहीं था। उसके हृदयकी इस समय क्या दशा होगी? थोड़ी देरतक इन्हीं विचारोंमें पड़ी रहनेके बाद बोली,—न हो किसीको भेजकर आनन्दको बुला लो। चिट्ठी भेजनेसे काम न चलेगा, क्योंकि चिट्ठियोंका तो वह जवाब ही नहीं देता। इधर कई दिनोंसे न-जाने क्यों हर वक्त उसपर चित्त लगा रहता है।

देवकीकी यह बात सुनकर शम्भुदयालको अपना आन्तरिक भाव छिपा लेना पड़ा। वास्तवमें वह कोई गहना लेनेके लिए

प्रणय

[illegible] । [illegible] कोई रकम [illegible] भला [illegible] लिया जायगा । किन्तु आज [illegible] तक दुकान ही [illegible] मिल गया । शम्भु—[illegible] हूँ । इतनी चिट्ठियाँ भी आयीं, [illegible] कुछ भी न हुआ । [illegible] चुप हूँ । [illegible] बाबूजीको [illegible] है, [illegible] सुनाते हैं । रुपयेका [illegible] कहा था । यदि ठीक हो गया, तो मैं [illegible] भेज दूँगा ।

स्त्री—कितने रुपयेकी आवश्यकता पड़ेगी ?

शम्भु—सौ रुपया भी रुपये हों तो काम चल जाय ।

स्त्री—तुम्हें कलकत्तेमें कितना भाड़ा लगता है ?

शम्भु—भाड़ा तो कोई अधिक नहीं है, लेकिन परीक्षाका मामला है कैसी पड़े, कैसी न पड़े—बिना कुछ रुपया पास रहे, काम नहीं चल सकता ।

स्त्री—अच्छा बाबूजीसे कहो, यदि ठीक हो गया हो, तब तो कोई बात ही नहीं है, नहीं तो मैं रुपये दे दूँगी ।

शम्भु—तो फिर तुम्हीं दे दो न—क्यों दूसरेके सामने सिर नीचा कराती हो । आठ-दस दिनमें तुम्हारे ये रुपये मैं अवश्य लौटा दूँगा ।

स्त्री—हाँ, और सब तो तुमने लौटा दिया है, यही बाकी है ।

शम्भु—और औरकी बात जाने दो, यह रुपया अवश्य तुम्हें वापस कर दूँगा—सच मानो । हाँ ।

प्रणय

स्त्री—हूँ, क्या मैंने गाड़ रक्खा है। जो कुछ था, वह तो बीन बटोरकर पहले ही उठा ले गये। शरीरपरके गहने भी तो नहीं रह गये। जाओ वासुदेवसे कहो, यदि बन्दोबस्त न हुआ होगा, तो कहींसे मँगा दूँगी।

शम्भु—वासुदेवने शायद ही प्रबन्ध किया हो। अच्छा, जाता हूँ, तुम बन्दोबस्तमें रहना।

स्त्री—बस, अब तो तुम्हें बनाना सिखा।

शम्भु—नहीं नहीं बनानेकी बात नहीं है।

इतनेमें दाईने आकर कहा,—बाहर कोई आया है।

शम्भुदयाल यह कहते हुए चल गये कि, वासुदेव ही आये होंगे।—बैठकमें जानेपर मालूम हुआ कि वासुदेव ही हैं। बोले,—कहो भाई काम हुआ?

वासुदेव—जी हाँ, काम तो हो जायगा; पर सूद डेढ़ रुपये सैकड़ेसे कम नहीं करता। कहता है कि, चार हजार रुपया दे दूँगा। पर डेढ़ रुपया सैकड़े माहवारी सूद लूँगा।

शम्भु—रुपयेका प्रबन्ध तो घरमें ही हो गया है, लेकिन इतनेसे काम न चलेगा।

वासुदेव—क्या भाभीजीने दिया है?

शम्भु—हाँ। मैं तो समझता था कि घरमें अब रुपये न होंगे, लेकिन मिल गये।

वासुदेव—वाह वाह! आप भी खूब समझते हैं। बड़े घरोंकी

यही तो विशेषता है। मैं कहता हूँ, अभी कुछ नहीं तो आपके पासमें ४०-५० हज़ार रुपये नकद निकल सकते हैं।

शम्भु—धीरे-धीरे सब रुपये मैंने ले लिये न! नहीं तो इतने रुपये अवश्य निकलते।

वासुदेव—अच्छा, तो फिर अब क्या विचार है? मेरी रायमें तो उनसे रुपया न लीजिये, क्योंकि सूद बहुत कड़ा है। पीछे जैसा होगा, देखा जायगा।

शम्भु—नहीं नहीं, रुपयेका ले लेना ही ठीक है। इस साल विवाह भी होने वाला है, कहीं ऐसा न हो कि मौकेपर रुपया न मिले। उनसे जाकर बातचीत पक्की कर आओ।

"अच्छी बात है" कहकर वासुदेव चले गये।



तीसरा परिच्छेद

जाड़ेकी प्रातःकालीन धूप अमीर-गरीब सबको एकसी प्यारी लगती है। कोई काम न रहनेके कारण रमा छतपर बैठी भर्तृहरि-कृत "नीति शतक" पढ़ रही थी। इतनेमें पड़ोसकी दो-तीन किशोरी बालिकाएँ भी वहाँ आ जुटीं। रमाका अध्ययन बन्द हो गया। एकने पूछा,—क्यों भाभी, अब क्यों उदास हो?

दूसरीने कहा—भानू भैया कब आवेंगे?

प्रणय

शुभ्र-वदना रमा मुस्कराकर चुप रह गयी। तबतक एकने रमाको खोदकर कहा,—कब आवेंगे बोलो न?

हास्य, झिझक और किंचित् लज्जाकी रेखाके साथ रमाने कहा,—तुमलोग आपसमें बातचीत करो, नहीं तो मैं यहाँसे भाग जाऊँगी। देखो भई, मैं हाथ जोड़ती हूँ, तुमलोग मुझे व्यर्थ न छेड़ो।

"मैं भी हाथ जोड़ती हूँ भाभी, बतला दो, भैया कब आवेंगे?

"न मानोगी?"

"न बतलाओगी?"

रमाकी दृष्टि लज्जाके भारसे झुक गयी। उसने मस्तक हिलाकर उत्तर दिया,—नहीं।

"अच्छा यह बतलाओ कि भैयाके आनेपर मुझे क्या दोगी?"

रमाको अवसर मिला। बालिकाकी ओर दृष्टि करके मुस-कराती हुई बोली,—गुलाबके फूलकी तरह कोमल और अत्यन्त सुन्दर एक वर तुम्हारे लिए ढूँढ़वा दूँगी। बस न?

रमाकी यह बात सुनकर अविवाहिता किशोरी बालिका संकु-चित हो गयी। विकसित कमलिनीपर तुषार पड़ गया। पाठक समझ गये होंगे कि यह अविवाहिता किशोरी, रमाकी ननँद लगती है।

रमाका दिल धड़का। वह फिर कुछ कहना ही, चाहती थी कि, इतनेमें वहाँ सास आ गयी। साँसको देखते ही सबकी सब वहाँसे

जाने लगी। उसके साथ ही उसकी सहेलियाँ भी चल पड़ीं। देवकीने कहा,—इतना दिन चढ़ आया, हाथ-मुँह धोया कि नहीं बेटी?

सासके उपर्युक्त शब्दोंमें पहलेकी-सी सरसता थी। आज यह परिवर्तन क्यों? क्या देवकी अब फिर रमाको पहलेकी भाँति स्नेह-भरी दृष्टिसे देखेगी? सम्भव है, देवकीको अपनी भूलपर खेद हुआ हो। रमा निरपराधिनी है। उसे कोप-भाजन बनाना वास्तवमें एक भारी भूल है। संसार-तत्व-प्रविष्टा एवं सरल-स्वभावा रमा, सासकी प्रेम-सनी बात सुनकर आनन्दित हो उठी। बोली,—अभी तो बहुत सबेरा है माँ।

सास—सबेरा कहाँ है? कुछ पानी पी ले।

रमा अपनी सासका यह स्नेह-भाव सहन न कर सकी। उठी, और पीछे-ही-पीछे सासके कमरेमें चली गयी। जल पीनेके बाद दोनोंमें प्रेम-पूर्वक बातें होने लगीं।

"इतना दिन चढ़ आया, हाथ मुँह धोया कि नहीं बेटी"—यह बात दुलहिनके कानोंमें पड़ गयी थी; क्योंकि उसी समय वह भी ऊपर आ रही थी। ऊपरकी बात सुनकर बाण-विद्धा हरिणीकी भाँति तुरन्त ही लौट पड़ी। सीधे अपने कमरेमें चली गयी। सोचने लगी,—यह बात है! छिपे-छिपे तो इतना स्नेह दिखलाया जाता है, और मेरे सामने कुछ और ही ढंगकी बातें होती हैं। देखती हूँ, यह स्नेह कितने दिनोंतक रहता है।

धर्मदत्त कमरेमें आये। स्त्रीको असमयमें लेटी देखकर चकित

हुए। धीरेसे पलँगपर बैठ गये और स्त्रीके मस्तकपर हाथ रखकर पूछने लगे,—क्यों कैसी तबीयत है?

दुलहिनने रूखे स्वरमें कहा,—अच्छी है।

धर्म०—तो फिर इस समय क्यों पड़ी हो?

दुल०—तो क्या करूँ, पानी पीऊँ!

धर्मदत्त समझ गये कि दालमें कुछ काला अवश्य है। क्योंकि उनके लिए आजका यह मान कोई नया नहीं था। किन्तु मामला क्या है, यह जाननेकी चेष्टा धर्मदत्तने इस समय नहीं की। सोचा, इस आवेशमें कुछ पूछना ठीक नहीं है। इसीसे उन्होंने दिलबहलावकी बात प्रारम्भ की। कहा,—घरमें किसीके साथ झगड़ा होता है, तो उसका फल तुम मुझे अवश्य चखाती हो। क्या दिल्लगी है!

बात तो कही गयी और उद्देश्यसे, पर परिणाम कुछ और ही हुआ। दुलहिनने विशेष उदास होकर कहा,—हाँ, मैं तो रातदिन सबसे झगड़ा किया ही करती हूँ। घरके और लोग तो मुझे झगड़ालू कहते ही थे, एक तुम्हीं बाकी थे, सो तुमने भी आज झगड़ालू समझ लिया, चलो छुट्टी हुई।

अबतक धर्मदत्तका यह अनुमान था कि कुशल मनुष्य अपने कथनद्वारा किसी दूसरे मनुष्यकी रुचिको अपने अनुकूल बना सकता है—यदि उस रुचिमें कोई विशेष स्वार्थपरता न हो। किन्तु आज यह भी निश्चय हुआ कि नहीं, कभी-कभी विपरीत रुचि भी उत्पन्न

हो जाती है, जहाँ निःस्वार्थ कृतज्ञता एवं निःश्रेय-बुद्धिसे काम क्यों न लिया जाय। स्वामीको प्रसन्न करनेके लिए फिर बोले,—मैंने यों ही दिल्लगी की थी, और तुमने उसकी बात अपने दिलमें गढ़ ली। मैंने तुम्हें और भी कभी अनाड़ापन कहा था कि आप हों?

दुलहिनका परिवर्तित हृदय कुछ शान्त हुआ। किन्तु वह कुछ बोली नहीं।

धर्मदत्तने फिर पूछा,—क्या माँसे आज फिर कुछ बातचीत हुई है?

दुल—नहीं।

धर्म—तो फिर?

दुल—यों ही।

धर्म—बिना कारण ही?

दुल—अकारण ही कोई काम होता है?

धर्म—इसीसे तो पूछता हूँ। बतलाओ न?

हृदयका भाव स्वामीसे व्यक्त करनेके लिए ही तो दुलहिन मान किये लेटी थी। किन्तु प्रसंगतः बात ही कुछ ऐसी चल पड़ी कि वह अबतक न कह सकी। इसमें उसका क्या दोष? सोचने लगी, प्रसंग तो अब भी नहीं आया। किन्तु कहीं ऐसा न हो कि फिर बात दूसरी ओर घूम जाय। इसलिए अब कुछ बोलना ही ठीक है। बोली,—मैं यही सोच रही हूँ कि संसारमें, कैसे-कैसे स्वभावके लोग हैं! इन दिनों वह मेरे सामने तो बहुत

ऐसी बातें करती थीं कि जान पड़ता था खूब रूठी हैं; किन्तु जब आज मैंने उनकी बातें सुनीं, तो और ही बात मालूम हुई। भानू जब पढ़ता था, तब घरमें यह और बाहर वह, दोनों ही फूले नहीं समाते थे। "भानू यह पैदा करेगा, वह पैदा करेगा डिप्टी होगा, जज होगा"! सुनते सुनते नाकों दम आ जाता था कि तुम्हारा भानु राजा हो जायगा तो किसीको घरमें रहने भी दोगी या नहीं? किन्तु भगवान सबका गर्व चूर करते हैं। भानूने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया! इनलोगोंका वह ताना मारना टूट गया। हुँ:! क्या मैं समझती नहीं थी? कहनेका मतलब यही रहता था न कि तुम नहीं पढ़े हो, या और कुछ? अच्छा तुम कम पढ़े हो, तो इसमें ताना मारनेका क्या काम? तुम्हारे साथ दुःख तो मैं भोगूँगी, दूसरोंसे मतलब? भानूकी कमाई-धमाई सब दिखलायी पड़ गयी। देख लेना यही भानु इनको जूता लेकर पीटे..."

धर्मदत्तने बात काटकर कहा,—चुप चुप, सास हैं, बड़ी हैं ऐसा नहीं कहना चाहिये।

दुलहिनने उत्तेजित होकर कहा,—जब उनमें बड़प्पन नहीं है तो बड़ी होनेसे क्या होगा? इसीसे मैं तीखी हूँ। नहीं तो क्या छोटी बहूकी तरह चिकनी-चुपड़ी बातें करके मैं उन्हें कठ-पुतली नहीं बना सकती थी? मैं सब जानती हूँ। मालूम है, इधर बहूसे क्यों मेल हो गया? इसलिए कि जिसमें भानू अपनी कमाई घरवालोंको न देकर सब उन्हें दे। कौन गया बुलानेके लिये!

प्रणय

धर्म—अभी तो कोई नहीं गया।

दुल—तो फिर तुम्हें यह भी नहीं मालूम है।

धर्म—मालूम है, अभी कोई नहीं गया। शायद माँकी तसल्ली रखनेके लिए बाबूजीने कह दिया है कि आदमी भेज दिया गया।

दुल—तुमसे छिपाकर आदमी भेजा गया होगा।

धर्म—बाबूजी मुझसे कोई बात नहीं छिपाते।

दाई बरामदेमें खड़ी सब सुन रही थी। देवकीके पास आकर उसने सारा हाल कह सुनाया। सुनते ही देवकीके चेहरेपर लालिमा छा गयी। बिना कुछ बोले मन-ही-मन सोचने लगी,—रुपया लेकर भी कोई आदमी भेजा नहीं गया। क्या भानू इतना चित्तसे उतर गया?

देवकी इसी उधेड़-बुनमें लगी थी कि शम्भूदयाल पासमें आ गये। बैठे भी नहीं कि देवकीने क्रोधयुक्त कर्कश स्वरमें कहा, भला मुझसे झूठ बोलनेकी क्या जरूरत थी?

शम्भू—कौनसी बात?

देवकी—भानुको बुलानेके लिए किसे भेजा?

इतना सुनते ही शम्भूदयाल भाँप गये कि पोल खुल गयी। पर वह भी बात बनानेमें एकही गुरुघंटाल थे। बातें तो उन्हें बात-बातपर बनानी पड़ती थीं। यदि इस विद्यामें कुशल न होते, तो उनका काम ही न चलता; न तो महाजनोंके तकाजे से उनकी जान ही बचती और न एक पैसा पास ही कहींसे

मिलता। तो फिर ऐसे आदमीके लिए भला देवकी जैसी स्त्री-के दिलका सन्देह दूर करनेमें कितनी देर लगती है? उन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया,—चौबेपुरके एक आदमीको।

देवकीने कहा—क्या गाँवका कोई आदमी भेजनेके लिए नहीं मिला कि वहाँसे दस कोस दूरका आदमी भेजा गया? मैं सब जानती हूँ, दुधमुँही बच्ची नहीं हूँ।

शम्भू—इसका क्या मतलब?

देवकीने अन्यमनस्क होकर कहा,—कुछ नहीं।

शम्भू—कुछ तो जरूर है, छिपाती क्यों हो?

देवकी कुछ न बोली। शम्भूदयालने फिर पूछा,—क्यों, बोलो न?

देवकीने तीखे स्वरमें कहा,—क्या बोलूँ? उस दिन तो कहा था कि रामदीन कारिन्देको भेजा है और आज कहते हो कि चौबेपुरके एक आदमीको। सीधे यह क्यों नहीं कहते कि कोई नहीं गया है। इतना......

शम्भूदयालने बात रोककर कहा,—मेरी बात सुनो, तुमने समझनेमें भूल की है। बात यह है कि जो आदमी भेजा गया है, उसका नाम भी यही है। हाँ मैंने गाँवका नाम नहीं बतलाया था, इसीसे तुमने अपने रामदीनको समझ लिया—पर इसमें तुम्हारी भूल नहीं। किन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि तुम्हें इतने जल्द मुझपर अविश्वास नहीं करना चाहिए था,—दुबारा पूछनेहीसे तो

सन्देह दूर किया जा सकता था। इसका मुझे दुःख है कि तुमने मेरा विश्वास नहीं किया।

शम्भूदयालकी वाक्चातुरी काम कर गयी! अन्तिम बात सुनकर देवकी मन-ही-मन लज्जित हुई। उसे अभिमान था कि आज स्वामीको अपनी झुठाईके लिए उसके सामने संकुचित होना पड़ेगा, किन्तु ठीक उसका उलटा हुआ। अब देवकी अपनी सफाई देनेके लिए शब्द ढूँढ़ने लगी। नीचा सिर किये बोली,—मुझे यह नहीं मालूम था कि अपने लड़के भी झूठ बोलते हैं। बच्चा कहते थे कि अभी कोई नहीं भेजा गया है। इतना कहकर देवकी चुप हो गयी और शोक-सन्तप्त हृदयसे एक लम्बी साँस छोड़ी।

शम्भूदयालको अपनी सफलतापर प्रसन्नता तो अवश्य हुई, किन्तु उतनी नहीं जितनी कि होनी चाहिये। कारण यह है कि जहाँसे प्रसन्नताका उद्रेक होता है, वहाँ मिथ्यात्वका धब्बा लगा हुआ था। मिथ्यावादी मनुष्यको अपनी एक झुठाई छिपानेके लिए बहुतसी मिथ्या बातें गढ़नी पड़ती हैं और मिथ्यावादीकी वाक्चातुरीसे कभी-कभी सत्यवादीको ही लज्जित होना पड़ता है। वास्तवमें शम्भूदयालने अबतक ज्ञानचन्दको बुलानेके लिए किसीको भेजा नहीं था। यही कारण है कि स्त्रीने अविश्वास किया, यह बात सिद्ध हो जानेपर भी उन्होंने स्त्रीके हृदय-परितापको दूर करनेके लिए मीठे शब्दोंमें कहा,—तुम्हारा

हृदय बड़ा ही कोमल है, बहुत जल्द लोगोंकी बातोंपर विश्वास कर लेती हो। भला तुमसे यह बात कही किसने ?

स्वामीके प्रेममय वचनसे देवकीको कुछ शान्ति मिली। क्यों न हो देवी-देवता भी तो अपनी प्रशंसा सुनकर ही प्रसन्न होते हैं—शान्त होते हैं। फिर देवकीको यदि शान्ति मिली तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या! उसने शान्त भावसे कहा,—दाईसे मालूम हुआ कि बच्चा कहते थे। इसीसे तो कहती हूं कि इस युगमें बेटे भी बापपर झूठा लांछन लगानेमें नहीं हिचकते। किसी दूसरे आदमीके मुँहसे सुनकर मैं कदापि विश्वास न करती।

अस्तु। इसके बाद स्त्री-पुरुषमें आज कोई विशेष उल्लेख-नीय बात नहीं हुई। दो-चार दिनके भीतर ही शम्भुदयालने ज्ञान-दत्तको बुलानेके लिए आदमी भेज दिया।

चौथा परिच्छेद

कई दिन बीत गये, न तो ज्ञानदत्त ही आये और न उनका कोई समाचार ही मिला। इससे रमाके औत्सुक्य भावमें निराशाका संचार हो गया। उसका हृदय चिन्ता-ग्रस्त हो गया। खाना-पीना तो स्वामीके आनेकी प्रसन्नतामें पहले ही बहुत कम

हो गया था, किन्तु आह्लाद था; अब वह भी जाता रहा। एक पलका बीतना उनके लिए युगसा प्रतीत होने लगा। यों तो हिन्दू-धर्ममें पति-पत्नी सम्बन्ध ही ऐसा है कि स्वाभाविक ही वियोग-वेदना एक दूसरेको असह्य हो जाती है, जिसपर जो दाम्पत्य-जीवन सत्य-स्नेह-पूर्ण होता है, उसका तो कुछ कहना ही नहीं है। रमा और ज्ञानदत्तका जीवन भी ऐसा ही था। दोनोंका एक दूसरेके प्रति सत्य-प्रेम था। आधुनिक समाजकी वैवाहिक प्रथासे अत्यन्त पीड़ित होकर शिक्षित जनता इस बातका प्रचार करनेके लिए बेतरह व्याकुल हो रही है कि कर्मठोक, आँखमुँदा तथा अयोग्य विवाह-प्रचलन हटे और लड़के-लड़कियाँ अपनी रुचिके अनुकूल सम्बन्ध करके अपने जीवनको सुखी बनावें। लोगोंके लिए यह स्वप्न है, पर रमा और ज्ञानदत्तके लिए यह संयोग अनायास ही जुट गया था। इसलिए दोनोंका आह्लाद-जनक तथा विनोद-पूर्ण एवं वृत्तान्त भी जाननेके लिए पाठकगण उत्सुक होंगे।

हिन्दी-मिडिल पास करके ज्ञानदत्त काशीमें अंग्रेजी पढ़ने लगे। उस समय उनकी अवस्था तेरह वर्षकी थी। रमेश नामक सम्पन्न कायस्थ-बालकसे इनकी घनिष्ट मैत्री हो गयी। आजकल बहुधा स्कूली छात्रोंमें व्यभिचारपूर्ण मैत्री होती है, किन्तु ज्ञानदत्तकी मैत्रीमें यह बात न थी। कारण यह था कि ज्ञानदत्तको इस अल्पावस्थामें ही कुमित्रोंसे बचनेकी शिक्षा बड़े सुन्दर ढंगसे मिली

थी। इधर रमेश भी बड़ा पवित्र और अपने माँ-बापके कड़े पहरेमें रहकर प्रसन्न रहनेवाला बालक था। स्कूलसे छुट्टी होनेपर दोनों ही एक जगह बैठकर अध्ययन करते थे। अधिकतर बैठक रमेशके घर हुआ करती थी। कभी-कभी तो बालक ज्ञानदत्त खा-पीकर वहीं सो भी जाता था—पर रमेशसे अलग। दो लड़कोंका एक जगह सोना भी आचार-भ्रष्टताका कारण होता है। रमेशके मकान-के मकानके बगलमें पं० अमरनाथ पांडेय का मकान था। मुहल्लेमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, यहाँतक कि लोग इनका नाम न लेकर 'सरकार' कहा करते थे। यह पेंशनर डिपुटी कलेक्टर थे। 'सरकार', आचरणके बड़े पवित्र थे और बालकों-को स्नेह-दृष्टिसे देखते थे। पास-पड़ोसके लड़के इनके पास आया करते और यह बड़े प्यारसे उन्हें पढ़ाया करते। एक छोटी कन्या, वृद्धा स्त्री तथा दो-तीन नौकरोंके अतिरिक्त पण्डितजीके मकानमें और कोई नहीं था। पण्डितजीके पास लाखोंकी सम्पत्ति थी और गवर्नमेण्टसे भी चार सौ रुपये मासिक पेंशन पाते थे। इसलिए दिनभर पूजा-पाठ तथा पठन-पाठनके सिवा कुछ न करते। ज्ञानदत्त और रमेश मित्रद्वय भी यहाँ पढ़ा करते।

जब दोनों लड़के एट्थ क्लास-(आठवें दर्जे) में पढ़ते थे, तब एक दिन रमेशने ज्ञानदत्तको एक पत्र दिया। पोष्टआफिसकी मुहर देखकर ज्ञानदत्तने समझ लिया कि यह पत्र घरका है। आतुर-ताके साथ उसे खोलकर पढ़ा और फिर लिफाफेमें भरकर जेबमें

रखना चाहा; तबतक रमेशने हाथ पकड़ लिया और कहा,—यह क्या? ऐसी कौनसी गुप्त बात है कि तुम मुझे बिना सुनाये ही छिपानेकी चेष्टा कर रहे हो?

ज्ञानदत्तने हंसते हुए हाथ झटककर छुड़ाना चाहा; जब न छूटा, तब कहा,—घरकी चिट्ठी है, इसे सुनकर क्या करोगे। कोई सुनाने योग्य बात नहीं है।

रमेशने व्यंग-भावसे कहा,—नहीं जी, भला घरकी चिट्ठीमें कोई सुनाने योग्य बात होती है? ओजो संग्रेमें सुनाते हो या नहीं?—यह कहते समय बल-पूर्वक छीननेका भाव रमेशके मुखपर दिखलायी पड़ा।

ज्ञानदत्तने ईषत् हास्य-युक्त स्वरमें कहा,—अच्छा भाई छोड़ो, सुना दूं।

रमेशने हाथ छोड़ दिया। ज्ञानदत्तने पत्र खोलकर फिर न-जाने क्यों हसते हुए उसे बन्द कर लिया। कहा,—जाने दो यार क्या करोगे सुनकर।

अभीतक तो रमेश कौतूहलवश पत्र सुननेके लिए हठ कर रहा था, किन्तु रूपाकी बात कहते समय ज्ञानदत्तकी मुखाकृति देखकर वह जान गया कि हो-न-हो इस पत्रमें अवश्य कोई रहस्य-पूर्ण समाचार है, जरूर सुनना चाहिए। मस्तक सिकोड़कर कहा,—फिर शैतानी? अच्छा बच्चू, क्या अब कोई काम न पड़ेगा? या अब चिट्ठी ही न आवेगी!

यह कहकर रमेश बनावटी रुष्टता दिखाकर जाने लगा। ज्ञानदत्तने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा,—लो लो, सुनो।

रमेश बैठ गया। ज्ञानदत्त पढ़ने लगा। दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर ठमक गया और तुरन्त ही फिर पढ़ने लगा। ज्ञानदत्तकी रुकावट तथा हँसी रोकनेकी चेष्टासे रमेश समझ गया कि इस पत्रकी कुछ बातें इसने छिपा लीं—पढ़ीं नहीं। इसलिए पत्र समाप्त होने-न-होते ही उसने झपटकर पत्र छीन लिया। ज़ोरसे पढ़ने लगा:—

"बेटा ज्ञानू,

ईश्वर तुम्हें चिरायु करें। आनेके लिए लिखकर फिर आये क्यों नहीं? अब ऐसा कभी मत लिखना। क्योंकि इससे व्यर्थ ही चिन्ता हो जाती है। विशेष हाल यह है कि तुम्हारा विवाह ठीक हो चला है, बहुत जल्द कोई आदमी तुम्हें बुलानेके लिए जायगा। उसके साथ चले आना। दर्ज़ीसे तगादा करके कपड़े ले लेना। यदि और कोई काम हो तो अभीसे चेष्टा करके कर डालो, ताकि आदमी जानेपर तुम्हें रुकना न पड़े।

शुभाकांक्षी—

शम्भुदयाल द्विवेदी

पत्र समाप्त करके रमेशने कहा,—क्यों भाई, इसमें छिपानेकी कौनसी बात थी?

ज्ञानदत्तने संकुचित होकर निगाहें नीची कर लीं। संकोचके

कारण वह अपने मित्रसे भी यह बतलानेका साहस न कर सका कि छिपानेकी बात थी, वही, विवाहका ठीक होना।

रमेश तो शहरका रहनेवाला था, उसे क्या पता कि देहातके लड़के वैवाहिक चर्चासे कोसों दूर भागते हैं। विवाह उनके लिए हौआ है और इस संकोचमें वे अपना गौरव समझते हैं। पूर्व संस्कारके कारण अज्ञानावस्थाके ब्याहमें भी बच्चोंको भीतरसे प्रसन्नता होती है, पर बाहरसे वे कुछ और ही भाव दिखलाते हैं। आखिरकार आनन्द भी तो देहातका ही रहनेवाला है। यद्यपि वह इस बातको नापसन्द करता है, तथापि विचार-निर्बलताके कारण उसे मानता ही है। वह मनमें सोचने लगा वाहरे वर्तमान हिन्दू-समाज! तू व्यर्थ और निरर्थक शिक्षाएँ बच्चोंके मस्तिष्कमें भरकर समय और शक्तिका अपव्यय कर रहा है। यदि अनुकूल अवस्था होनेपर विवाह किया जाता तो भला आनन्द जैसे पढ़े-लिखे बालक विवाह-लज्जामें अपनी आत्माको निश्चल क्यों बनाते? जब पन्द्रह वर्षकी अवस्था होनेपर शिक्षित आनन्दको इतनी लज्जा है तो फिर पाँच-सात वर्षके अशिक्षित बच्चोंकी विवाहके समय क्या दशा होती होगी, इसे कौन नहीं समझ सकता! यदि यही दशा रही तो कुछ दिनोंके बाद विवाहका नाम सुनकर बच्चे मारे लज्जाके कुएँमें कूदने लग जायँगे।

बालक आनन्दका सोचना बहुत ठीक है, किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि नागरिक-जीवन व्यतीत करनेवाले लड़कोंका

व्यवहार उक्त विषयमें बहुत उचित है। शहरके लड़के तो और भी नष्ट-भ्रष्ट होते हैं। वे तो अत्यधिक निर्लज्ज हो जाते हैं। बन-यात्राके समय भगवान रामचन्द्रको महारानी सीतासे माता कौशल्याके सामने कुछ कहनेकी आवश्यकता पड़ी थी। गोस्वामी तुलसीदास-जीने रामायणमें लिखा है,—"मातु समीप कहत सकुचाहीं।" यह भाव शहरके स्त्री-पुरुषोंमें कहाँ है? इसलिए यदि ऐसी ही निर्लज्जता बढ़ती गयी तो कुछ ही दिनोंमें शहरवालोंका पशुवत व्यवहार हो जायगा, उन्हें किसीके सामने लज्जा मालूम ही न होगी। कहनेका तात्पर्य यह कि 'अति' सर्वत्र वर्जित है। कहावत है'—"न अति वर्षा, न अति धूप। न अति बोलब, न अति चूप॥"

रमेशने वह पत्र ज्ञानदत्तको दे दिया और हर्षित होकर पूछा,-क्यों ज्ञानू, तुम्हारे बाबूजीने कहाँ विवाह स्थिर किया है, जानते हो?

अबकी ज्ञानदत्तने ढाढ़स बाँधकर निषेधात्मक सिर हिलाया। ज्ञानदत्तने उत्तर तो दे दिया, किन्तु मन-ही-मन बहुत पश्चात्ताप किया; मानो उससे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया। यदि दोनों मित्रोंमें इस ढंगकी कुछ भी बातें इससे पहले हुई होतीं तो ज्ञानदत्तको इतनी लज्जा न मालूम होती। आजसे पहले तो इन दोनोंमें पढ़ने-लिखने, तर्क-वितर्क करनेके सिवा और किसी प्रकारकी बात ही नहीं हुई थी; क्योंकि दोनों ही समयके सदुपयोग करनेका अभ्यास बढ़ा रहे थे। यदि कभी एकके मुँहसे कोई व्यर्थ बात निकल पड़ती

तो दूसरा तुरन्त रोक देता था। इसपर दोनों ही सतर्क रहा करते थे। यही कारण है कि ज्ञानदत्तको इतना संकुचित होना पड़ा।

अब आजसे रमेशकी छेड़छाड़ शुरू हो गयी, किन्तु अश्लीलता-पूर्ण नहीं। दो ही चार दिनोंमें ज्ञानदत्त भी कुछ ढीठ हो गया। सन्ध्याके समय स्कूलसे छुट्टी मिलनेपर वह भी आज रमेशके घर आया। शौचादिसे निवृत्त होकर दोनोंने जलपान किये, बाद पण्डितजीके यहाँ पढ़ने चले गये। पण्डितजी पानके गहरे आदी थे; पढ़ाते समय पनडब्बा उठाया तो उसमें पान न देखकर लड़की-को पुकारा,—बिटिया! चार-छः खिल्ली पान तो भेज दो।

इस लड़कीको पण्डितजी 'बिटिया' कहा करते थे। इसलिए मुहल्लेके और लोग भी उसे इसी नामसे पुकारते थे। लड़कीका असली नाम बहुत कम लोगोंको मालूम था। उस समय घरमें कोई नौकर नहीं था, इसलिए बिटिया स्वयं ही पान लेकर आयी। निपुणता दिखलानेके लिए बीड़े खूब सजाकर लगाये गये थे, इससे पण्डितजी समझ गये कि इसीके हाथके लगे हुए पान हैं। ठीक ही है, नवसिखुए खूब चुनकर अक्षर लिखते हैं, पर सिद्ध-हस्त लेखक सरपट दौड़ाता है। एक खिल्ली पान मुखमें डालते हुए बोले,—यह पान तुमने लगाया है?

बिटियाने सलज्ज भावसे मधुर स्वरमें कहा,—जी।

पण्डितजीने प्रसन्न होकर कहा,—वाहरी नातिन, तुम तो बड़ी स्यानी बिटिया हो।

प्रणय

बिटिया और भी संकुचित हो गयी। नीची दृष्टि किये बोली,—नानाजी, आज मेरे पास कागज बिलकुल नहीं है।

पण्डितजीने विह्वल होकर कहा,—कागज नहीं है? अच्छा कोई आदमी आने दो, मैं तुम्हें ढेरसा कागज मँगा दूँगा।

लड़की प्रसन्न होकर चली गयी। ज्ञानदत्तको आज मालूम हुआ कि यह पण्डितजीकी पुत्री नहीं है। कुछ देरके बाद ज्ञानू और रमेश पढ़कर वापस लौटे। रास्तेमें रमेशने बड़े गम्भीर और पवित्र भावसे कहा,—ज्ञानू, तुम्हारा विवाह यदि इसी बिटियासे हो जाता तो बड़ा अच्छा होता। क्या तुम कोई तरकीब नहीं लगा सकते?

इतना सुनते ही ज्ञानूके हृदयकी निगूढ़ अन्तरालमें छिपी हुई वेदना फुंकार मारकर प्रकट हो गयी। उसके हृदयमें बिटियाके प्रति स्वाभाविक ही स्नेह था। किन्तु वह स्नेह किसलिए था, कहा नहीं जा सकता। हाँ इतना अवश्य था कि उसमें वैवाहिक वासना रंचमात्र भी न थी। यह स्नेह-भाव रमेशको भी ज्ञात नहीं था। मनुष्यके अन्तःकरणमें ऐसी बहुतसी बातें समय-समयपर सूक्ष्मरूपसे उत्पन्न होकर स्थिर हो जाती हैं, जो मित्रसे भी नहीं कही जातीं और कभी विराट्‌रूप धारण कर लेती हैं। ठीक ऐसी ही दशा ज्ञानूकी थी। बिटियाको देखनेकी बिलकुल साधारण चाह ज्ञानूके दिलमें सदा बनी रहती थी, पर उसे न देख पानेपर कोई कष्ट भी नहीं होता था। स्नेह भी अधिक संघर्षसे, अधिक चिन्तनसे परिपुष्ट

होता है। ज्ञानूके स्नेहमें ये दोनों बातें न थीं; उसके स्नेहमें पवित्रता थी, निःस्वार्थता थी, अकपटता थी—और थी न-जानें कौनसी बात! स्नेहमें व्याकुलता, आतुरता, ग्लानि, प्रसन्नता, आकर्षण और उन्मत्तताकी मात्रा विशेष होती है, पर ज्ञानूके इस स्नेहमें कोई भी बात नहीं थी; थी केवल प्रसन्नता—सो भी बहुत ही साधारण। जब कभी चिटिया सामने पड़ जाती, तो ज्ञानूके भीतर अचानक और अनिर्वचनीय प्रसन्नता उत्पन्न हो जाती थी। किन्तु इसका रहस्य ज्ञानूकी समझमें नहीं आया था और न तो उसने कभी इसके समझनेकी चेष्टा ही की थी। वास्तवमें यह बात ज्ञानूके लिए विध-पहेलीकी भाँति दुर्बोध्य थी, वह चेष्टा करके भी इसे न समझ पाता। रमेशकी बात सुनकर ज्ञानूको मानो उस अगम्य वस्तुका पता लग गया। उसने पूछा, क्यों भाई रमेश, यह लड़की पण्डित-जीकी कौन है? अबतक तो मैं इसे पण्डितजीकी पुत्री ही समझता था।

रमेशने सरल भावसे कहा,—यह पण्डितजीकी दौहित्री है। लड़की अनुपम रूपवती और सलज्जा है। देखो, अभी उसकी दस ही ग्यारह वर्षकी अवस्था है; किन्तु कैसे कायदेसे रहती है।

ज्ञानदत्तने निराशापूर्ण लम्बी साँस लेकर कहा,—पर जैसा तुम कहते हो, वैसा होना असम्भव है।

रमेशने पूछा,—क्यों?

प्रणय

ज्ञानदत्तने कहा,—इसलिए कि मेरा विवाह बाबूजी ठीक कर चुके होंगे और यहाँ पण्डितजी शायद अभी विवाह न करेंगे।

रमेशने कहा,—विवाह ठीक होनेसे क्या हुआ, होगा तो फागुनके बाद ही। अभी चार महीने हैं; यत्न करनेसे सबकुछ हो सकता है, देखो मैं चेष्टा करूँगा।

ज्ञानदत्तने मूक-भावसे कृतज्ञता प्रकट की। रमेशने लक्ष्य कर लिया। ज्ञानदत्तने मन-ही-मन यह स्थिर कर लिया कि जबतक रमेश प्रयत्नसे निराश न होगा, तबतक मैं कहीं ब्याह न करूँगा। इधर रमेशने अपने मनमें बहुत देरतक चिन्तन करनेके बाद यही निश्चय किया कि किसी दिन पण्डितजीसे इसके लिए साधारण रीतिसे चर्चा करके उनकी रुचि अनुकूल होनेपर उनसे स्पष्ट कहूँगा।

इस प्रकार बहुत-कुछ सोचते-विचारते दोनों ही अपने-अपने घर चले गये।

तीन-चार दिन बीत गये; बिटिया दिखलायी न पड़ी। ज्ञानदत्तका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने रमेशसे कहा,—ज्ञात पड़ता है, वह आजकल यहाँ नहीं है।

रमेशने कहा,—तुम्हें कैसे मालूम ?

ज्ञानदत्त—दिखलायी नहीं पड़ रही है।

रमेश—पहले भी तो वह महीनों बाद दिखलायी पड़ती थी और रहती थी घरमें ही।

प्रणय

ज्ञानदत्त— भाई रमेश, उसे न देखनेपर पहले तो मुझे बिलकुल चिन्ता नहीं होती थी, पर अब तो चार ही दिनमें मेरा हृदय न-जाने कैसा हो रहा है।

रमेशने कहा,—इस तरह अपने मनको तन्मय करना ठीक नहीं। वह घरमें ही है, घबराओ मत।

ज्ञानदत्त चुप हो गया। हफ्तेभर बाद ही घरसे एक आदमी बुलानेके लिए आ गया। परसों ही ज्ञानदत्तको घर जाना पड़ेगा। किन्तु उसकी सूरत अबतक दिखलायी न पड़ी। ज्ञानदत्त बड़े तड़के उठा और रमेशके घर गया। उससे एकान्तमें कहा,—मुझे कल जाना पड़ेगा। आज पता लगाओ कि वह कहाँ गयी है।

रमेशने ज्ञानूके हृदयका भाव समझ लिया। कहा,—अच्छा तुम बैठो, मैं अभी पता लगाये आता हूँ।

यह कहकर रमेश पण्डितजीके घर गया। इधर-उधरकी दो-चार बातें होनेके बाद उसने पूछा,—आजकल बिटिया दिखलायी नहीं पड़ रही है पण्डितजी! क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है?

पण्डितजीने कहा,—तुम्हें नहीं मालूम बेटा? वह तो अपने घर गयी न। यह तो तुम जानते ही हो कि बिटिया मेरी कन्याकी पुत्री है।

रमेशने कहा,—जी हाँ, यह तो मैं बहुत दिनोंसे जानता हूँ।

पण्डितजी—विन्ध्यवासिनीका दर्शन करनेके लिए उसके घरकी स्त्रियाँ आनेवाली थीं। आज दस दिन हुए, उसे बुलानेके लिए आदमी

लड़का आया था, उसीके साथ चली गयी। कहकर तो गयी है कि, "मैं पन्द्रह दिनमें चली आऊंगी नानाजी" पर मैं समझता हूँ कि अब फागन-चैततक वह न आवेगी।

रमेशने चकित होकर पूछा,—सो क्यों?

पण्डितजीने कहा,—उसका विवाह ठीक हो गया है। फागुनमें ही होनेवाला है। इसलिए जहाँतक मैं समझता हूँ अब विवाह हो जानेके बाद ही वह यहाँ आ सकेगी।

इतना सुनते ही रमेशकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया। मानो उसका कुछ खो गया, हृदय अस्थिर हो उठा। और भी बहुतसी बातें पूछनेके लिए वह उत्सुक था किन्तु अनुचित समझकर पूछनेका साहस नहीं कर सका। थोड़ी देरतक अन्यमनस्क होकर बैठा रहा, बाद आज्ञा लेकर घर वापस आया। चेहरा बिलकुल उतरा हुआ देखकर ज्ञानूने पूछा—क्यों रमेश, तुम इतने उदास क्यों हो?

रमेशने कोई उत्तर न दिया; मानो उसने कुछ सुना ही नहीं। ज्ञानदत्तने फिर पूछा—कुछ बतलाया नहीं रमेश, क्या बात है!

रमेशने कहा,—क्या बतलाऊँ? क्या तुमने कुछ पूछा है?

ज्ञान—यही कि, उदास क्यों हो?

रमेश—दुःख है कि बिटियाका ब्याह कहीं अन्यत्र ठीक हो गया।

ज्ञान—तो इसमें दुःख काहेका?

प्रणय

रमेश—जोड़ी बिगड़ गयी। यदि पहले इसपर ध्यान दिया गया होता, तो सब ठीक हो जाता।

"अच्छा अब इसकी चर्चा छोड़ो, प्रारब्धमें जो कुछ लिखा रहता है, वही होता है।" यह बात ज्ञानदत्तने एक शोकपूर्ण दीर्घ निःश्वास छोड़कर कही।

सच है! किसी इच्छाकी पूर्ति न होनेपर मनुष्यको बड़ा ही दुःख होता है। इसीसे वेदान्त-ग्रन्थोंका वचन है कि सुख-दुःख कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं; इच्छाकी पूर्ति ही सुख है तथा विफलता ही दुःख है। अतः बुद्धिमानोंको इच्छाओंसे निवृत्त होना चाहिए। यदि इस बातका ज्ञान उक्त दोनों लड़कोंको होता, तो ऐसी कष्टकी पीड़ा उन्हें कदापि न होती!

रमेशने पूछा,—तुम कब जाओगे? और अब वापस कबतक आओगे?

ज्ञान—कल जाऊँगा और सम्भवतः ८-१० दिनमें लौट आऊँगा। मेरा अनुमान है कि कोई विवाहके लिए आनेवाला होगा और उसके अनुरोधसे ही मुझे दिखलानेके लिए बाबूजीने बुलाया है; क्योंकि अभी लग्न तो है नहीं, फिर बुलानेकी जरूरत ही क्या थी।

प्रणय

पाँचवाँ परिच्छेद

ज्ञानदत्त ठीक सातवें दिन काशी वापस आये। भेंट होनेपर रमेशको मालूम हुआ कि ज्ञानदत्तकी शादी ठीक हो गयी। महीनों बीत गये, पर बिटियाकी सूरत दिखलायी न पड़ी। बड़े यत्नसे धीरे-धीरे ज्ञानदत्तने बिटियाको भुला दिया। उसने अपने मनको बहुत धिक्कारा। परायी लड़कीपर आँख गड़ाना, उसे पानेके लिए दुखी होना, अपने भविष्यको अन्धकारमय बनाना है। इस प्रकार सोचकर स्वाभिमानी ज्ञानदत्त अपने मनको रोकनेमें सफल हुआ। फिर तो वह कभी उसकी चर्चा ही न करता। वास्तवमें दृढ़-प्रतिज्ञ बालक ज्ञानदत्तके लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। अब तो उसकी किशोरावस्था है, बहुत कुछ समझने-बूझनेकी शक्ति हो चली है; जब वह सात वर्षका था, तभी उसने ऐसे-ऐसे अपूर्व कार्य किये थे कि लोगोंको चकित हो जाना पड़ा था। यहाँपर उसके एक कार्य-का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

गर्मीका दिन था। सन्ध्या हो जानेपर भी भुवन-भास्करकी प्रचण्ड किरणोंसे पृथिवी-मण्डल आगपर चढ़े हुए तवेकी भाँति तप रहा था। ग्रीष्मकी इस यौवनावस्थामें मनुष्य-पशु-पक्षीका कौन कहे, छाया भी छायाकी चाह कर रही थी। ज्ञानदत्त स्कूलसे वापस आकर दरवाजे-पर बैठा हुआ था। ग्वाला आया और बछड़ा छोड़कर दूध दुहनेके

लिए गैयाकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी ही देरके बाद अपने बछड़ेसे दिनभरकी बिछुड़ी गाय रँभाती हुई आकर खड़ी हो गयी। बच्चा भौंका मारकर माताका स्तन पान करने लगा। इतनेमें ग्वालेने बछड़े-को हटाकर खूँटेमें बाँध दिया और दुधौंड़ी लेकर दूध दुहने लगा। कच्चि ही होगी, न मालूम क्यों गैया बिदक गयी। ग्वालेने दो-चार घूँसे और चार-छः डंडे कसकर जड़ दिये। मार खाके, इच्छा न रहते हुए भी गो-माता खड़ी हो गयी। ग्वाला दूध लेकर अपने घर चला गया। बालक आनन्द यह सब लीला बाहर गोखसे देख रहा था। गऊ-की निःसहायावस्था और दुर्दशा देखकर उसकी आँखोंसे ढलके आँसू गिर पड़े। उसके पिता और बड़े भाई भी बरामदेपर मौजूद थे। ग्वालेने कसाईकी तरह गऊको पीटा, पर किसीने कुछ नहीं कहा, इससे उसे और भी गहरी चोट लगी। सोचने लगा,—हाय, मनुष्य कितना स्वार्थी और निष्ठुर है!

खाने-पीनेका समय हुआ, भाईके बुलानेपर आनन्द खाने गया। माता देवकीने कटोरीमें औटाया हुआ दूध लाकर सामने रखा। आन-न्दने बहुत कहने सुननेपर भी उसे छुआतक नहीं। यह किसीको मालूम न हुआ कि कारण क्या है। जब तीन-चार दिन बीत गये, तब मातृ-स्नेह अधीर हो उठा, माताके बार-बार पूछनेपर आनन्दने कहा,—इसके लिए गौओंको इतना कष्ट पहुँचाया जाता है, यह मुझे अबतक मालूम न था, माँ!

प्रणय

मातानें विस्मयान्वित होकर पूछा,—कैसा कष्ट बेटा, मेरी समझमें नहीं आता। क्या तुम्हें किसीने कुछ कहा है?

ज्ञानदत्तने कहा,—मुझे किसीने कुछ नहीं कहा है।

माता—तो फिर?

ज्ञानदत्तने सारा हाल कह सुनाया। अन्तमें यह भी कहा कि,—मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अब कभी भी दूध न पिऊँगा। इसके लिए अब आजसे तुम हठ न करना।

देवकी अपनी विद्या-बुद्धिभर बच्चेको समझाकर हार गयीं। फल कुछ भी न हुआ। बाद उन्होंने स्वामीसे कहा। इस घटनाने विराट् रूप धारण कर लिया। बहुत उपदेश देने तथा मनानेपर भी ज्ञानदत्त अपने प्रणसे विचलित न हुआ। अन्तमें शम्भूदयालने कहा,—अच्छा यदि तू दूध नहीं पियेगा तो अब घरके सबलोग दूध पीना छोड़ देंगे।

शम्भूदयालने सोचा था कि ऐसा कहनेपर ज्ञानदत्त अवश्य पिघल जायगा। पर फल उसका उलटा हुआ। उसने बड़े जोरसे खिलखिलाकर हँसते हुए कहा,—तब तो और भी अच्छी बात है बाबूजी। मैं तो यह चाहता हूँ कि गो-माताको इतना दुःख देकर दुहा हुआ दूध संसारका एक भी आदमी पान न करे।

अन्तमें एक दिन शम्भूदयालने ज्ञानदत्तको गोदमें बिठाकर बड़े प्रेमसे अन्यान्य बातें करते हुए कहा,—मैंने तेरे लिए एक बड़ी

प्रणय

सुन्दर गाय मँगानेका विचार किया है बेटा, तू उसकी सेवा करेगा न?

ज्ञानदत्तने कहा,—मैं दूध तो पिऊँगा नहीं बाबूजी, फिर आप मेरे लिए गऊ क्यों मँगाते हैं?

शम्भू—उसका दूध क्यों नहीं पियोगे?

ज्ञान—इसलिए कि मैंने निश्चय किया है कि अब कभी दूध न पिऊँगा।

शम्भू—क्योंकि गऊको कष्ट पहुँचाकर दूध दुहा जाता है?

ज्ञानदत्तने कहा—हाँ।

शम्भू—मगर उस गऊकी सेवा तो तुम अपने हाथसे करोगे। उसे कोई भी आदमी कष्ट न दे सकेगा। तब तो उसका दूध पियोगे न?

ज्ञानदत्तके मनमें यह बात जम गयी। बहुत देरतक सोचने-विचारनेके बाद कहा,—लेकिन वह गऊ मेरे सामने दुही जायगी।

शम्भूदयालने प्रसन्न होकर कहा,—हाँ हाँ, रोज तुम्हारे सामने दुही जायगी।

इसके बाद शम्भूदयालने एक अच्छी-सी गऊ मँगवा दी। ज्ञानदत्त उसकी सेवा करने लगा और दूध पीने लगा। किन्तु दूसरी गऊका दूध उसने अबतक ग्रहण नहीं किया और न बाजारकी बनी कोई चीज ही कभी खायी।

उस समय अल्प-वयस्क ज्ञानदत्तकी इस दृढ़ प्रतिज्ञाको देखकर

प्रणय

बस्तीके तमाम लोगोंको दंग रह जाना पड़ा था। इस प्रकार प्रतिज्ञा पर अटल रहनेवाले ज्ञानदत्तके लिए बिटियाको भुला देना कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

दिन जाते देर नहीं लगती। स्कूलके ग्रीष्मावकाशमें ज्ञानदत्तका विवाह सकुशल हो गया। उस समय स्कूल खुलनेमें बीस दिनकी देर थी। व्याहके बाद ज्ञानदत्तके जीवनमें परिवर्त्तन हो गया। जो ज्ञानदत्त कभी किसीकी ओर ताकता नहीं था, वही अब दिनभरमें दस-पन्द्रह बार किसी-न-किसी बहाने घरमें पहुँचने लगा। उसकी दृष्टि सदैव नव-वधूके दर्शनकी ओर झुकी रहने लगी। किसी-किसी दिन तो वह सफल होता और किसी दिन उसकी झलक भी न पाता। एक दिन दोपहरके समय बहू कोठेपर सोनेका प्रबन्ध कर रही थी। उसी समय सीढ़ीपर किसीके चढ़नेकी आहट मिली। झटपट सँभलकर बहू कोठरीमें जाने लगी। तबतक ज्ञानदत्त सामने आ गया। बहूकी कद तथा हाथ-पैरकी गढ़न और धीमी चाल देखकर ज्ञानदत्त एकदम रुक गया और उसके हृदयमें गहरा धक्का लगा। आज फिर उसे बिटियाकी याद आ गयी। सोचने लगा—सब कुछ वैसा ही है हाथोंकी अँगुलियाँ भी बिलकुल वैसी ही हैं। अहा, यदि वही होती तो बड़ा अच्छा होता!

थोड़ी देरतक स्तब्ध होकर ज्ञानदत्त वहीं खड़ा रहा। बहूके पास जाकर सन्देह-निवृत्त करनेकी उत्कण्ठा प्रबल हो गयी थी, किन्तु आगे पैर बढ़ानेका साहस न हुआ। लाचार होकर सन्देहको साथ

प्रणय

लिए ज्ञानदत्त नीचे उतर आया। यदि किसीके देखनेका भय न होता तो वह अवश्य सन्देह दूर करके ही छोड़ता; पर वह स्थान खतरेसे खाली नहीं था। वह अपनी खाटके पास खड़ा रहता और कोई वहाँ पहुँच जाता, तो वह क्या उत्तर देता? लोग उसे क्या कहते? अच्छा, यदि इतना खतरा था, तो फिर वह कोठेपर गया क्यों? वास्तवमें वह वधूको देखनेके अभिप्रायसे ऊपर नहीं गया था। वधू कोठेपर है, यह तो उस बेचारेको मालूम भी न था। वह तो यों ही किसी कामसे ऊपर गया था, वहाँ जानेपर यह घटना हो गयी।

तीन दिनमें नव-वधू-दर्शन-श्रद्धा अगाध हो गयी, मनवांछित दर्शन न मिलनेके कारण ज्ञानदत्तके हृदयका सन्देह भी दूर न हुआ। हृदय-पिपासा बनी ही थी कि उसे काशीके लिए प्रस्थान करना पड़ा। स्कूल खुलनेका समय आ गया। रमेशसे मिलनेपर मालूम हुआ कि विद्याका विवाह हो गया, पर अभीतक वह यहाँ नहीं आयी है। इतना सुनने ही एक सहारा था, वह भी टूट गया। पल-भरका बीतना ज्ञानदत्तके लिए युगके समान हो गया। जो ज्ञानदत्त पहले अपने क्लासमें सबसे अच्छा लड़का समझा जाता था, वही अब सबसे गन्दा समझा जाने लगा। पढ़ने-लिखनेमें उसका तनिक भी जी न लगता। टीचरोंके शब्द अब उसे रसहीन, कड़वे और बुरे मालूम होने लगे। उसमें यह विचित्र परिवर्तन देख रमेशको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। महीनेभरके बाद पंडितजी भी ज्ञानदत्तको

प्रणय

शिथिलताका अनुभव करने लगे। चिन्ता-ग्रस्त होनेके कारण ज्ञानदत्तका गुलाबसा चेहरा भी पीला पड़ गया। मित्रकी बदनामी रमेशके लिए असह्य हो गयी। उसने भी उसे बहुतेरा समझाया। पर ज्ञानदत्त यही मूक-उत्तर देता कि,—"मैं सारे अपमानोंको सहन करूँगा, पर उसे चित्तसे न उतारूँगा। चेष्टा करके भी नहीं उतार सकता, विश्वास मानो।" रमेश अपने मित्रका मौन-उत्तर समझनेमें अभ्यस्त था। यद्यपि ज्ञानदत्तका स्वरमय उत्तर यह मिलता था कि,—"चेष्टा तो कर रहा हूँ" तथापि वह समझ जाता था कि "तुम चेष्टा नहीं कर रहे हो।" अन्तमें खिन्न होकर रमेश कह बैठता,—हाय रे, बाल-विवाह! तेरा सत्यानाश हो! तूने ही मेरे मित्रका जीवन चौपट किया!

नित्यकी भाँति आज भी दोनों लड़के पंडितजीके पास पढ़नेके लिए आये। कमरेमें पहुँचते ही बिटियापर नज़र पड़ी। न-जाने क्यों ज्ञानदत्तका हृदय धकधकाने लगा। उसके हृदयकी उस धकधकाहटमें, आनन्द था, संकोच था, स्मृत्याभास था, और भी न-जाने क्या-क्या था। वह पीछे पैर लौटना ही चाहता था कि पंडितजीने स्नेह-सिंचित स्वरमें पुकारा,—आओ बेटे! अब तो ज्ञानदत्तको कड़ा दिल करके पंडितजीके पास जाना ही पड़ा। इधर बिटिया दोनों पूर्व परिचित लड़कोंको आते देखकर पहले ही आड़में चली गयी थी। पंडितजीने न जानेके लिए कहा भी नहीं। कहते कैसे? भला ब्याही लड़की किसी बाहरी आदमीके सामने क्योंकर हो सकती है?

प्रणय

मानव-स्वभावकी यह कैसी माधुर्य-पूर्ण विडम्बना है ! जो बिटिया पहले निःसंकोच भावसे हानू और रमेशके सामने आती थी, कभी-कभी बाल स्वभावानुसार कलह भी किया करती थी, वही अब छिपकर रहती है। उनके सामने आनेमें इतनी लज्जा मालूम होती है, मानो वह कोई भारी अपराध कर रही हो। सचमुच ही अब उससे इनलोगोंके सामने नहीं आया जाता। यदि कभी कोई आवश्यकता पड़ जाती है, तो आती अवश्य है; पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह लज्जाके मारे गड़ी जा रही है। इधर हानू और रमेशका भी वही हाल है। पहले प्यास लगनेपर दोनों ही बिटियासे पानी माँग लेते थे, संकोच-रहित होकर बात-चीत करते थे, किन्तु अब उसकी ओर दृष्टि करनेका भी साहस नहीं होता।

वास्तवमें दोनों ओरका यह संकोच-भाव ही यौवनावस्थाके आगमनका द्योतक है। मानव-जातिकी बाल्य-सरलता बड़ी दुर्लभ होती है—सदाके लिए अदृश्य हो जाती है; स्वाभाविक कोमलता और निष्कपटताकी यहीं इतिश्री होती है; इसी समय दिव्य-लोक छूटता है और कपट-पूर्ण मर्त्य-लोकमें पदार्पण होता है। नाना प्रकारकी वस्तुएँ स्वयमेव प्रादुर्भूत हो जाती हैं। मानव-भाषाके मानस-कोषका प्रत्येक शब्द इसी अवस्थामें अपना अर्थ-कलेवर क्रमशः बदलने लगता है और कुछ ही दिनोंमें शब्दोंकी परिभाषा परिवर्तित हो जानेके कारण दूसरा कोष तैयार हो जाता है। पहले शृंगारकी परिभाषा कुछ और ही रहती है, पर अब कुछ और हो जाती है; पहले

प्रणय

मैत्री शब्दका अर्थ भिन्न रहना है, किन्तु अब दूसरा हो जाता है। यही कारण है कि ज्ञानदत्त और बिटियाके सरल-स्नेहका अर्थ भी दोनोंके हृदयोंमें बदल गया। अब उन दोनोंके बीच यौवनावस्थाकी पुष्ट दीवार खड़ी होने लगी। शीघ्र ही दीवार इतनी ऊँची हो जायगी, जब एँड़ी ऊँची करके भी कोई एक दूसरे-को न देख सकेगा। इसी-से आज ज्ञानदत्तको देखते ही बिटिया खिसक गयी और बिटियाको देखकर ज्ञानदत्त ठमक गये। इस प्रकार दो-तीन महीने बीत गये। यदि गिना जाय तो शायद इन तीन महीनोंके भीतर ज्ञानदत्त और बिटियाका आमना-सामना चार-पाँच बारसे अधिक न हुआ होगा,—यद्यपि ज्ञानदत्त प्रतिदिन पंडितजीके यहाँ पढ़ने जाता था।

एक दिन सन्ध्या समय प्रतिदिनकी भाँति दोनों लड़के पढ़ने आये। आज बड़ी अद्भुत बात हुई। वह यह कि समीपमें पहुँचते ही पण्डितजीने आगे बढ़कर बड़े प्यारसे पकड़कर ज्ञानदत्तको अपने पास बिठानेकी चेष्टा की। ज्ञानदत्तको आश्चर्यके साथ हिच-किचाहट मालूम हुई। आश्चर्य इसलिए हुआ कि पण्डितजी ऐसा तो कभी नहीं करते थे, फिर आज ऐसा क्यों कर रहे हैं! और हिचकिचाहटका कारण यह था कि इतने बड़े आदमीकी बराबरीमें कैसे बैठा जाय। किन्तु ज्ञानदत्तके हृदयका भाव पण्डितजीसे छिपा न रहा। उन्होंने कहा,—बैठो बेटा, संकोचकी जरूरत नहीं। मुझे तो आजकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

ज्ञानदत्त संकोचके साथ बैठ गया, पर क्या रहस्य है, यह उसे

प्रणय

अबतक ज्ञात न हुआ—पूछ भी न सका। तबतक रमेशने आश्चर्य-चकित होकर पूछा,—सो क्या पण्डितजी ?

पण्डितजीने हँसकर कहा,—तुम्हें नहीं मालूम ?

रमेशने कहा,—जी नहीं।

पण्डितजी,—ज्ञानदत्तका विवाह कहाँ हुआ है, नहीं जानते ?

रमेशने सशंकित होकर कहा,—मैंने यह बात ज्ञानूसे अबतक पूछी ही नहीं।

पण्डितजी,—पूछकर ही क्या करते; मेरा तो अनुमान है कि शायद यह बात अबतक ज्ञानूको भी नहीं मालूम है। (ज्ञानदत्तकी ओर मुख करके) क्यों बेटा ठीक है न ?

ज्ञानदत्तने 'हाँ' 'ना' कुछ भी नहीं कहा। पण्डितजीने रमेश-की ओर मुख करके कहा,—बिन्दियाका विवाह ज्ञानदत्तके ही साथ हुआ है, यह भेद मुझे कल मालूम हुआ।

ज्ञानदत्तकी छाती धड़कने लगी; आह्लादकी सीमा न रही। रमेशका हृदय भी पुलकित हो उठा। पूछा,—यह बात आपसे किसने कही पंडितजी ?

पण्डितजीने कहा,—मैंने कई तरहसे ठीक-ठीक पता लगा लिया है, इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है।

रमेश—अच्छा, क्यों पण्डितजी, क्या आप बिन्दियाके ब्याहमें नहीं गये थे ?

पण्डितजी—गये तो थे।

प्रणय

रमेश—वहाँ आप ज्ञानदत्तको नहीं पहचान सके ?

पण्डितजी—कैसे पहचानता बेटा ! एक तो अब आँखें स्वाभाविक ही कमजोर हो गयी हैं, दूसरे मैं जनवासेमें गया भी नहीं।

रमेशने ज्ञानदत्तसे पूछा,—क्यों ज्ञानू तुम्हारे ससुरका क्या नाम है और वह किस गाँवके रहनेवाले हैं ?

ज्ञानदत्तने ससुरका नाम लेनेमें संकोच किया। कहा,—वह विदापुरके रहनेवाले हैं।

रमेशको बिटियाके पिताका नाम मालूम था, अतः उसने पूछा।—उनका नाम पण्डित सदायतनजी है ?

ज्ञानदत्तने निम्न-दृष्टि किये सिर हिलाकर 'हाँ' सूचित किया।

पण्डितजी और रमेश टकटकी लगाकर एक दूसरेकी ओर निहारने लगे। थोड़ी देरतक किसीके मुखसे कोई शब्द न निकला। बाद पण्डितजीने कहा,—अब तो तुम्हारा सन्देह दूर होगया न रमेश ?

रमेशने कहा,—जी हाँ।

इसके बाद पण्डितजीने टीका लगानेका सामान मँगवाया और बड़े हर्षसे ज्ञानदत्तके मस्तकपर रोली-अक्षत लगाकर दक्षिणा दी। दक्षिणामें पाँच लड़की सोनेकी सिकरी थी, नग-जटित बहुमूल्य अँगूठी थी, कुछ कपड़े थे, और पाँच गिन्नियाँ थीं।

पाठकगण समझ गये होंगे कि बिटियाका ही असली नाम रमा है। अभीतक रमाको भी यह बात मालूम नहीं थी। क्योंकि ब्याहके समय पति-गृहमें आकर वह केवल डेढ़ महीनेतक रही थी। नव-वधू

रमा घरमें बन्द पड़ी रही। इधर-उधर झाँककर अपनी बदनामी कैसे कराती? ज्ञानूका नाम भी लोग नहीं लेते थे। केवल बबुआ कहते थे। इसलिए वह कुछ भी न जान सकी। यदि दो-एकबार घूँघटके भीतर-से खिड़कियोंसे देखा भी हो, तो उससे पहचानना कठिन है। टीका वगैरह करनेके बाद ज्ञानेन्द्र तथा रमेशके विदा होनेपर जब पण्डितजीने अपनी स्त्रीसे सब समाचार कहा, तब घरमें बैठी रमा सारी बातें ताड़ गयी।

घण्टे-दो-घण्टेके भीतर ही यह बात रमाकी सब सहेलियोंको मालूम हो गयी। फिर क्या था, सबने रमाके नाकोंदम कर दिया। रमा भी ऊपरसे नाक-भौंह सिकोड़ती हुई भीतर-ही-भीतर विकसित हो उठी। क्योंकि ब्याहसे पहले उसकी भी ऐसी ही इच्छा थी कि ज्ञानेन्द्रके साथ विवाह हो। यद्यपि यह भाव उसमें अपने-आप ही पैदा नहीं हुआ था—बल्कि सयानी स्त्रियोंके कहनेसे हुआ था, तथापि ज्ञानेन्द्रके अलौकिक सौन्दर्यने उस बालिकापर पूरी रीतिसे अधिकार जमा लिया था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यहाँतक कि विवाह हो जानेके बाद भी रमा ज्ञानेन्द्रके सौन्दर्य-लोभका त्याग नहीं कर सकी थी। यदि रमा सयानी होती तो अवश्य ही अपने हृदयका भाव अपनी सखियोंके द्वारा कहलवा देती और सफलता न होनेपर पश्चात्तापसे अधीर हो जीवित रहते हुए भी मृतप्राय हो जाती; किन्तु कुशल है कि वह उस समय अबोध बालिका थी, उसका हृदय प्रणय-रहस्य-ज्ञानसे अनभिज्ञ था। फिर भी यह समाचार जानकर उसने

प्रणय

दिव्य: और अगाध आनन्दका अनुभव नहीं किया, यह कदापि नहीं कहा जा सकता।

वास्तवमें रमाकी अवस्था तो कम थी, पर बुद्धि विशाल थी। इतनी छोटी उम्रमें ही वह लघुकौमुदी समाप्त करके सिद्धान्त पढ़ रही थी; अंग्रेजीकी भी दो रीडरें खतम हो गयी थीं। उसका पढ़ना-लिखना नानाके घर ही होता था। पण्डित अमरनाथजी उसे स्वतः पढ़ाते थे। उनके कोई लड़का नहीं था, अतः रमाको अपने यहाँ रखते और प्यार करते थे।

इसके बाद ज्ञानदत्तने पण्डितजीके यहाँ आना बन्द कर दिया। पण्डितजीने उसके डेरेपर जाकर कई बार आनेका अनुरोध किया, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। कभी-कभी जानेकी इच्छा होती भी तो यह सोचकर वह रुक जाता कि यदि घरके लोगोंको यह बात मालूम हो जायगी तो मैं कौनसा मुँह दिखलाऊँगा।

धीरे धीरे ज्ञानदत्तका हृदय इन्हीं सब बातोंको उधेड़-बुन करनेमें व्यस्त होगया। जो ज्ञानदत्त पहले अपने क्लासमें क्या स्कूलभरमें सबसे अधिक प्रतिभाशाली समझा जाता था, वही अब साधारण छात्र समझा जाने लगा। पढ़नेमें दिल न लगनेके कारण स्कूलमें उसे अपमानित होकर जीवन व्यतीत करना भार हो गया। सालभर-तक किसी प्रकार और बीता, बाद ज्ञानदत्तने पढ़ना-लिखना छोड़कर अपने जीवनको-स्त्री-पाशमें जकड़ दिया। वाहरे बाल-विवाह! तेरा सत्यानाश हो! ओफ्! ज्ञानदत्त सरीखे होनहार बालकका पढ़ना

तेरे ही कुचक्रने छुड़ाया। वह दिन कब आवेगा, जब तेरा अस्तित्व भारतमें न रह जायगा ?

अब यही रमा और आनन्दका संक्षिप्त पूर्व-परिचय है और यही कारण है कि आनन्द और रमामें एक दूसरेके प्रति प्रगाढ़ और अलौकिक प्रेम था। एक तो दाम्पत्य सम्बन्ध, दूसरे एक दूसरेके प्रति स्वाभाविक स्नेह और तीसरे अनुकूल अवस्था ! ऐसी दशामें रमाकी स्थितिका अनुभव विचारवान पाठक भलीभाँति कर सकते हैं।

छठवाँ परिच्छेद

वर्षाका अन्त है। आकाश स्वच्छ हो चला है, किन्तु उदासीन मेघ-खण्ड अब भी भूले हुए पथिककी तरह इधर-उधर भटक रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो ये मेघ धुनी हुई रूईकी भाँति अपना रंग दिखलाकर मानव-जगत्‌को शीतसे बचनेके लिए प्रबन्ध करनेकी सूचना दे रहे हैं। इन्हें देखकर भ्रम होता है कि किसी नभवासीकी धुनी हुई रूई तो नहीं है! रात्रिके आठ बज गये हैं। कलकत्ताकी भव्य-अट्टालिकाओंके बीचकी लम्बी-चौड़ी सड़कें विद्युत्-प्रकाशसे जग-मगा रही हैं। उनपर आने-जानेवाले आदमियोंके चेहरेमें प्रसन्नता

प्रणय

थोड़ी देरतक दोनों स्तब्ध रहे। बाद रामदीनका कण्ठ खुला; शब्द हुआ,—कहौ ज्ञानू बबुआ, अच्छी तरह हो न?

इतने दिनोंके बाद अपने एक शुभचिन्तकको देखकर ज्ञानदत्त-का कंठ भर आया। रामदीनका घर उनके गाँवसे तीन मीलकी दूरीपर है। आस-पासके गाँवोंमें रामदीनकी बड़ी ख्याति है। यजमानी ही उनकी जीविका है। वह शम्भूदयालके समकालीन हैं। रामदीन बहुधा शम्भूदयालके घर आया करते थे, क्योंकि उन्हें सौ-दो-सौ रुपये सालकी यहाँसे आमदनी होती थी। सम्भ्रान्त कुलोत्पन्न ज्ञानदत्तको लोग मारे दुलारके ज्ञानू बबुआ ही कहा करते थे। किन्तु ज्ञानदत्त अपना यह नाम रामदीनके मुखसे सुनकर अपूर्व मिठासका अनुभव करते थे। ऐसे स्नेहीका अचानक दर्शन पा ज्ञानदत्तको कैसा आनन्द हुआ होगा, इसका अनुभव ज्ञानदत्तकी परिस्थितिके सहृदय पाठक ही कर सकते हैं;—लेखनीकी शक्तिसे बाहर है। हठात् ज्ञानदत्तको रामदीनके 'श'कार' का स्मरण हुआ। रामदीन दन्ती 'स' को तालव्य 'श' कहा करते थे। "बांशके पाश शरशोंके खेतमें शत्तू शाग शड़प शड़प आपने खाया है न पण्डित-जी" यह कहकर कुछ शरारती लोग उन्हें बनाया करते थे। इस बातकी याद आते ही ज्ञानदत्तको बोलनेका साहस हुआ, चेहरेपर किंचित मुस्कराहट आयी। बोले,—जी हाँ, आपकी दयासे किसी प्रकार समय बीत रहा है। घरका हाल सुनाइये।

रामदीनने कहा,—शबलोग अच्छी तरह हैं, आपकी चिट्ठी

प्रणय

पत्री न मिलनेसे दुःखी हैं। अभी हालहीमें आपकी बीमारीका हाल मिला था, इससे आपकी माँ घबरा गयी। अब भैया साहबने हमसे कहा कि जाकर तो देखो, तुम्हें लिवा लाओ।

ज्ञान—आप कबतक रहेंगे?

राम—कल संध्या समयतक जाऊँगा।

इसके बाद ज्ञानदत्तने घरके, बाहरके सब प्राणियों तथा गाँवके सुहृद्-जनोंका कुशल पूछा। अनन्तर शिक्षित रामदीनने ठाटके साथ शब्दोंकी शृंखला लगाते ज्ञानदत्तके सारे प्रश्नोंका उत्तर दिया। कुछ खा-पीकर दोनों आदमी सो गये। सबेरे उठते ही ज्ञानदत्तने रामदीनके लिए भोजन बनवानेका प्रबन्ध किया और स्नानादिसे निवृत्त हो स्कूल चले गये। इधर लगभग दो महीने-से ज्ञानदत्तकी स्थिति अच्छी है। पहले महीनेमें उन्हें सौ रुपयेकी आय ट्यूशनसे हो गयी थी। किन्तु वे रुपये कपड़ा-लत्ता बनवाने तथा आवश्यकीय सामान खरीदनेमें खर्च हो गये। इस महीनेमें करीब तीन सौकी आय होनेवाली है। वे रुपये १०—१२ दिनमें ही मिल जायँगे। इसीके आधारपर उन्होंने घर जानेका निश्चय किया है।

ज्ञानदत्तके सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेके लिए पाठक अधीर होते होंगे, अतः उनका संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त लिख देना आवश्यक है। विवाह हुए पाँच ही छः महीने बीते थे कि चौदह वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अंग्रेजी मिडिल फर्स्ट डिवीजनमें पास

होनेके कारण पढ़ना छोड़ दिया। जो लड़का डबल प्रमोशन ले, फर्स्ट होकर पारितोषिक ले, उसका थर्ड डिवीजनमें पास होना क्या साधारण दुःखकी बात है? पढ़ना छोड़नेके बाद ज्ञानदत्त घरपर रहने लगे। माँ-बापकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया। शम्भूदयाल इन्हें बहुत प्यार करते थे। आर्थिक चिन्ता रहते हुए भी वह यही सोचकर सदा प्रसन्न-मुख रहते कि हमारा ज्ञानू अब पाँच-छः सालके बाद हाकिम होगा और ऊँची वेतन पावेगा। फिर सब कष्ट दूर हो जायगा। इस बातको वह लोगोंसे कहा भी करते थे। ज्ञानदत्तकी भाभी प्रभाको उनका यह कहना सह्य न होता था। किन्तु उनकी उक्त प्रसन्नता "अब न रही," प्रभाकी अभिलाषा पूर्ण हुई। जब बहुत तरहके प्रयत्न करने-पर भी वह ज्ञानदत्तको पढ़नेके लिए राजी न कर सके, तब तो मानो उनकी कमर टूट गयी। लोग कहते, पढ़नेवाले लड़कोंका व्याह कभी न करना चाहिए। कलिकालमें स्त्रीका मुख देखते ही लड़के चौपट हो जाते हैं। शम्भूदयाल भी लोगोंका कथन नत-मस्तक हो स्वीकार करते। धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। अब ज्ञानदत्तको घरपर रहना भार हो गया। एक दिन उनके बड़े भाई धर्मदत्तने पिताके सामने ही ज्ञानदत्तसे कहा,—कुछ काम-धन्धा भी देखा करो, बाबू बननेसे काम न चलेगा।

भाईकी यह बात ज्ञानदत्तके हृदयमें चुभ गयी। पिताका मौन रहना उन्हें और भी खला। बिना कुछ कहे वहाँसे उठकर अपने

पढ़नेके कमरेमें चले गये । दरवाजा बन्द करके जीभर रोये । कुछ देरके बाद जब चारपाई पर [illegible], तब भाभीका भविष्य सोचने लगे । यह-सहकर [illegible] सोचने लगे कि ऐसा [illegible], यह स्वप्नमें भी आशा न थी । दुःख है, भाई किसीके नहीं होते । किन्तु बाबूजी भी तो कुछ नहीं बोले । क्या उनको भी सौतेला करना था ? हो सकता है कि दोनोंकी रायसे यह बात कही गयी हो । इस प्रकार सोच-विचार करते संध्या हो गयी । सर्वविश्वपाल भगवान भास्करकी अन्तिम कि-रणोंसे वृक्ष अपनी पत्तियों सहित सुनहले हो गये । वृक्ष ही क्यों, सम्पूर्ण पृथ्वी ही सुवर्णमय प्रकाशित होने लगी । थोड़ी देरमें सूर्य भगवानने अपना सुन्दर स्वरूप समेट लिया, और सन्ध्या देवीने संसारको काली चादरसे ढँक दिया । चिड़ियाँ भाग-भागकर घोंसलों-में गयीं । [illegible], अपनी [illegible] जा छिपे । राहगीर अपने-अपने ठि-काने आ गये । किन्तु ज्ञानदत्त यकायक न जाने क्या सोचकर घरसे बाहर हुए । कहाँ जायँगे, क्या करेंगे, कुछ निश्चय नहीं । हाँ यह निश्चय है कि वह घरसे चल पड़े । उनकी यह बेचैनी देख नक्षत्रगण हँस पड़े । ज्ञानदत्तने उनकी ओर ध्यान न दिया । थोड़ी ही देरमें वह रामपुर गाँवकी सीमा पार कर गये । अब उनके हृदयमें ग्लानिका पहला पट बन्द हुआ और दूसरा पट खुल गया । बाल्यावस्था होते हुए भी उनकी ज्ञान-गरिमा प्रशंसनीय थी । सोचने लगे,—भैयाका कहना यथार्थ है । संसारमें कोई किसीको बिठाकर नहीं खिला सकता । यदि मैं ही काम करता होता और मेरा कोई छोटा भाई निठल्ला बैठा

रहता तो क्या मुझे अच्छा लगता ? कदापि नहीं । व्यर्थ ही मुझे उनकी बातपर बुरा मालूम हुआ । प्रत्येक बातका अनुभव मनुष्यको अपने ऊपर घटाकर करना चाहिए और अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए।

इस प्रकार नाना प्रकारकी बातें सोचते ज्ञानदत्त कलकत्ता पहुँचे । एक देशवासीके यहाँ उन्हें आश्रय मिला । दो महीनेतक बेकार बैठे रहे, कोई काम न लगा । यदि कोई काम मिलता भी तो मोटा—जमादारी आदिका ।। किन्तु ऐसा काम करनेके लिए ज्ञानदत्तका हृदय तैयार न होता था । हो भी कैसे, ज्ञानदत्त किसी निर्धन पिताके पुत्र नहीं थे । उनका लालन-पालन भी अमीराना ढंगसे हुआ था । क्रमशः पासके रुपये खर्च हो गये । अब ज्ञानदत्तके लिए दो ही मार्ग रह गये । पहला यह कि या तो वह कोई नौकरी कर लें, या लज्जित होकर घर चले जाँय । ऐसी दशामें घर जाना ज्ञानदत्त-सरीखे स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए असम्भव था । उन्हें कलकत्तामें टुकड़ा माँगकर खाना स्वीकार है, दर-दर ठोकरें खाते फिरना शिरोधार्य है, भूखों मर जाना स्वर्ग पहुँचने के समान है, किन्तु भाईका ताना सुननेके लिए घर जाना कदापि स्वीकार नहीं ।

कहावत है कि "मरता क्या न करता ।" ज्ञानदत्त दो दिन भूखे रह गये । उनका कमलसा मुख कुम्हिला गया, विशाल आँखोंकी किंचित् अरुणिमा भी बढ़कर अधिक रक्त-वर्णा हो गयी । उन्होंने किसीसे यह बात नहीं कही और न किसीके आगे हाथ पसारा ।

प्रणय

मन-ही-मन स्थिर किया कि जैसे भी हो, कल कोई-न-कोई काम अवश्य कर लेना चाहिए। यह सोचकर वह आज ही नौकरीकी खोजमें निकले। दस-पन्द्रह क़दम भी आगे नहीं गये थे कि अचानक उन्हें एक रुपया सड़कपर पड़ा हुआ दृष्टिगत हुआ। जीमें आया कि उठा लें, किन्तु हिम्मत न पड़ी। सोचा, कहीं ऐसा न हो कि किसीको ठगनेके लिए किसी मसखरेने फेंक रखा हो। किन्तु लालचको सम्हालकर वह आगे भी न बढ़ सके। यदि वह रुपया उन्हें मिल जाता तो उनकी तो दिनकी क्षुधा सहज ही शान्त हो जाती और कलके लिए भी आधार हो जाता। खड़े-खड़े देखने लगे। अब बहुत देर हो गयी और किसीने उस रुपयेको नहीं उठाया,—यहाँतक कि उसपरसे एक गाड़ी भी चला गया, किन्तु कोई कुछ न बोला, तब उन्होंने साहस-पूर्वक लपककर उस रुपयेको उठा लिया। लोगोंकी नज़र बचाकर बड़े यत्नसे उन्होंने उसे जेबमें रख लिया और आगे बढ़े। जब थोड़ी दूर निकल गये, तब उनके हृदयकी धड़कन शान्त हुई। आनन्दका ठिकाना न रहा। हाय रे दुर्दिन! तेरी महिमा अपार है! एक समय वह था, जब कि बालक आनन्द अपने जेबखर्चके रुपयेमेंसे दस-पाँच रुपये निकालकर ग़रीब छात्रोंको दे देता था और यह सोचता था कि हाय, इतनेसे इन बेचारोंका काम कैसे चलेगा? और एक समय यह है कि आज स्वयं उसे एक रुपया पानेकी प्रसन्नता हो रही है।

साहस-पूर्वक उद्योग करते रहनेवालोंकी रक्षा परमात्मा करते हैं।

प्रणय

दस बजे, राततक ज्ञानदत्त कलकत्ता महानगरीके गली-कूँचोंमें फिरते रहे, नौकरी कहीं न मिली। राम राम, भला ऐसे भी कहीं नौकरी मिलती है ? उन्होंने किसीसे एक अक्षर पूछा भी तो नहीं। इनकी समझमें तो यहाँ न आया कि किससे क्या पूछूं। शरीर थक-कर चूर हो गया। लाचार हो डेरेकी ओर लौटे। किन्तु उनके चेहरे-पर निराशा न थी, बल्कि आशाका एक अपूर्व आलोक था। जब दीनानाथ परमात्मा भूखोंके लिए सड़कपर रुपया देते हैं, तब नौकरी कैसे न देंगे। यही सोचते ज्ञानदत्त अपनी गलीके चौराहेपर आये। एक हलवाईकी दूकानपर बैठकर वनस्पति घी (!) की वस्तुओंसे उदर-तृप्ति की और दो पैसेका एक हिन्दी दैनिकपत्र खरीदकर डेरेपर आये। सड़ककी पटरीपर एक लालटेनके पास बैठकर अखबार पढ़ने लगे। आद्योपान्त समाचार पढ़ गये, पर नींद न मालूम हुई। फिर विज्ञापन-बहार लेने लगे। अचानक उनके कामकी चीज निकल आयी। उन्होंने नीचेकी लाइनें बड़े गौरसे दो-तीन बार पढ़ीं—

आवश्यकता है—

एक ऐसे आदमीकी जो हिन्दी, उर्दूमें पत्र लिख-पढ़ सकता हो। कुछ अंग्रेजी जानना भी जरूरी है। वेतन योग्यतानुसार। दिनके दस बजेसे दो बजेके भीतर नीचेके पतेपर पूछताछ की जा सकती है:—

मैनेजर, सुरेन्द्रमोहन कविराज औषधालय,

नं० ४ जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता।

प्रणय

फिर क्या था, आनन्दकी सीमा न रही। उठकर सोने चले गये। प्रतिदिन सोते समय आहें भरते थे कि हाय, पलंगका वह मखमली गद्दा कब नसीब होगा और मैं उसपर चढ़कर सोता हूँ। किन्तु आज कहीं इसका ख्याल भी न हुआ। रातभर नींद नहीं आयी। करवट बदलकर प्रातःकालकी प्रतीक्षा करने लगे। पलभरका अन्तर युगके समान प्रतीत होता था। भिनुसारे सात बजे भी न बजने पाये, उठकर बैठ गये। टट्टी गये, हाथ मुँह धोया, कलमें पानी आनेमें देर थी, इसलिए गंगाजी नहाने चले गये। नौ बजते ही भोजन बना-खाकर फ़ैक्टरीकी ओर चले। गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर देखा कि फाटकपर सैकड़ों आदमी खड़े हैं। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि सब-लोग इसी नौकरीके लिए आये हैं। हाय भगवान्, देशकी इतनी गिरी दशा है! अब तो आनन्दकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया। भला मुझ-जैसे इण्टर-शिक्षित बाल-कको कौन नौकर रखेगा? आगे आया और चलना ठीक है। फिर सोचा, सब आ गये हैं तो बी० ए०, एम० ए० वालोंकी इस अंधेरी नगरीमें इज्जत तो देख लें। हिन्दुस्तानी घण्टेके अनुसार दस बजेके बदले साढ़े ग्यारह बजे मैनेजर साहब आये। चपरासीने लोगोंकी दरख्वास्तोंको समेटकर मैनेजरकी टेबुल-पर रख दी। इधर-उधर उलटकर मैनेजरने तीन आदमियोंको बुलवाया। उनमें एक ग्रेजुएट थे, बाकी दो बी० ए० पास,

उम्मेदवार। मैनेजरके दिलमें ज्ञानदत्तके आवेदन-पत्रपर करुणा हुई, अतः उन्हें चालीस रुपये मासिकपर रख लिया। सब लोग लौट गये। ज्ञानदत्त आजहीसे काम करने बैठ गये। थोड़े ही दिनोंमें ज्ञानदत्तकी नम्रता, सरलता एवं कार्य्य-कुशलताने मैनेजरपर अपना अधिकार जमा लिया।

संगतिका प्रभाव मानव-हृदयपर बहुत जल्द पड़ता है। रामपुरमें ज्ञानदत्तके सिवा किसी भी आदमीको अंग्रेजीका ज्ञान न था, इसलिए वहाँ ज्ञानदत्त अपनेको महापंडित समझते थे। इस मिथ्या अहंमन्यताके कारण ही उनका पढ़ना भी छूट गया। किन्तु यहाँ जब बड़े-बड़े विद्वानोंकी बातें सुनने लगे, समाचार-पत्र पढ़ने लगे, तब मन-ही-मन लज्जित होने लगे कि मैं कुछ भी योग्यता न प्राप्त कर सका। अब उनके दिलमें पढ़नेका शौक हुआ। जिस आदमीके यहाँ उन्होंने आश्रय-ग्रहण किया था, उसके यहाँ रहनेसे समयका दुरुपयोग अधिक होता था, अतः वह स्थान उन्हें छोड़ देना पड़ा। बारह रुपये मासिकका एक कमरा भाड़ेपर लेकर उसीमें रहने लगे। इस मकानमें सब कालेजके लड़के रहते थे। उन लड़कोंसे ज्ञानदत्तको बहुत कुछ सहायता मिलने लगी। तबतक नौकरी करते सात महीने बीत गये, वेतन भी साठ रुपया हो गया। अब बीस रुपया मासिक-पर एक घंटा पढ़ानेके लिए एक अनुभवी तथा योग्य अध्यापक रखकर ज्ञानदत्त अंग्रेजी पढ़ने लगे। समाचार-पत्र भी प्रतिदिन

अवश्य पढ़ा करते थे। सच्ची लगन थी, इसलिए तीन वर्षमें ही ज्ञानदत्तको अंग्रेजीकी खासी योग्यता हो गयी। किन्तु इतने दिनोंमें बचत एक पैसेकी भी नहीं हुई। नौकरी चले जानेपर सात-आठ महीनेके बाद ज्ञानदत्त कभी कभी खाली हाथ घर हो आया करते थे। दो-ढाई महीने रहकर फिर चले आते।

समयने पलटा खाया। आफतकाल दूर गया। यदि वह चाहते तो दूसरी नौकरी कर लेते, क्योंकि अब उनमें खासी योग्यता हो गयी थी। किन्तु विद्याध्ययनका व्यसन इतना बढ़ गया था कि उन्होंने कोई काम न किया, वे केवल अपने जीवन-निर्वाहके लिए समाचार-पत्रोंमें लेख लिखकर थोड़ीसी आय कर लेते थे। इस प्रकार इधर दो वर्ष बीत गये, घर जाना तो दूर रहा, पिताके किसी पत्रका उत्तर भी न दे सके। इस समय वह तीन अंग्रेजोंको हिन्दी पढ़ाने जाते हैं, वहाँसे उन्हें ढाई सौ रुपये मिलते हैं तथा पचास रुपयेके दो मारवाड़ी-ट्यूशन और करते हैं। आयके साथ ही खर्च भी एक महीनेसे बढ़ गया है। अब चालीस रुपये रहनेके कमरेका भाड़ा तथा पन्द्रह रुपये मासिक नौकरको देने पड़ते हैं।

रविवारका दिन है। ज्ञानदत्त अपने पाँच-सात मित्रोंके साथ बैठे साहित्यिक आनन्द लूट रहे हैं। इनके नजदीकी मित्र बाबू गौरी-शंकर शर्मा एम० ए० एल० टी० ने कहा,—हाँ, भाई उस दिनकी बात भले याद पड़ी—नायकके साथ कवियोंने क्या अन्याय किया है?

प्रणय

इतनेमें रामदीन काली-दर्शन करके लौट आये। ज्ञानदत्तने नौकरसे जलपान करानेके लिए आज्ञा देकर कहा,—मैंने अच्छी तरह मनन-पूर्वक ग्रंथावलोकन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि रावणके साथ कवियोंने अवश्यही अन्याय किया है-वास्तवमें रावण इतना अत्याचारी नहीं था।

गौरीबाबूने पूछा,—सो कैसे?

ज्ञानदत्तने कहा,—यह बात सबको माननी पड़ेगी कि रावण महापंडित था। यहाँतक कि घोर अत्याचारी कहनेवाले कविलोग भी उसके पाण्डित्यको नहीं उड़ा सके हैं। वेदोंपर लिखित रावण-महाभाष्य जगत्-प्रसिद्ध है और सबसे प्राचीन है। यह भी लोगोंको मानना ही पड़ेगा कि रावण भक्त भी असाधारण था, तभी तो उसने शिवजीको अपना मस्तक चढ़ा दिया था।* वेदोंपर महाभाष्य लिखने बैठना साधारण काम नहीं है; यदि होता तो रामायण और गीताकी तरह अबतक वेदोंपर भी सैकड़ों-हजारों भाष्य हो गये होते। अब सोचनेकी बात है कि, जो व्यक्ति इतने उच्च कोटिका विद्वान हो, इतने गहनातिगहन अत्यन्त सूक्ष्म विषयों-का निरूपण कर सकता हो तथा भक्ति पूर्वक अपना शिरोच्छेदन कर डालनेमें न हिचकता हो, उस व्यक्तिका इतना बड़ा अत्याचारी होना क्या सम्भव है? क्योंकि अत्याचारी होना, तामसी प्रकृतिका लक्षण है और ब्रह्म-तत्वका निरूपण करना अथवा उसकी व्याख्या करना, तामसी बुद्धिवालेके लिए बिलकुल असम्भव है।

प्रणय

मनुष्यकी बुद्धि तीन तरहकी होती है,—सात्विकी, राजसी और तामसी। सात्विकी बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष अनुभव करती है, राजसी, अनुभव तो करती है, किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव नहीं, और तामसी बुद्धि दोनों ही अनुभवोंसे वंचित रहती है। अतः मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि रावणकी बुद्धि रजःप्रधान थी; वह कुछ अल्प भाग अवश्य रहा होगा, पर इतना नहीं जितना कि कवियों-ने ठहराया है। यदि यह बात न होती, तो वेदोंकी सूक्ष्म बातें उसकी समझमें कदापि न आतीं।

गौरीबाबूने व्यंग-भावसे कहा,—ज्ञात पड़ता है कि रावणने अपनी सभामें कवि सत्कार नहीं किया था।

सब लोग हँस पड़े और बोले,—तभी तो कविलोग उससे इतना रूठ गये।

ज्ञानदत्तने कहा,—तुमलोगोंने मेरी बातकी सूक्ष्मतापर ध्यान नहीं दिया। मैं यह नहीं कहता कि द्वेष करके कवियोंने ऐसा लिखा।

गौरीबाबूने कहा,—जब वह सूक्ष्मता महर्षि वाल्मीकिके ही ध्यानमें न आयी तो फिर हमलोगोंका उसपर ध्यान देना बेकार था।

ज्ञान—मेरे कथनसे महर्षि वाल्मीकि जैसे पूज्य कवियोंकी अनभिज्ञता नहीं सूचित होती; न मैं ऐसी कल्पना करके अपनेको पाप-का भागी ही बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कवि-मर्यादाके भीतर रहकर ही अपने ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। छोटी घटनाको बड़ी और

प्रणय

गौरी बाबूने जरा तीखे स्वरमें कहा,—बड़े आश्चर्यकी बात है कि इतना पढ़-लिखकर भी तुम ऐसी भद्दी भूल कर रहे हो। जो रावण सुरापायी, मांस-भक्षी और परायी स्त्रीको चुरानेवाला था, जो रावण गो-ब्राह्मण-वध करनेके लिए सदा खड्गहस्त रहता था, जो रावण विभीषणके समान सत्यवक्ता और शुभचिन्तक बन्धुका तिरस्कार किया करता था, उसे ऐसा कौन सहृदय है जो महान अत्याचारी न कहेगा? तुम कहते हो कि पांडित्य-पूर्ण हृदयमें जघन्य कार्य कभी नहीं हो सकता। किन्तु हम कहते हैं कि रावण महापण्डित होकर भी जो महारानी सीताको छलसे हर ले गया, वह क्या जघन्य कार्य नहीं था? पण्डित होना और बात है, किन्तु पांडित्य-पूर्ण आचरण करना, दूसरी बात है। उदाहरण लीजिये,—एक आदमी यह जानता है कि चौर-वृति बहुत बुरी है, इससे मान-प्रतिष्ठा नष्ट होती है, पकड़े जानेपर नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। किन्तु फिर भी वह चोरी करता है। इससे यह ज्ञात हुआ कि 'चोरी करना बुरा है,' यह जानना पांडित्य है और 'चोरी करना' यह आचरण है—जोकि पांडित्यसे सर्वथा भिन्न है। कहनेका अभिप्राय यह कि संसारमें स्वार्थ एक ऐसी वस्तु है, जो सीमासे अधिक होते ही मनुष्यके सारे गुणोंको आच्छादित कर लेती है। तुम कहते हो कि आधुनिक समयमें कोई भी विद्वान ऐसा नहीं कर रहा है। पर हम कहते हैं कि 'कोई-भी' को कौन कहे, मि० हार्नीमैन सरीखे कुछ विभीषणोंको छोड़,

प्रणय

सारी अंग्रेज-जाति तुम्हारी कल्पनासे भी अधिक जघन्य कार्य कर रही है। क्या अंग्रेज-जातिमें साधारणा शिक्षा है? यदि नहीं, तो वह क्यों ऐसा कर रही है? अब विचार करनेकी बात है कि ब्रिटिश-राज्यका अस्तित्व मिट जानेके बाद भविष्यमें यदि कोई समालोचक अंग्रेजोंके पाण्डित्यपर दृष्टि डालकर अपने पूर्ववर्ती इतिहास-लेखकों या कवियोंको यह कहकर अन्यायी बताये कि अंग्रेजलोग बड़े पण्डित थे, इसलिए अंग्रेजोंने भारतपर ऐसा जुर्म कभी न किया होगा, तो क्या उस समालोचकका यह कहना न्याय-संगत, धर्म-विहित तथा दूरदर्शिता पूर्ण होगा? परमात्माकी लीला अज्ञेय है। देखो, रूसके बोल्शेविक-नेता महात्मा लेनिनमें जहाँ इतनी दयालुता थी कि सड़कोंपर किसी कोढ़ी या लँगड़े-लूलेको देखते ही उनका हृदय प्रेम-कातर हो जाता था और तुरन्त ही बिना घृणा किये अपने कंधेपर लादकर उसे सुरक्षित स्थान-(अपने खोले हुए अनाथाश्रम) में ले जाकर अपने हाथसे उसकी सेवा-सुश्रुषा करते थे, वहाँ इतना अधिक क्रोध भी था कि पूँजीपतियोंकी हत्या करनेमें उन्हें जरा भी दर्द नहीं आता था—यद्यपि दया और क्रोध परस्पर-विरोधी भाव हैं। तो क्या यह कहना उचित होगा कि क्रोधी और हिंसक लेनिनका दयालु-हृदय होना मिथ्या है अथवा दयालु लेनिनका हिंसक होना असम्भव है?

ज्ञान—मैं यह पहले ही कह चुका हूँ कि रावण कुछ अत्याचारी अवश्य था, किन्तु कवियोंने उसे बढ़ा दिया है। सच-

मांस-भक्षण करना उस समयकी प्रचलित प्रथा थी; परायी स्त्रियों-के अपहरण करनेके भी कम उदाहरण उस समयके इतिहासमें नहीं पाये जाते; इसलिए इन कामोंसे रावण उस समयकी प्रचलित प्रथाके अनुसार कोई विशेष दोषी नहीं ठहराया जा सकता। धर्मके दो भेद हो सकते हैं। एक नित्य (शाश्वत्) धर्म, दूसरा नैमित्तिक धर्म। सच बोलना, दीन-दुखियोंपर दया करना, अहिंसाव्रतका पालन करना आदि नित्य धर्म हैं। नित्य धर्म वही है, जिसे हर सम्प्रदायके लोग मानते हों और जिसमें कभी भी परिवर्त्तन करनेकी आवश्य-कता न पड़े। बारह वर्षके भीतर कन्याका विवाह कर डालना चाहिए, विधवा-विवाह न करना चाहिए आदि बातें नैमित्तिक धर्मके अन्तर्गत हैं। नैमित्तिक धर्म वह है, जिसे सब सम्प्रदायके लोग न मानते हों और जो समयानुसार परिवर्त्तित एवं परिवर्द्धित होता हो। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि नैमितिक धर्म उपेक्षणीय, वर्जनीय अथवा अमाननीय है। समाजके उचित एवं हितप्रद नियम ही धर्म हैं। उनका उचित रीतिसे न पालन करना, अपने को समाज-प्रति-घातक पापका भागी बनाना है। कहाँतक कहा जाय, धर्मका असली स्वरूप पहचानना बड़ा ही कठिन है। इसके पहलू ही बड़े पेंचीले हैं।

रही बात अंग्रेजोंकी, सो अंग्रेजी-राज्य, रावण-राज्यसे कई सौ गुना पतित है। क्योंकि अंग्रेज-राजा, प्रजाकी रक्षा करनेको तैयार नहीं, इसकी प्रजाको पीनेके लिए दूध नहीं, खानेके लिए अन्न

नहीं, पहननेके लिए वस्त्र नहीं; यह राजा बिना कारण प्रजाको कत्ल कराता है, मद्य-मांस सेवन करता है—जोकि प्रचलित प्रथाके अनुसार अधर्म है और अफीम, शराब, गाँजेका व्यापार करता है, घुड़दौड़का जुआ कराता है, यह राजा गोमांस खाकर हिन्दुओंका और सुअरका मांस खाकर मुसलमानोंका दिल दुखाता है। ऐसे राजाकी रावणसे तुलना करनेमें रावणका अपमान होता है। एक बात यह भी विचारणीय है कि अंग्रेजोंकी दृष्टि बहिर्मुखी है, इनकी साहित्यिक उन्नति भी तदनुरूप ही हुई है। किन्तु रावणके कुछ-न-कुछ आध्यात्मिक विचार अवश्य रहे होंगे, उसे साहित्यसे प्रेम अवश्य रहा होगा, तभी तो वह वेदोंपर भाष्य लिख सका था। अवश्य ही स्वार्थके वशीभूत होकर मनुष्य अनर्थ करनेमें नहीं हिचकता; किन्तु विद्वान या साहित्य-प्रेमी मनुष्यका हृदय अपने स्वार्थके लिए घोर अन्याय करनेके लिए उद्यत नहीं हो सकता। देखिये न, स्वार्थके वशीभूत हो, अंग्रेजोंने लोकमान्य बालगंगाधर तिलकको जेलमें ठूँस रखा था, किन्तु मैक्समूलर जर्मन होते हुए भी अंग्रेजोंके स्वार्थोंकी ओर ध्यान न देकर उन्हें छोड़ देनेकी प्रार्थना करके अपनी विद्वता एवं साहित्यकलाका परिचय देनेमें कुण्ठित न हुआ।

गौरी—तब तो रामचन्द्रजीने रावणको मारकर अन्याय किया न?

ज्ञान—नहीं। उन्होंने भी न्याय किया, क्योंकि रावण उनकी धर्मपत्नी सती सीतादेवीको हर ले गया था। ऐसा अपमान कोई

भी भद्र पुरुष नहीं सहन कर सकता। फिर भी उन्होंने दूतद्वारा रावणको समझाया कि रार न बढ़ाकर सीताको वापस कर देनेमें दोनोंका कल्याण है। जब इसपर भी वह राजी न हुआ, तब भगवान रामचन्द्रजीको युद्ध करना पड़ा।

इस विषयमें रामदीन भी अपने शकाका शङ्का लगाना चाहते थे, किन्तु उन्हें अवसर न मिलता था। वह कुछ बोलना ही चाहते थे कि तबतक एक महाशयने वार्तालापको रोककर कहा,—यह विषय बड़ा सूक्ष्म है, यों इसका निर्णय होना कठिन है। बहुत देर हो गयी, अब घूमने-फिरने चलना चाहिए।

इसके बाद बैठक स्थगित हो गयी।



सातवाँ परिच्छेद

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगा, शम्भूदयाल अपनी स्त्री-सहित अधिक खिन्न-चित्त होने लगे। रामदीन भी लौटकर नहीं आये। उन्होंने अपने कुशल-समाचारका एक पत्र भी नहीं दिया। क्या कोई अमंगल समाचार तो नहीं है? आठ दिनमें वापस आनेके लिए कह गये थे, किन्तु आज पूरा एक महीना हो गया। देवकी अपने पकललेवाले कमरेके सामने, बरामदेमें लेटी हुई हैं। एक घण्टा रात रहते नींद उचट गयी। चेष्टा करनेपर भी फिर नींद

प्रणय

नहीं आयी। आनन्दनकी किशोरावस्थाका श्यामल रूप उनकी आँखोंके सामने खड़ा है। वही विशाल नेत्र, घुँघराले बाल, सुन्दर चिबुक, सुडौल शरीरवाला उनका लालू 'माँ' कहकर पुकारना चाहता है। किन्तु चुपचाप खड़ा क्यों है? बोलता क्यों नहीं? इतनी देरतक तो कभी भी लालू चुप नहीं रहता था, फिर आज उसे क्या हो गया है? क्या रूठा हुआ है? किन्तु रूठनेका कारण? अज्ञात! देवकी कुछ पूछना ही चाहती थी कि तन्द्रा टूट गयी, मालूम हुआ कि स्वप्न था।

इतनेमें सबेरा हुआ। प्राच्याकाशमें भगवान भुवन-भास्करकी लाल-ध्वजा फहराने लगी। चन्द्रदेवकी विश्व-मोहिनी चन्द्रिका न-जाने कहाँ अन्तर्धान हो गयी, तारे निस्तेज हो, आशा-भरी दृष्टिसे पृथ्वीकी ओर देखने लगे। तारागण लज्जा-लज्जाकर मुँह छिपाने लगे। आकाशकी यह हलचल देख कलियाँ सहसा खिलखिलाकर हँसती हुईं अपने मधुर सुगन्धकी धूम मचाने लगीं। किन्तु प्रकृतिकी इस अनूठी लीलाके समय भी पुत्र-शोकाकुला देवकी इस प्रकार उदासीन होकर पड़ी है, मानो उसे इन विलक्षण लीलाओंका कुछ पता नहीं। सबतक घरकी मजदूरिन झाड़ू-बुहारू देने आयी, उसने मालकिनको लेटी देखकर पूछा,—क्या आज तबीयत अच्छी नहीं है?

देवकीकी आँखें खुलीं। बोली,—नहीं री, ठीक तो, है—यों ही आलस्यसे पड़ी हूँ।

प्रणय

मजदूरिन—ज्ञानू बबुआका कुछ सन्देश मिला न ?

देवकी उठकर बैठ गयी और बोली,—नहीं तो, अभी तो पुरोहितजी आये ही नहीं। क्या तुझे कुछ मालूम हुआ है ?

मजदूरिन—कल शामको मानकी दर्जिनका दामाद आया था। चार-पाँच दिन हुए, वह कलकत्तासे आया है। ज्ञानू बबुआके पास ही उसकी सिलाई करनेकी दूकान है।

देवकीने व्याकुल स्वरमें पूछा,—वह कुछ कहता था ?

मजदूरिनने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा,—हाँ।

देवकीने शोकातुर होकर पूछा,—क्या कहता था ? ज्ञानू अच्छी तरह है न ?

मजदूरिन—हाँ मजेमें हैं। लेकिन घर न आवेंगे।

इतना सुनते ही देवकीकी आँखोंमें रुका हुआ अश्रु-प्रवाह मानो बाँध टूट जानेके कारण उमड़कर बह चला। लाख चेष्टा करनेपर भी न रुका ! बड़ी कठिनईसे उसके वेगको रोककर देवकीने करुणा-कातर कण्ठसे पूछा,—यह भी कुछ कहता था कि वह क्यों नहीं आवेगा ?

मजदूरिन—कहता था कि साहबोंके साथ रहते है, साहबों की तरह कपड़ा-लत्ता भी पहनते हैं। जो कुछ पैदा करते हैं, सब खर्च कर डालते हैं।

देवकी—और भी कुछ कहता था ?

मजदूरिन—नहीं; और तो कुछ नहीं कहता था।

प्रणय

इसके बाद देवकी उसका नाम लेती गयी। सोचने लगी, जान पड़ता है, भानु नहीं आ रहा है इसीलिये ये दिनभर रुके हुए हैं। क्या भानुके हृदयमें कुछ भी दया-माया नहीं रह गयी? उसने मुझे भी भुला दिया?

देवकी इन्हीं बातोंको सोच-भुन कर रही थी कि रमा एक अखबार हाथमें लिए वहाँ आ गयी। उसके सुन्दर कपोलोंपर मोतीके दानेकी भाँति अश्रु-बिन्दु जमा हुए थे। सासको देखते ही रमाने उन बिखरे हुए मोतियोंको कपोलोंपरसे साफ कर लिया, किन्तु देवकीने उसकी सवेदना देख लिया। अब वह भानुकी चिन्ता भी भूल गयी और रमाका दुःख जाननेके लिए व्याकुल हो उठी। घबराकर बोली, यह क्या? क्या हुआ तुझे?

सासके सुधा-सिक्त-स्निग्ध शब्द सुनते ही रमासे न रहा गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। देवकीने बहूका हाथ पकड़कर बिठाया और उसका मस्तक अपनी गोदमें छिपाकर बड़े स्नेहसे अश्रु-मोचन करते हुए पूछा,—बहू, क्या मामला है यह शीघ्र बतलाओ।

रमा कुछ न बोली। उसकी रुदन-शक्ति उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी। बहूकी यह दशा देख, बिना कारण जाने ही अपने स्वभावानुसार देवकी की आँखोंसे भी आँसू गिरने लगे। बार-बार पूछनेपर रमाने समा-चार-पत्रकी ओर संकेत किया, पर मुँहसे कुछ भी नहीं कहा। रमाके संकेतपर देवकीका ध्यान नहीं गया; उन्होंने फिर पूछा—क्या दुलहिनने कुछ कहा है?

प्रणय

अधिक शोकके समय मनुष्यकी श्रवणेन्द्रियें भी जवाब दे देती है। यही कारण है कि देवकीकी उक्त बात रमाको सुनायी नहीं पड़ी। उसका इस प्रकार रुदन देखकर देवकीकी समझहीमें न आता था कि किन शब्दोंमें और क्या पूछूँ। इतनेमें पास-पड़ोसकी कई स्त्रियाँ आ गयीं। बिना कुछ पूछ-ताछ किये ही आगत स्त्रियाँ भी रमाके रुदनमें योग देने लगीं।

पं० शम्भूदयाल बँगलेमें बैठे हुए थे। किसी नौकरने आकर कहा,—न-जाने क्यों घरमें रुलाई हो रही है।

इतना सुनते ही शम्भूदयालका हृदय धक्-धक् करने लगा। घबराकर उठे और नौकरसे बिना कुछ पूछे, शीघ्रतासे मकानमें चले गये। दाईको बुलाकर शुष्क और खिन्न स्वरमें पूछा,—क्या बात है, कहींसे कोई आदमी आया है क्या? यह रोना-पीटना क्यों हो रहा है?

दाईने समीप आकर धीरेसे कहा,—न मालूम क्यों छोटी बहू रो रही हैं। उनसे पूछा जा रहा है, लेकिन कुछ बतलाती नहीं।

शम्भूदयालने रुष्ट होकर कहा,—जाकर पूछ जल्दी, गधी कहींकी।

दाई उदास होकर चली गयी। मालकिनसे कहने लगी, पर उस कोलाहलमें सुनता कौन है? बिचारी निराश होकर डरके मारे इधर-उधर जाकर सब स्त्रियोंसे पूछने लगी, किन्तु कारणका पता न चला। तबतक रमाके बिलाप-युक्त शब्दोंको सुनकर एक स्त्रीने

—प्रणय—

समाचार-पत्र रंग दिया। इस प्रकार [illegible] अभ्युदयालको भी इतनी चाल ज्ञात हो गया कि उनके [illegible] कोई अशुभ समाचार समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है। [illegible] कहा था, वह भी [illegible] समाचार [illegible] मनुष्यकी और हृद[illegible] [illegible] समाचार-पत्रको दिनोंको और बढ़ा दिया। [illegible] आये। ऐसा जो शोक-समाचार सूचक [illegible] लिया था —

'हाय रे दुर्दैव'

"हमें अत्यन्त खेदके साथ यह समाचार प्रकाशित करना पड़ता है कि, कल ता० [illegible] जून सन् [illegible] को हिन्दीके वर्तमान सुलेखक स्वनामधन्य पं० [illegible] की अचानक मृत्यु हो गयी। आप हिन्दीके अमूल्य रत्न थे। हिन्दी संसारको आपकी अलौकिक प्रतिभा द्वारा बहुत बड़ी आशा थी; किन्तु क्रूर परमात्माने उन सारी आशाओंपर पानी फेर दिया। पंडितजी कल ईडन गार्डनकी ओर टहलनेके लिए जा रहे थे; अचानक पीछेसे हठात् एक मोटरके धक्केमें गिर पड़े। साथियोंने तुरन्त ही अस्पतालमें पहुँचाया, किन्तु सिविल-सार्जनने कहा,—कलेजेपर गहरी चोट लगी है, बचना कठिन है। यह समाचार कलकत्तेकी गली-गलीमें जनतामें विद्युत्-गतिसे, चारों ओर पहुँच गया। डाक्टरने बड़ी तत्परताओंसे पंडितजीकी चिकित्सा की, पर हुआ वही जो उसने पहले ही कह दिया था। हाय पंडितजी, क्या आप अपना मन्द-हास्य-विमंडित मुख-चन्द्र

एकबार और दिखलाकर अपने स्नेही चातकोंकी आशा पूरी न करेंगे ? क्या पुनः एकबार मातृ-भाषा हिन्दीकी गोदमें बैठकर सुललित और मधुर शब्दोंमें अपने कुछ नवीन भावोंको न सुनावेंगे ? ओफ् ! अब तो यह सब कहना केवल पागलके प्रलापकी भाँति है ! भला अब आप काहेको सुनने लगे ? यदि सुनना ही होता तो आप केवल इक्कीस वर्षकी ही अवस्थामें जाते क्यों ? जबकि हिन्दी-माताके भाग्यमें यही बदा था तो आप रहते कैसे ! अब तो आहें भरनेके सिवा कोई चारा नहीं ! जगदीश्वर आपकी पवित्र आत्माको सद्गति दें तथा आपके व्यथित-हृदयी आत्मीय-जनोंको धैर्य धारण करनेकी शक्ति प्रदान करें, बस यही अन्तिम विनय है ।"

किन्तु ऊपरके समाचारको शम्भूदयाल पढ़ न सके । वह तो दो ही तीन लाइनें पढ़ पाये थे कि अचेत होकर धड़ामसे पृथिवीपर गिर पड़े । उन्होंने इस बातपर भी विचार नहीं किया कि यह समाचार किसी दूसरे ज्ञानदत्तका है, या उन्हींके पुत्रका । इतनेमें गाँवके बहुतसे लोग एक-एककरके आ चुके थे, लोगोंने उन्हें उठाकर बिठाया । थोड़ी देरके बाद जब शम्भूदयाल होशमें आये, तब 'आह भैया' 'हाय ज्ञानू' कहकर बिलखने लगे । संसारकी रीतिके अनुसार लोग तरह-तरहकी बातोंसे उन्हें समझाने-बुझाने लगे । एकने कहा,—यह खबर तो किसी दूसरे ज्ञानदत्तकी मालूम होती है । क्योंकि आपके ज्ञानदत्त ऐसे विद्वान कहाँ हैं ?

प्रणय

यह सुनकर शम्भूदयालको कुछ तसल्ली हुई। वह उसे समाचारको फिर पढ़ना ही चाहते थे कि किसी दूसरे आदमीने कहा,—जानते नहीं, अखबारवाले इसी तरह की अफवाहें छापा करते हैं।

यह बात सुनकर शम्भूदयालका विचार फिर बदल गया। इसलिए उन्होंने दुबारा अखबार नहीं उठाया।

तीसरेने कहा—अखबारोंमें बहुतसी झूठी खबरें भी छपा करती हैं, इसलिए तार देकर पक्की खबर मँगा ली जाय। हमारी समझमें तो यह खबर बिलकुल झूठ है।

किसी औरने कहा—नहीं नहीं अखबार निकालनेवाले बड़े विद्वान और ऊँची नजरवाले होते हैं, वे ऐसी झूठ बात कभी नहीं लिख सकते।

इस तरह सबलोग आपसमें बातें करने लगे। शम्भूदयालको भी कुछ सन्देह हुआ। अबकी बार उन्होंने समाचारकी दो-चार पंक्तियाँ पढ़ीं। उनका सन्देह और भी पुष्ट हो गया। सोचा, मेरा जानू ऐसा विद्वान कहाँ है। उसमें ऐसी योग्यता कहाँ कि उसका समाचार अखबारोंमें निकले। किन्तु यह सब सोचते हुए भी उनके हृदयकी ग्लानि कम न हुई। कष्टकर बातका अविश्वसनीय समाचार भी दिलको अपनी ओर बरबस खींच लेता है—विवेचना करनेकी शक्ति ही नहीं रहने देता।

अन्तमें यही स्थिर हुआ कि तारद्वारा ठीक ठीक समाचार मँगा लिया जाय। तबतक आदमीने घरमें जाकर कह दिया कि यह

खबर बिलकुल झूठ है। यह तो किसी बहुत बड़े विद्वान ज्ञानदत्त-की मृत्युका समाचार छपा है। ज्ञानू भैया इतने बड़े विद्वान कहाँ हैं? यह बात सुनकर स्त्रियोंको बहुत कुछ शान्ति मिली। किन्तु कोई विश्वसनीय प्रमाण न मिलनेके कारण रमाको सन्तोष न हुआ, यद्यपि औरोंकी अपेक्षा उसके पास इस समाचारको झुठाईके काफी सबूत थे। वह जानती थी कि उसके पति बिलकुल साधारण पढ़े लिखे हैं और यह समाचार किसी उच्चकोटिके विद्वानकी मृत्युका है। फिर भी न-जानें किस अज्ञात कारणने उसके हृदय-को दहला दिया। दूसरी बात एक यह भी थी कि समाचार पत्रमें ता० १२ को ज्ञानदत्तकी मृत्युका समाचार छपा था। और इधर रमाके पास दो वर्षके बाद स्वामीके हाथकी ता० १३ की लिखी हुई चिट्ठी आयी थी। जब उन्हें १२ तारीखको चोट लगी, और १३ को उनकी मृत्यु हुई, तब उन्होंने सचेत होकर इसके बीचमें ही पत्र कैसे लिखा? जिस समय रमाने मृत्यु-सम्वाद पढ़ा, उसके मनमें ये सब सन्देह अवश्य उत्पन्न हुए, किन्तु फिर भी उसका हृदय विगलित हो गया। उसे झूठे समाचारमें सत्यका आभास प्रतीत होने लगा। अन्यमनस्का एवं खिन्न-वदना रमाने इसपर बहुत देरतक सोचा-विचारा भी; किन्तु अन्ततः उसका नारी-हृदय शोक-सम्वादकी ओर लुढ़क ही गया।

अच्छा, तो क्या रमाको कोई अशुभ सूचना मिली थी, जिसके कारण उसने सन्दिग्धात्मक समाचारपर कुछ विश्वास कर लिया?

प्रणय

[illegible] कभी उसके [illegible] हो कड़का, न कोई [illegible] विश्वास [illegible] चुका है। जब उसके [illegible] लिए रवाना होते थे, तब रमाको [illegible] थीं, [illegible] [illegible] बढ़नेवाली थी, [illegible] आगमनकी सूचना पा जाती थी। [illegible] रहा भी [illegible] हुई रमाका [illegible] किसी भी काममें चित्त नहीं लगता था। [illegible] कि उनकी [illegible] नहीं है और [illegible] दिनके बाद ही पत्र आनेका समाचार [illegible] था। आजतक रमाके सब शकुन अपशकुन सच हुए हैं और कभी भी ऐसा नहीं हुआ है कि कहीं उनके [illegible] आपत्ति आयी हो और रमाको अपशकुनद्वारा ज्ञात न हुआ हो। फिर इतना बड़ा अप-घात होनेपर उसे किसी प्रकारका अशुभ चिन्ह न दिखे, यह आश्चर्य नहीं तो क्या है! यही कारण है कि रमाको समाचार-पत्रपर पूर्ण विश्वास नहीं हुआ और वह उठकर बालकके पासतक जा सकी; नहीं तो क्या रमा [illegible] नहीं अचेत न हो जाती? किन्तु [illegible]

पास आते ही उसकी ज्ञान-गरिमा नष्ट हो गयी। किसी स्नेहीके मिलनेपर स्वाभाविक ही शोक-सागर उमड़ पड़ता है।

होता वही है, जो ईश्वरको मंजूर होता है,—अपनी इच्छाके अनुकूल कोई काम नहीं होता। इसलिए किसी कामको कलपर टालनेमें बहुधा पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। रमा अपने हृदयके उमड़े हुए शोक-सागरमें नाना प्रकारकी स्वामि-स्मृतियोंद्वारा भयंकर तरंगें उत्पन्न कर रही थी। हाय, क्या कोई दैवका लाल रमाको यह न सुनावेगा कि ज्ञानदत्त सकुशल हैं? बेचारी रमा तो अपने स्वामीके पत्रका उत्तर भी न भेज सकी। क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ, यह लिखूँ, ऐसे नहीं ऐसे लिखूँ आदि बातोंकी चिन्तामें ही वह फँसी रह गयी। उन्होंने अन्तिम समयमें पत्र भेजकर अपना कर्त्तव्य-पालन किया, किन्तु रमासे वह भी न हो सका। व्यर्थकी लोक-लज्जाने ही रमाका सर्वनाश किया! प्रार्थना-पूर्ण पत्र जानेसे ही तो वह घर आ जाते! इसमें कौनसी लोक-लज्जा टूटी जाती थी? किन्तु ये सब निर्मूल कल्पनाएँ हैं। १३ तारीखके बाद प्रश्नोत्तर पहुँचनेसे क्या होता? यदि ऐसा ही था तो पहले ही रमाने पत्र क्यों नहीं भेजा? उस समय तो वह मान किये बैठी थी कि जबतक वह कोई पत्र न भेजेंगे, तबतक मैं कदापि न भेजूँगी। पर इस मानका इतना बड़ा दंड! ऐसी कौन युवती है जो इतना भी मान नहीं करती? ऐसा कौनसा मनुष्य है जो नायिकाके इस मानको चाह-भरी निगाहोंसे कृत-कृत्य होकर नहीं देखता? ऐसा कौनसा

प्रणय

काव्य-ग्रंथ है जो इस मानको स्त्रीका अपूर्व आभूषण कहकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा नहीं करता? फिर इसके लिए रमा अपराधिनी कैसे हो सकती है?

किन्तु अब इन थोड़ी घड़ियोंमें क्या हो गया है। जो होना था सो हो गया। कुछ ही दिन पहले लज्जा और यौवनके भारसे रमाका जो कोमल तथा कमनीय शरीर किञ्चित् झुका हुआ अपूर्व शोभा बढ़ा रहा था, वही अब शोक और वैकल्यके कारण उसी प्रकार झुका रहनेपर भी वृद्धावस्थाकी अनुकृति करने लग गया। स्वामीका जो पत्र उसके लिए आनन्दका विषय था, वही अब वेदनाका यंत्र हो गया। पत्र उसके सामने न रहते हुए भी उसका एक-एक अक्षर उसके मनश्चक्षुद्वारा दृग्गोचर होकर उसके हृदयमें तेज कांटोंकी भाँति चुभने लगा। मन-ही-मन रमा सोचने लगी कि, यदि पासमें बैठी स्त्रियाँ हट जातीं तो अवसर पाकर मैं भी स्वामीके पास पहुँच जाती! जाकर उनका दामन पकड़ती और सिर झुकाकर विनय-युक्त शब्दोंमें कहती,—अब तो दामन न छोड़ूँगी नाथ! मैंने कौनसा गुनाह किया, जिसके कारण आप मुझे असहाय छोड़कर अकेले चले आये थे? यही सब सोचते-विचारते रह-रहकर रमा पुक्का फाड़कर तथा किसी-किसी समय बिलख बिलखकर रोने लगती थी। फिर अपने आप ही कुछ देरमें चुप हो जाती और मुखसे कातर वचन निकालने लगती थी। समीपमें बैठी हुई स्त्रियाँ रमाको यह बिलखाता हुआ

देखकर आपसमें कानाफूसी करने लगीं कि बहूकी दशा देखकर यही मालूम होता है कि यह उन्मादिनी हो जायगी। किसीके मुखसे निकलता, यह जियेगी नहीं। किन्तु ये बातें समझनेकी चेतना यदि रमामें होती, तो कदाचित् वह यही उत्तर देती कि, ऐसा भाग्य-में कहाँ! यदि हो भी तो बिना ठीक और निश्चयात्मक समाचार जाने मैं कभी न मरूँगी!

लोगोंके बहुत कहने सुननेपर भी रमाने अपने हाथकी सुहाग-सूचक चूड़ियाँ और मस्तकका नारी-जीवन-सर्वस्व-स्वरूप सिंदूर नहीं हटाया। यही कारण है कि स्त्रियाँ उसे पगली समझने लगीं। लोग चाहे जो समझें, पर रमा अभी अपनेको सधवा समझती है, अतः हम भी परिच्छेदकी समाप्तिमें एकबार रमाको सधवा रमा कह देना उचित समझते हैं।



आठवाँ परिच्छेद

अभीतक सबको नदीमें डूबे पूरे दो दिन हो गये, पर आनन्दका कोई समाचार नहीं आया। लोगोंको दृढ़ विश्वास हो गया कि आनन्दके सम्बन्धमें जो समाचार छपा था, वह ठीक है—नहीं तो उनका कुछ पता अवश्य लगता। सत्यदेव भी पुत्रकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेके प्रबन्धमें लग गये। धर्मेन्द्रको भ्रातृ-शोक बहुत व्यापा; वह दिन-रात एक कोठरीमें पड़े रहते, बहुत कहने सुनने पर कुछ खा लेते। इन्दिराका भी मानो हृदय ही ज्ञान-विहीन हो गया। प्रभाको विशेष कष्ट नहीं था। नारी-हृदयमें कोमलताके साथ कितनी कठोरता होती है, यह बात प्रभाकी कृतिसे लोगोंको भलीभाँति ज्ञात हो गयी। उसने अपने स्वामी धर्मेन्द्रसे जाकर कहा,—"इतना सोचसे व्यर्थ चिन्ता करो, शरीर चौपट हो जानेपर कोई साथी न होगा। इस संसारमें कोई रहनेके लिए नहीं आया है। सबकी एक-न-एक दिन यही दशा होगी। आनन्दने तो कभी फूटी आँखों भी तुम्हें नहीं देखा और तुम उनके लिए इस तरह दुःखी हो रहे हो। भाईके मरनेसे इतना दुःखी क्यों होते हो; क्या भाई भी किसीके होते हैं?" इस प्रकार प्रभा समझाया करती थी। उसका समझाना बहुतसे लोगोंने सुना भी था। बेचारे धर्मेन्द्र कितनी बातें तो सुनते

ही न थे और जो कुछ सुनते थे, उसे जीवनका कटु अनुभव समझकर विषके घूँटकी भाँति पी जाते थे। किसी समय असह्य होनेपर कह देते,—इस समय जाओ, मुझे नींद आ रही है। न मानोगी तो मेरी तबीयत खराब हो जायगी।

इतना ही नहीं, किसी किसी समय प्रभा अपने दो वर्षके लड़केको कपड़ा-लत्ता पहनाकर लाती और धर्मदत्तकी गोदमें बिठा देती थी। धर्मदत्त बच्चेकी ओर देखते भी न थे; वह झुँझलाती हुई लड़केको लेकर चली जाती थी। इधर पतिके साथ तो ऐसा करती थी और उधर अपनी सास देवकीके पास दिनभरमें एकबार जाती भी न थी। प्रभाके इस दुर्व्यवहार और कठोरतासे पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ बहुत कुढ़ने लगीं,—भला शान्ूने इनका क्या बिगाड़ा था कि यह इस तरह प्रसन्न हैं? वाहरे संसार! रामजी ऐसी स्त्री शत्रुको भी न दें। किन्तु पुत्र-शोकाकुला देवकीको प्रभाकी बातोंका कुछ भी ध्यान न था। वह तो यह जानती ही न थीं कि कौन उन्हें समझा-बुझा रहा है, कौन दुःखी है, और कौन सुखी। अवश्य ही यदि देवकी सज्ञानावस्थामें होतीं, तो प्रभाकी हरकतें जलेपर नमकका काम करतीं। इस प्रकार प्रभाका उद्देश्य सफल होता और उसे प्रसन्नता होती। प्रभाको यदि कुछ दुःख था तो यही कि उसके इच्छानुसार देवकीको कष्ट नहीं हो रहा है।

ये तो हुईं घरके प्राणियोंकी बातें, अब रमा किस स्थितिमें है, यह भी जरा देखना चाहिए। रमा, समाचारपत्र लेकर सासके घरमें

प्रणय

[illegible] थी, [illegible] भी गयी, किन्तु वह [illegible] नहीं। [illegible] जागी, पर वह किसीकी [illegible] उसका कुछ उत्तर ही देती। [illegible] हो जाती। उसे इस बातकी भी सुध नहीं कि वह [illegible] रही है। [illegible] समय आया या नहीं, [illegible] उसे मालूम ही थी और न [illegible] रहा हो। किन्तु इस अचेत-अवस्थामें भी [illegible] किसीका हाथ छूते ही वह चौंक पड़ती और कहती,—हाय राम, ये [illegible] आदिनाथ [illegible] है। [illegible] हूँ, मुझे कोई न छुए।

पूरे दो दिन बीत गये, उमा न [illegible] बाहर आयी, न अन्न-जल मुँहमें [illegible] और न [illegible] ही की। पहले दिन तो वह रह-रहकर [illegible] थी, [illegible] नहीं रही है। अब वह क्या [illegible] है, बहुत [illegible] करनेपर भी किसीकी बात नहीं सुन रही है। क्या उमा पति-वियोगमें प्राण-त्याग करेगी? यदि हाँ, तो फिर वह विलाप क्यों कर रही? जिसकी प्रतीक्षामें वो दिनसे [illegible] अनुभव कर रही है? [illegible] क्या उसे [illegible] हो गया है? कदापि नहीं; यदि ऐसा होता, तो वह घरमें शान्तिसे बैठी न रहती। पागलपनका कोई भी लक्षण उसमें नहीं है; निद्रा न आनेका कारण भी [illegible]

नहीं है, बल्कि शोक है। मानव-स्वभावको पहचाननेवाले लोग ही यह बात जानते हैं कि उन्मादिनी या मरणासन्ना होनेके कारण रमाकी यह दशा नहीं हो रही है, बल्कि वह गम्भीर-शोक-ग्रस्ता चिन्तिता, मर्माहता और अवाक् बुद्धि हो गयी है। इसीसे उसकी यह दशा हो रही है। सरला, अल्प वयस्का होनेपर भी रमाकी वास्तविक स्थितिसे परिचिता थी। ग्यारह बजे रातको जब सब स्त्रियाँ रमाके पाससे चली गयीं, तब सरला अवसर पाकर वहाँ गयी और झाँककर पीछे पाँव लौट आयी। प्रभाके पास जाकर कुछ कहना ही चाहती थी कि प्रभाने कहा,—आओ बबुई, तुम बड़ी भाग्यवती हो; मैं अभी-अभी तुम्हें याद कर रही थी कि चाँदका टुकड़ा दिखलायी पड़ा।

सरलाने कहा,—कुसमयकी सहनाई अच्छी नहीं लगती, भाभी।

प्रभा ताड़ गयी कि मेरी बात सरलाको नहीं रुची। उसने तुरन्त मुद्रा बदलकर कहा,—किसीका दोष नहीं बिट्टीरानी. यह सब मेरे कर्मका फेर है; इसीसे मेरी अच्छी बातें भी लोगोंको बुरी मालूम होती हैं।

सरला भिखारिनीकी भाँति मुखापेक्षिनी होकर भाभीके समीप चली गयी और बोली,—तुम रुष्ट हो गयीं भाभी? मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही। सोचो न, ऐसे दुःखके समयमें चाँदके टुकड़े और बर्फके गोले कहीं अच्छे मालूम हो सकते हैं!

प्रणय

निशाना लग गया, यह समझकर अपनी सफलतापर प्रभाको विशेष हर्ष हुआ। उसने बात बनाकर कहा,—यह मैं भी जानती हूं [illegible] पर क्या करूं? तुम्हारा [illegible] मुँह मुफ्तमें नहीं देखा जाता; इसीसे तुम्हें हैरान करनेका बहाना किया करती हूँ।

[illegible] था। यद्यपि भीतरसे तो प्रभा [illegible] था, किन्तु ऊपरसे उसे स्नेह-भाव दिखलाना ही पड़ता था। कारण यह था कि सरलाके रूप, गुण और कुशाग्र-बुद्धिपर सभी लोग मुग्ध थे। [illegible] भी उसे बहुत प्यार करते थे, यहांतक कि इसके आनेपर वह एकबार प्रभासे नाराज भी हो गये थे। उसने बहुतेरी चेष्टाएँ की, पर वह प्रसन्न न हुए। अन्तमें उसे लाचार होना पड़ा। तबसे प्रभा को सरलाका लोहा मान लेना पड़ा। [illegible] और [illegible] सन्तुष्ट-असन्तुष्ट होनेकी परवा भी [illegible] नहीं करती थी, किन्तु स्वामीकी असन्तुष्टता उसे असह्य हो जाती थी।

सरला संकुचित होकर चुप रह गयी। उसकी उस समयकी मुखाकृति स्वयं भीतरी पश्चात्तापको प्रकट कर रही थी। थोड़ी देरतक दोनों ही चुप रहीं। फिर सरला कुछ कहना ही चाहती थी कि प्रभा बोल उठी,—दुश्मनोंके दुर्भाग्यसे आज [illegible] चल बसे। सच मानो बहुई, यह बात मैं पहलेहीसे जानती थी।

सरलाने आश्चर्य-चकिता हरिणीकी भाँति भाभीकी ओर देखकर पूछा,—सो कैसे भाभी?

प्रणय

प्रभा—बात यह है कि भानू बबुआ बड़े ही भाग्यवान लड़के थे। ऐसे मामूली घरमें उनका अधिक दिनोंतक रहना असम्भव था;—हाथी किसी दरिद्रके दरवाजेपर नहीं रह सकता।

बाल-स्वभावा सरलाको प्रभाकी बातोंपर पूर्ण रीतिसे विश्वास हो गया। उसने करुणा-कातर भावसे कहा,—तो तुमने यह बात घरमें कही क्यों नहीं ?

प्रभाने कहा,—अभी तुम्हें संसारका ज्ञान नहीं है; ऐसी बातें किसीसे कही नहीं जातीं। तिसपर ऐसे घरके प्राणियोंसे ! और मैं कहती !! छोटी बहू तो और भी जल-भुन उठती। इस तरहकी बहुतसी बातें मैं लक्षण देखकर जान लिया करती हूँ, जो कभी भी झूठ नहीं हो सकतीं; किन्तु यही सब सोच-समझकर मौन रह जाती हूँ कि घरके लोग तो यों ही मुझसे असन्तुष्ट रहते हैं, आगमकी बातें कहनेसे मैं इस घरमें रहने ही न पाऊँगी।

अब तो सरलाकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी। उसने अधीर होकर प्रभासे पूछा,—अच्छा, और कौनसी बात जानती हो, मुझे बतलाओ। गंगा-कसम मैं किसीसे न कहूँगी।

प्रभाने कहा,—कह दोगी।

सरलाने कहा,—विद्या-कसम भाभी, न कहूँगी—न कहूँगी—न कहूँगी।

प्रभाने किञ्चित् मुस्कराकर कहा,—तुम्हारी और सब बातें मैं मान सकती हूँ, किन्तु यह बात न मानूँगी। क्योंकि तुम्हारे पेटमें बात नहीं पचती।

प्रणय

सरलाने उदास होकर पूछा,—मैंने कौनसी बात कही ?

प्रभाने सरलाको बड़े दुलारसे अपनी गोदमें बिठाकर कहा,—याद करो।

सरला थोड़ी देरके लिए चिन्तामें पड़ गयी। पश्चात् बोली,—वही गुड़ीकी बात ?

प्रभाने हँसकर कहा,—हाँ, देखो वह बात याद आयी न !

सरला संकुचित हो गयी। गुड़ीकी बातका प्रकट कर देना इस समय उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसने किसी राजकीय मंत्रणाको प्रकट कर देनेका घोर अपराध किया हो। ससंकोच बोली,—अच्छा आपको बतला दो, अगर यह बात मैं किसीसे कहूँगी, तो फिर कभी कोई बात मुझसे न कहना।

प्रभा—कैसी बात ?

सरला—हाँ।

प्रभा—अच्छा भाई यदि ऐसा ही है तो यह बात बतला दूँगी।

सरला—बतलाओ ?

प्रभा—बतला दूँगी।

सरला—कब ?

प्रभा—और किसी दिन।

सरलाने कहा,—नहीं नहीं, मैं समझ गयी तुम बहाना कर रही हो, बतलाना नहीं चाहती।

प्रभाने विश्वास-प्रद स्वरमें कहा,—ऐसा न सोचो।

सरलाने कहा,—तो फिर बतलाओ न।

प्रभाने कहा,—बिना पूछे न मानोगी ?

सरलाने सिर हिलाकर 'नहीं' शब्दका बोध कराया।

प्रभा थोड़ी देरके लिए गम्भीरता धारण करके बैठी रही। वह मन-ही-मन अपनी सफलतापर प्रसन्न हो रही थी। भीतरका आनन्द उमड़ा पड़ता था। उत्फुल्ल मुखसे बोली,—अच्छा, क्या तुम्हें मालूम है कि छोटी बहूको क्या हुआ है ?

सरलाने उत्सुकताके साथ कहा,—ये बातें जाने दो, पहले वह बात बतलाओ।

प्रभाने कहा,—वही बतलाती हूँ, सुनो भी तो।—यह कहकर पश्चात्ताप-पूर्ण दीर्घ निश्वास छोड़कर आर्त्त-स्वरमें कहना प्रारम्भ किया,—देखो रानी—

प्रभाके मुखसे अपने लिए 'रानी' शब्दका प्रयोग सुनकर सरलाको हँसी आ गयी। उसने सोचा कि भाभी चार-छः वर्ष तो मुझसे बड़ी होगी, और बातें ऐसे ठाटसे करती है, मानो सत्तर वर्षकी बुढ़िया ! किन्तु अपने हृद्गत-भावको छिपानेके लिए बात काटकर बोली,—यह विद्या तुम्हें कहाँ मिली, मैं तो यही आश्चर्य करती हूँ। अच्छा हाँ। कहो;—अभी जाने दो यह बात; और किसी दिन पूछूँगी।

प्रभाने कहा,—छोटी बहूको सबलोग बड़ी शर्मीली कहते हैं अभी कलकी लड़की और पतिके लिए कैसी निर्लज्जतासे बैठी है

कि देखकर लज्जा मालूम होती है। भला सोचो तो, क्या इसीका नाम लज्जा है? लज्जा करती थी, हमारे यहाँ सन्तरामकी दुलहिन। अहा-हा! उनकी सत्रह वर्षकी अवस्थामें सन्तराम मर गये, किन्तु वह आँगन मारे लाजके लाँघीतक नहीं। वे, सभी तो लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। छोटी बहू अपने पतिकी चर्चा सुनकर तो मुँह ढक-लाती थी और अब वह लाज ही न मालूम कहाँ चली गयी। वाहरी दुनिया! भला यह कैसी लज्जा? अभी तो भलीभाँति पतिका मुँह भी नहीं देखा था। कहीं दो-चार वर्ष बीत गया होता, तब तो न-जानें क्या कर डालती। परन्तु......कहकर प्रभा एकाएक रुक गयी।

सरलाने कहा,—'परन्तु' क्या? चुप क्यों हो गयी?

प्रभाने कहा,—यों ही चुप हो गयी; जाने दो और बातोंको लेकर क्या करोगी।

सरलाने किञ्चित् भौंहें चढ़ाकर कहा,—तो अभी तुमने बात ही कौनसी कही? बोलो न; 'परन्तु' क्या?

प्रभाने कहा,—परसों रोना-पीटना शुरू होनेके पहले कोई आया था, याद है?

सरलाने जरा याद करके कहा,—हाँ, छोटी भाभीके मैकेसे एक भले आदमी आये थे।

प्रभाने कहा, वह आदमी इतना बन-ठनकर क्यों आया था, वह तुम नहीं जान सकती। मेरा अनुमान है कि छोटी बहूसे और

उस आदमीसे प्रेम है। अभीतक तो मैं यों ही बातें करके तुम्हें भुलावा दे रही थी, पर अब सच्ची बात कहे देती हूँ। देख लेना, मेरी बात ठीक होती है या नहीं।—यह कहते समय प्रभाकी त्योरियाँ बदल गयीं। उसने आवेशमें आकर कहा,—गाँव-घरकी औरतें समझती हैं कि छोटी बहू विधवा होनेके कारण इतना दुःखी है; पर यह बात बिलकुल गलत है। देखती नहीं हो, उसकी आँखोंसे एक बूँद आँसू भी नहीं गिर रहा है। भला ऐसा भी कहीं होता है कि पति मर जाय और आँसु न गिरे ?

सरलाने इस यौवन-निगूढ़ अर्थगामी प्रेमको पूर्ण रीतिसे तो नहीं समझा, पर कितना समझा और किस रूपमें समझा, यह कहना भी कठिन है। उसने किंचित् उत्सुकतासे पूछा,—तो उसने अन्न-जल क्यों छोड़ दिया है ?

प्रभाने कहा,—वह यहाँसे भाग जानेकी चिन्तामें है। चिन्तामें आँसू नहीं गिरता। देख लेना अवसर पाते ही वह यहाँके लोगोंके मुखपर कालिमा पोतकर अपने उसी यारके साथ निकल जायगी। देखो न, उसने अभीतक अपना सुहाग-चिह्न किसीको नहीं हटाने दिया। हटावे क्यों, क्या वह अपनेको विधवा समझती है ?

प्रभाने सारी बातें ऐसे ढंगसे कहीं कि सरलाको उसकी बातों-पर विश्वास हो गया। उसने पूछा,—तो क्या वह आदमी इसे भगा ले जानेके लिए ही आया था ?

प्रभाने कहा,—सो मैं नहीं कह सकती, क्योंकि दोनोंकी बातें

मैं सुन न सकी। किन्तु लक्षणोंसे मालूम होता है कि उसीके साथ जायगी। पर देखो बहुई, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, इसकी चर्चा किसीसे भूलकर भी न करना।

सरलाने फिर अपनी सफाई दी। इसके बाद दोनोंमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। कहाँ तो सरला आयी थी प्रभासे कोई खाने लायक चीज माँगने ! यह सोचकर कि मैं चलकर रमाको खिलाऊँगी; और कहाँ क्या हो गया। सारी बातें सुनकर सरलाके हृदयमें रमाके प्रति घृणाका भाव उत्पन्न न हुआ हो, किन्तु अब रमाको खिलानेके लिए कुछ माँगने-जाँचनेकी उसकी हिम्मत न पड़ी।

रात थोड़ी शेष थी, इसलिए सरला सोनेके लिए जाने लगी। उसके जाते समय प्रभाने, फिर गिड़गिड़ाकर कहा,—"देखो बिट्टी, मैं तुम्हें अपना प्राण समझकर ऐसी-ऐसी बातें सुना देती हूँ। भूलकर भी किसीसे मत कहना, और यदि कभी किसीके सामने धोखेसे यह बात निकल भी जाय तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु मेरा नाम न बतलाना।

'अच्छा' कहती हुई सरला चली गयी। अपने कमरेमें जा पलँगपर लेटकर प्रगाढ़-निद्रामें तन्मय हो जानेकी चेष्टा करने लगी। थोड़ी ही देरमें उसका मनोरथ सिद्ध भी हो गया, किन्तु प्रभाको बहुत देरतक नींद न आयी। वह मन-ही-मन प्रसन्न होकर अनेक तरहकी बातें सोच रही थी। आज उसने अपने जीवनका एक बहुत बड़ा कार्य कर डाला। अब उसके हृदयका भार कुछ हलका हो गया।

वह सोचने लगी कि सरलाद्वारा यह बात बहुत शीघ्र चारों ओर फैल जायगी और अधिक निन्दा होनेपर असह्य हो जानेके कारण रमा अवश्य ही कहीं जाकर डूब मरेगी। फिर तो लोगोंपर मेरी धाक जम जायगी। लोगोंको इस बातका विश्वास हो जायगा कि जो बात होनेवाली होती है, उसे यह पहले ही जान लेती है। इस प्रकार लोगोंमें मेरी प्रतिष्ठा भी हो जायगी और भानु-रमाकी इति हो जानेसे जीवनका कंटक भी दूर हो जायगा।

ओफ्! इतनी स्वार्थ-परता! इतनी अधमता!! दूसरेकी इज्जत नष्ट करना, सर्व-नाशकी चेष्टा करना, मनुष्य-जातिकी पिशाचिनी लिए बिलकुल सरल काम है। कठोरताकी प्रतिमूर्ति प्रभे! तूने यह क्या किया? क्या भोली रमाका वैधव्य भी तुझे साधारण दंड जँचा?



नौवाँ परिच्छेद

प्रभाको सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि सरला एक गम्भीर-स्वभावा कन्या थी, तथापि उसने प्रभाकी बातोंकी चर्चा अपनी दो-एक अन्तरंग सखियोंसे कर दी। हाँ, इतना अवश्य था कि उसने अपनी ओरसे तनिक भी नमक-मिर्च न लगाकर उसे सुसंस्कृत करके कहा। इसका कारण यह था कि पहले तो वह ऐसे स्वभावकी लड़की नहीं थी, दूसरे वह रमाको बहुत चाहती थी। यदि प्रभाने अन्तिम

समयमें यह बात न कही होती कि,—"यदि किसीसे कहना भी तो मेरा नाम न बतलाना।"—तो सरला जीवन पर्यन्त इस बातकी चर्चा किसीसे न करती। किन्तु कहनेमें उसने कोई रुकावट न समझकर अपनी साधारण बुद्धिसे यही स्थिर किया कि सहेलियोंसे राय लेकर रमाको बचानेके लिए यत्न करना अच्छा है। उसके आगे आनेसे बड़ा अनिष्ट होगा।

किन्तु जैसी सहानुभूति सरलाकी रमाके प्रति थी, वैसी अन्यान्य सखियोंकी कैसे हो सकती थी! अतएव एक कानसे दूसरे कानमें पड़ते ही इस बातके पर लग गये। चारों ओर स्त्री-पुरुषोंमें रमाकी ही आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी और बात भी बहुत बढ़ गयी। अच्छी बातोंका प्रचार विलम्बसे होता है, पर किसीकी निन्दा बहुत जल्द फैल जाती है। अब रमाको सबलोग घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। पहले हरवक्त उसके पास दस-पाँच स्त्रियाँ बैठी रहा करती थीं, पर अब एक भी स्त्री उसके पास दिखलायी नहीं पड़ती। धीरे-धीरे यह बात रमाके कानतक भी पहुँच गयी। यदि रमा सज्ञानावस्थामें होती, तो अवश्य ही मारे लज्जाके आत्महत्या कर लेती, किन्तु इस समय उसे कुछ समझ ही न पड़ा। उसकी स्थितिमें ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ा। इसलिए लोगोंका सन्देह और भी पुष्ट हो गया।

क्षीयमाण शारदीय चन्द्रदेव दो घड़ी रात बीतनेकी सूचना देनेके लिए आकाशमें दिखलायी पड़े। रामपुर गाँवमें किंचित्

प्रणय

कोलाहल मच गया। माताएँ अपने बच्चोंको खिला-पिलाकर सुलानेके लिए अधीर हो उठीं। बड़े-बूढ़े सोनेकी तैयारी करने लगे! किन्तु रमा ज्योंकी-त्यों अपने स्थानपर बैठी है। रात है या दिन, उसकी प्रशंसा हो रही है या निन्दा, इसका उसे क्या पता? उसे तो लगन है, बस अपने प्राणनाथकी! धुन है स्वामि-सम्मिलनकी! विश्वास है आशा-पूर्तिकी!

इधर पंडित शम्भूदयाल पुत्र-शोकमें बैठे हुए थे। उनके पास दस-पाँच आदमी ज्ञानदत्तके अन्त्येष्टि संस्कारकी सामग्रीपर विचार करनेके लिए उपस्थित थे। सबलोग बिलकुल शान्त थे, किसीके मुँहसे शब्द नहीं निकलता था। इतनेमें एक अखबार-प्रेमी, लोगोंकी नजरें बचाकर पासमें पड़ा हुआ समाचार-पत्र धीरेसे खोलकर पढ़ने लगा। पहले ही उसकी दृष्टि 'भूल संशोधन' शीर्षक समाचारपर पड़ी। इच्छा न होते हुए भी वह मनुष्य उसे पढ़ने लगा। लेख समाप्त भी नहीं हुआ कि वह बड़े गम्भीर भावसे गर्वके साथ बोल उठा,—"सब झूठ है, ज्ञानू बबुआको कुछ नहीं हुआ है।" सबलोग आतुर दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए पूछने लगे,—"यह कैसे मालूम" "क्या अखबारमें छपा है?" "क्या लिखा है, पढ़ो तो।" किन्तु अध्ययन-शील मेधावी पुरुषकी भाँति वह मनुष्य इतने प्रश्नोंके उत्तरमें एक अक्षर भी न बोला और मस्तक सिकोड़कर उस समाचारको शीघ्र समाप्त करनेमें तन्मय रहा। उसका यह कार्य

लोगोंको बहुत बुरा लगा। यहाँतक कि एक आदमीने लपक-कर अखबार छीन लिया और पढ़कर सब लोगोंको सुनाने लगा:—

'भूल संशोधन'

"गत ता० १४ जूनको जो 'टाइम्स लन्दन' शीर्षक शोक-समाचार प्रकाशित हुआ था, वह गलत है। पं० ज्ञानदत्तजीको बहुत ही गहरी चोट लगी थी, यह बिलकुल सही है, बचनेकी आशा नहीं थी, इसमें भी सन्देह नहीं, पर अब वह बहुत अच्छी तरहसे हैं। इन पंक्तियोंका लेखक स्वयं उनसे मिलने गया था। उन्होंने होश-हवाससे बातें कीं और कहा कि अब मेरे किसी अंगमें पीड़ा नहीं है। सिविल-सर्जन डाक्टरने भी कहा कि,—उस दिन गर्मी इतनी बढ़ गयी थी कि मालूम हुआ, कलेजेपर गहरा सदमा पहुँचा है; पर अब मालूम होता है कि कलेजेपर बिलकुल चोट नहीं लगी है और अब उन्हें दो-तीन दिनके भीतर ही आराम हो जायगा।

पहले दिन आठ घंटेतक पंडितजी बिलकुल बेहोश थे—यहाँतक कि शहरमें चारों ओर उनका शोक-सम्वाद भी फैल गया! इसीसे हमारे एक सम्वाद-दाताने फोनसे उक्त समाचार प्रकाशनार्थ भेज दिया। बहुधा ऐसे समाचार झूठ नहीं हुआ करते, अतः दृढ़ निश्चय किये बिना ही सबेरेके अंकमें प्रकाशित कर दिया गया। हमें अत्यन्त खेद है कि उक्त दुःसम्वादको पढ़कर पंडित ज्ञानदत्तजीके स्नेहियोंको

मार्मिक वेदना हुई होगी। आशा है कि समाचार पढ़कर पाठकगण सन्तुष्ट होंगे। —'सम्पादक'

यह समाचार सुनकर लोगोंका हृदय आनन्दित हो उठा। पंडित शम्भूदयालकी आँखें खुल गयीं, शरीरमें नये प्राणका सञ्चार हो गया। मारे आह्लादके उनके नेत्रोंसे अश्रु-वर्षा होने लगी। उस समय वहाँके लोगोंमें हर्षका अपूर्व समाँ बँध गया था। किन्तु न-जानें क्यों थोड़ी ही देरमें शम्भूदयालके हृदयसे वह आनन्द फिर तिरोहित हो गया। शायद उन्होंने यह सोचा कि अखबारोंके समाचारका क्या विश्वास! सम्भव है कि मिथ्या ही हो। जो भी हो, उनका अश्रु-प्रवाह पूर्ववत् ही जारी था, इसलिए उनका भीतरी भाव और किसीको कुछ भी मालूम न हुआ। हाँ, अश्रु-प्लावनमें अन्तर केवल यही हुआ कि पहले वह उत्फुल्ल हृदयका शीतल प्रसेक था और अब परितप्त हृदयकी उष्ण भाफ। शम्भूदयालको इस बातकी भी सुध न रही कि यह समाचार घरमें गया या नहीं। यदि उनके कहनेपर निर्भर रहता तो सम्भवतः इस समय उक्त समाचार घरके लोगोंको मालूम भी न होता; पर किसीने बिना उनकी आज्ञाके ही भीतर जाकर देवकीसे कह दिया। देवकी तुरन्त हाँफती हुई रमाके पास गयी और सुसम्वाद सुनाया। पहले तो रमाको कुछ सुनायी न पड़ा, किन्तु बारबार कहनेपर उसने सुना या नहीं, कौन जाने। न-जानें क्यों उसमें कुछ भी परिवर्तन न हुआ। सम्भव है, उसके हृदयमें भी ससुरके ही भाव उत्पन्न हो गये हों। इतनेमें सरला भी वहाँ आ

गयी। भाभीकी दशा देखकर पहले तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, बाद प्रभाकी दूरदर्शिता-पूर्ण बातोंकी याद आते ही वह गम्भीर हो गयी।

इतनेमें शम्भूदयाल हाथमें एक चिट्ठी लिये दरवाजेके पास आकर खड़े हो गये। देवकीकी ओर मुख करके प्रसन्नताके साथ बोले,—शानूका पत्र आ गया। यह पत्र उनके हाथका लिखा हुआ है। अब मुझे पूरा यकीन हो गया।

देवकीने चकित होकर पूछा,—कब आया? क्या लिखा है?

शम्भु—अभी-अभी डाकिया दे गया है। लिखा है, यह कहकर आंसू बहाते हुए भर्रायी आवाजसे पत्र पढ़ने लगे:—

"पूज्यवर पिताजी,

चरण-कमलोंमें सादर प्रणाम। इस अभागे पुत्रने आपको बड़ा कष्ट दिया! पर जान-बूझकर नहीं; अतः सर्व-प्रथम मैं क्षमा मांगनेकी धृष्टता करता हूं। पूजनीया माताजीको कितना कष्ट हुआ होगा, भैयाको तथा घरके और सब प्राणियोंको कितनी मानसिक यंत्रणा भोगनी पड़ी होगी, इसका अनुमान करनेसे चित्त व्याकुल हो जाता है—आंखोंके सामने अंधेरा छा जाता है। बस अब तो मेरा निस्तार तभी हो सकता है, जब आपलोग मुझे खुले दिलसे प्रसन्नतापूर्वक क्षमा प्रदान करेंगे। बाबूजी, आपके आशीर्वादसे अब मैं बिलकुल अच्छी तरहसे हूं; पर हां, यह अवश्य है कि अबकी आपलोगोंके आशीर्वादने ही मुझे नया जन्म दिया है; नहीं तो यह आशा न थी कि पुनः आपके चरणोंके दर्शन होंगे तथा स्नेहमयी माताकी

प्रणय

गोदमें बैठकर वह अद्वितीय स्वर्गीय आनन्द लूटनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। बलीयसी विधि-विडम्बना जानी नहीं जाती! इस दुर्दिनमें मेरी देख-रेख करनेके लिए आपने पहले ही पं० रामदीनको भेज दिया था। पंडितजीने मेरी बड़ी सहायता की। जाना नहीं जाता कि कब क्या होगा। कहाँ तो उस दिन घरके लिए प्रस्थान करनेकी तैयारी हो रही थी और कहाँ क्या हो गया।

तारका जवाब दे चुका था, इसलिए यह पत्र देरमें लिख रहा हूँ। अब घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। माँको भी सान्त्वना दीजियेगा। मैं बिलकुल अच्छा हो गया हूँ, अब चलने-फिरनेमें भी मुझे कोई कष्ट नहीं होता। यदि ईश्वरकी दया हुई, तो आज शामको अस्पताल (hospital) से छुट्टी भी मिल जायगी। यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम है कि इस पत्रसे आपलोगोंको सन्तोष न होगा—जबतक आँखों देखकर छातीसे लगाते हुए मुझे अभयदान न देंगे। किन्तु इसके लिए अधीर न होइयेगा, मैं बहुत जल्द दर्शन करनेके लिए आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगा। जहाँतक सम्भव है, बृहस्पतिवारको पंजाबमेलसे मैं अवश्य रवाना होकर शुक्रवारको कछवारोड पहुँचूँगा।

ता० २३—६—२८

Bagla hospital
Harrisson road
Calcutta

आज्ञाकारी—

शानू"

प्रणय

[illegible] गया भर आया; [illegible] हीन हो गये। इस [illegible] सुनाया। उनकी सिसकी [illegible] मंगी माकी गोदमें [illegible] रहा। बहुत [illegible] निकला। [illegible] कहा,— [illegible] क्या!

[illegible] सोचते हुए फिर [illegible] हो आनेके लिए लिखा [illegible]

[illegible] हो।

[illegible] उन्होंने कहा, [illegible] नहीं। वह [illegible] बाहर [illegible] गयी थी;— [illegible] किन्तु [illegible] नहीं। [illegible] छोड़कर [illegible] दूंगा। [illegible] जिन्दगी [illegible] रहूँगा। यही बात सोचते हुए वह [illegible] थोड़ी ही देरमें [illegible] गई हुई। उन्होंने कहा,—[illegible] था कि [illegible]

आदमीपर ऐसा वज्रपात कभी नहीं हो सकता। मनुष्यसे अन्याय हो सकता है, पर ईश्वर अन्याय नहीं कर सकता।

दूसरेने कहा,—मैं तो दोनों वेला भगवतीके मन्दिरमें जप करता था और यही प्रार्थना करता था कि हे जगज्जननी, लल्लू बबुआके आरोग्य होनेका शीघ्र समाचार सुनाओ। माईने आज मेरी विनती सुन ली।

तीसरेने कहा,—भैयाका शरीर सूखकर आधा हो गया।

चौथेने कहा,—आधा? वाह भाई तुम भी खूब कहते हो! अरे भैया बड़े शान्त आदमी हैं, चलते-फिरते और बोलते-चालते रहे, नहीं तो शरीरमें क्या रह गया है? रुपयेमें एक पैसा भी तो नहीं रह गया है।

ये सब बातें वे ही लोग कर रहे थे, जिनके यहाँ शम्भुदयालका पुराना पावना टूटा हुआ था और जो लोग कुछ अन्न-पानी, दान-दक्षिणा पाते थे। शम्भुदयाल अपना बहुतसा रुपया तथा गल्ला लोगोंको छोड़ दिया करते थे। ऋण-भार इतना अधिक हो जानेपर भी उनकी दक्षिणा-दान-प्रियता कम नहीं हुई थी। उनकी यह उदारता गाँवभरमें ही नहीं, बल्कि आसपासके गाँवोंमें भी प्रसिद्ध थी। इसीसे चापलूसोंकी बन आती थी। यदि सच पूछा जाय तो चापलूसों और चुगुलखोरोंके भरमें आनेके कारण ही इस धनी घरकी सारी सम्पत्ति मिट्टीमें मिल गयी।

शम्भुदयालने अपने मिथ्या वैभवका अनुभव करते हुए मधुर

प्रणय

[illegible] कहा,—और आनन्दका शुभ समाचार आ गया, शरीर तो लौटा आता होगा।

'हाँ हाँ भैया,' 'अब नहीं भैया,' 'हाँ भैया हाँ,' 'नहीं भैया नहीं,' आदि शब्दोंसे बैठक गूँज उठी। इतनेमें पाठकके दो-चार सच्चे मित्र [illegible] प्रेम प्रकट करनेके लिए आ गये। उन लोगोंको यह नया समाचार नहीं मिला था। आनन्दशरणने आदर-पूर्वक सज्जनोंको बिठाते हुए आनन्दके पत्रका हाल कह सुनाया। लोगोंने हर्ष प्रकट किया। इस प्रकार कुछ रुककर बहुतसे लोग आ जुटे और बातका सिलसिला जारी रहा।

इधर रमा अपनी उसी पहली अवस्थामें बैठी हुई थी। सबहीने पत्र पढ़कर सुनाया, दिखाया भी, दो-चार बातें भी कीं, किन्तु उसे कुछ पता नहीं। यद्यपि कानतक ये शब्द पहुँचे ही नहीं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सबकोंके निकट ही आकर तो वह भी बैठी हुई थी। हाँ यह अवश्य था कि वह संज्ञा-हीन थी, शब्दार्थ-ज्ञान उसे कुछ भी नहीं हुआ। हाय! इस मधुर अनुपम रूपवती युवती रमाकी दशा देखकर [illegible] आ जाती है। इस समय तो उसे पहचानना भी कठिन है। असमयमें कुम्हलाये हुए कुसुमकी होनेवाली भाँति दशा। मुख मुरझाया हुआ, सूखा और उदास है। न गालोंपर लाली है, न आँखोंमें तेज। पति-शोकने उसका सौंदर्य अपहरण कर लिया है! यद्यपि कमलिनी-सदृश कुसुम गन्धा-वेणी अब भी ज्योंकी-त्यों उसकी पीठपर लहरा रही है, वहिका

प्रणय

किनारेदार रेशमी साड़ी पहने हुए है, बदन बहुमूल्य चोलीसे कसा हुआ है, जहाँ-तहाँ हीरा पन्ना जड़ाऊ स्वर्णालंकार उसके शरीरपर जगमगा रहे हैं, तथापि रमाकी द्युति ही बदल गयी है। यदि ज्ञानदत्त अपनी प्रेयसीको इस स्थितिमें देखते तो उनका हृदय विदीर्ण हो जाता। कौन कह सकता है कि विधाताके निपुण हाथोंसे रची हुई रमाकी उस हँसीकी अपूर्व कमनीयताका दिग्दर्शन करनेके लिए ज्ञानदत्त व्याकुल न हो जाते? कार्तिकका महीना है; फिर भी कई दिनोंसे दिन-रात जलका फुहारा छूट रहा है; कई दिनकी झिपझिपाहटसे पृथिवीको आश्विन मासकी किंचित् संचित ज्वाला भी शान्त हो चली है; सृष्टिभरमें शीतलता आ गयी, पर रमाकी ज्वाला ज्योंकी-त्यों है। ओफ कैसी नादानी है! भला रमाकी हृदय-ज्वाला कहीं वर्षासे शान्त होनेवाली है? उसके उद्वेलित हृदयके उच्छ्वासमें कितनी ज्वाला है इसपर भी विचार किया है? रमाके उन करुण-कातर दीन नेत्रोंमें क्या है, यह जानना सहज नहीं। रमाकी अनन्य पति-भक्ति और शोक-पूर्ण स्थिति अकथनीय है। प्रभा जैसी कठोर-हृदया स्त्रीको छोड़कर संसारमें किसीका सामर्थ्य नहीं जो रमाकी विगलित निस्सहाय दीन दशाको देखकर पानी-पानी न हो जाय। रमाकी आधुनिक मुखाकृति उस भिखारिनीकी भाँति है जो मूक-वाणीमें बड़ी दीनता और अधीरताके साथ समूचे जगत्से पति-दर्शन-भिक्षा माँग रही है।

वाहरी अखबारी दुनिया! धन्य है तेरी लीला। यह तूने

क्या किया सर्वनाशिनी ! तू, तो 'भूल संशोधन' छापकर दूर हो गयी और यहाँ रमाका जीवन ही चौपट हो गया होता। बलिहारी है इस सम्पादन-कलाकी ! यदि रमाकी दशा देखकर भी तुझे अपनी कृतिपर लज्जा न आयी, यदि रमाकी अपूर्व-कष्ट सहिष्णुतासे भी तेरी 'बान' (आदत) न छूटी, तो तुझे किन शब्दोंमें और क्या कहा जाय, इसका निर्णय तू ही कर ! सम्पादन-कले ! यह कहकर तू अपना पिंड छुड़ानेका दुस्साहस न कर कि ऐसी त्रुटियोंका होना अनिवार्य है। क्योंकि संसारमें कोई ऐसी बुराई नहीं, जिसे रोकनेका कोई-न-कोई उपाय न हो। रमाकी मार्मिक यंत्रणाका स्मरण करके यदि तुझे शरम न आया, तो तू ही समझ कि संसार तुझे क्या कहेगा ! यदि इसी प्रकार समय-समयपर लोगोंको अकारण ही तेरी असावधानियोंसे असह्य पीड़ा पहुँचती रही, तो स्वयं ही विचारकर कि परमात्माके यहाँ तू कितने भयानक दंडकी अपराधिनी समझी जायगी ?

सासने वह पत्र रमाके सामने किया। रमाने उस ओर ध्यान नहीं दिया। देवकीने कहा,—ले बेटी भानूकी चिट्ठी आ गयी।

रमाने सुना ही नहीं ! यदि सुनती भी तो सम्भवतः यह बात उसे स्वप्नवत् प्रतीत होती। देवकीने रमाका किंचित् घूँघट हटा पत्र खोलकर उसके सामने रख दिया। रमाकी दृष्टि उस पत्रपर पड़ी। बहुत देरतक बड़े गौरसे उसे देखती रही। उस समय उसकी दृष्टि योगीकी दृष्टिके समान स्थिर थी। जान पड़ता है, उसकी

चेतना अब भी ठीक नहीं हुई है। हो सकता है कि अभी वह अक्षरोंकी पहचान कर रही हो। इतनेमें पड़ोसकी एक स्त्री आ गयी। उसने देवकीसे पूछा,—बहू अभीतक नहीं उठी क्या बहन ?

देवकीका ध्यान रमाकी ओरसे टूटा। आगतां स्त्रीकी ओर मुख करके बोली,—अभी तो इसे कुछ होश ही नहीं हुआ, बैठो।

पड़ोसिनने बहूकी ओर दृष्टि करके कहा,—मोरि दैया ! भला बहू अब तुम्हें क्या हुआ है ? ज़रा सोचो तो सही, तुम्हारे बराबर सौभाग्य संसारमें कितनी स्त्रियोंको प्राप्त होना है ? अब...

इतनेमें रमाने वह पत्र उठाया। उज्ज्वल ज्योत्स्नासे भीगी शरद्की एक नीरव विभावरीमें वायुका जो झोंका आया, उसके कल्पित स्पर्शसे रमाके प्राण सिहर उठे। मानो उसको किसीने जगा दिया—अद्भुत शक्ति भर दी। देवकीने पड़ोसिनको इशारेसे रोक दिया। पड़ोसिनने समझा कि कहना काम कर गया। अतः वह फिर कुछ बोलना ही चाहती थी कि देवकीने मना कर दिया। क्योंकि देवकी यह बात अच्छी तरह जानती थी कि बहू किसीकी बात नहीं सुन रही है। वास्तवमें बात भी ऐसी ही थी। पड़ोसिनकी बातें सुनकर उसने पत्र उठाया, यह बात नहीं है। अभीतक तो उसका ध्यान ही न-जानें कहाँ था। कहाँ क्या, स्वामि-मूर्तिमें तन्मय था। बहुत देरतक स्वामि-लिखित अक्षरामृतका दृष्टि-पान करनेके बाद अब उसमें चेतना आयी है। बलिहारी है, रमाकी स्वामि-भक्तिकी ! रमा उस पत्रको आद्योपान्त पढ़ गयी। बँधा हुआ जल-प्रवाह

प्रणय

कई दिनोंके बाद टूट जानेके कारण चमक पड़ा। जान पड़ता है कि हृदयमें भीषण ज्वाला उत्पन्न होनेके कारण अबतक वह जल-धारा वहीं भस्मसात् होती जाती थी, और अब वह ज्वाला कम हो गयी, अतः जल-प्रवाह नेत्रोंद्वारा बह चला। रमा होशमें आया और मुँह पोंछ लिया। स्त्रियोंको यह सब देखकर भय हुआ।

धीरे धीरे और सब स्त्रियाँ चली गयीं। प्रभा भी अपने कमरेमें अकेली न रह सकी। सरला पलंगपर आकर बैठी हुई थी। प्रभा भी उसके पास हो जा बैठी। देखा, रमाकी आँखें मोतीके ये-ये दाने निकल रही हैं और उनसे पृथ्वी माता गर्भवती हो रही है। प्रभाने सरलाकी ओर मुख करके नेत्र-कटाक्ष किया। सरला उसका नेत्रद्वारा यह कहना अच्छी तरह समझ गयी कि, देखो ढोंग; आज आँसू भी गिर रहा है।

अरी दुष्ट-स्वभावा प्रभा! रमाने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू उसके पीछे हाथ धोकर पड़ी है? बालिका सरलाके मनमें रमाके प्रति घृणाका भाव उत्पन्न करनेसे तेरा क्या उपकार होगा? नहीं-नहीं, भूल हुई। सरलाके द्वारा ही तो तेरा अभीष्ट-सिद्धि होगी। सच-मुचही तू एक चतुर कुटनी है। तू स्वयं तो दूर रहना चाहती है और सरलाके द्वारा रमाकी बदनामी करना चाहती है। फिर सरला-को अच्छी तरह साधे बिना तेरा कार्य कैसे सिद्ध होगा। प्यारी सरला! इस कुचालिनी प्रभाके कुचक्रसे ईश्वर तुझे बचावें। यदि प्रभामें समझने और पहचाननेकी शक्ति होती तो वह जानती कि

प्रणय

रमाका पति-प्रेम कितना उच्च और आदर्श-पूर्ण है ! पर यह समझना बिलकुल भूल है; जो प्रभा रमाको मटियामेट करनेका दावा रखती है, उसमें क्या इतनी साधारण बुद्धि भी नहीं है ? वह सब कुछ जानती है, केवल ईर्ष्याके कारण उसकी ऐसी अनभिज्ञता प्रतीत हो रही है । किन्तु इसपर तो न-जानें क्यों विश्वास नहीं होता । रमाके प्रति प्रभाका सन्देह करना असम्भव नहीं कहा जा सकता । युवती स्त्रीका अन्त ईश्वर भी नहीं जानता । रमामें तो यौवन और सौन्दर्य दोनों हैं । अच्छा तो क्या प्रभाका समझना ठीक है ? कदापि नहीं ! अहा ! रमाके स्वप्न-रञ्जित नेत्रोंमें क्या ही विह्वल करुणा-पूर्ण माधुर्य विराजमान है ! कौन माईका लाल अपने हृदयपर हाथ रख-कर कह सकता है कि रमा दुश्चरित्रा है ? प्रभे ! सच बता तू ईर्ष्या-दाहके कारण ही ऐसा कह रही है न ? नहीं ? तो क्यों ? अच्छा मालूम हो गया । कभी-कभी ईर्ष्या-द्वेषके कारण मनुष्यकी बुद्धि उल्टी भी हो जाती है । अतः रमाके प्रत्येक कार्यको तेरी दृष्टि विपरीत भावसे ही देखती होगी । प्रभे ! अब भी सँभल जा; मालूम है कि ज्ञानदत्तका सुसम्वाद मिलनेसे तेरी इच्छापर बड़ा गहरा धक्का पहुँचा । पर यह तेरी भूल है, ज्ञानदत्त और रमासे तेरा सर्वथा उप-कार ही होगा । यदि तू शुद्ध हृदयसे समझनेकी चेष्टा करेगी तो जान सकेगी कि रमाके हृदयका पवित्र पति-प्रेम क्षुद्र-नदीका ससीम जल-प्रवाह नहीं है;—वह है अनन्त सीमा-हीन प्रशान्त सागर वह साधारण वायुसे हिलनेवाला नहीं है, और न साधारण

सूर्य-तापसे उसमें उष्णता ही आ सकती है। रमाको अच्छी तरह मालूम है कि स्वामि-प्रेम संसारको दिखलानेके लिए नहीं है,—स्वामि-प्रेम पतिके मिलनके लिए नहीं है,—स्वामि-प्रेम कहने-सुननेकी भी वस्तु नहीं है। इसलिए यह न समझो कि रमाका कोई काम दिखौवा है। समय बड़ा ही बलवान है, नहीं तो रमाकी तरफ अँगुली उठानेकी हिम्मत किसीकी न पड़ती। जब विधाता ही उसके वाम हैं—व्यर्थ ही इतना कष्ट पहुँचा रहे हैं, तो फिर मनुष्यका वाम होना आश्चर्य-जनक नहीं। यदि और समय होता तो प्रभा यहाँ आती ही न और यदि आती भी तो इतना अन्तर होनेपर नाना प्रकारके वाक्य-विन्यासमें कलहका उपसंहार करती हुई तुरन्त चली जाती। देवकी अन्यान्य स्त्रियोंके साथ बैठकर रमाकी सुश्रुषा कर रही है, यह क्या प्रभाके सहन करने योग्य बात है ?



दसवाँ परिच्छेद

सन्ध्यादेवीका आगमन हुआ। शंखोज्ज्वल शुभ्र-ज्योत्स्नासे पृथिवी आलोकित हो उठी। आज कई दिनोंके बाद आकाश निर्मल है। गोपीबाबूका साफ-सुथरा विशाल कमरा जगमगा रहा है। नीचे फर्शपर कीमती कालीन बिछा हुआ है, उसके ऊपर करीनेसे एक सुन्दर टेबुल सजाकर रक्खी हुई है। टेबुलके चारों ओर मखमली

प्रणय

गद्देकी रंग-बिरंगी कुर्सियाँ लगी हैं। टेबुलके ऊपर दो-चार पत्र-पत्रिकाएँ तथा संगमरमरका बना हुआ एक कलमदान और एक होल्डर-स्टैंड आगरेकी कारीगरीके परिचायक स्वरूप कायदेसे रक्खे हुए हैं। दीवारके सहारे चारों ओर पुस्तकोंसे भरी हुई शीशेदार आलमारियाँ खड़ी हैं। सुनहले फ्रेम-(चौखट) वाले चित्रों, ब्रैकट्स, नकली फूलोंके गमलोंसे कमरा सुसज्जित है। बेल-बूटेदार पेंटिंगसे कमरेकी शोभा दूनी हो रही है। बाहर ठीक दरवाजेके ऊपर एक गोलाकार घड़ी टँगी है। फुल पावरकी वस्त्राच्छादित तीन बिजली बत्तियाँ जल रही हैं, इससे यह कमरा समुज्वल सुन्दर प्रभातकी भाँति मनोरम प्रतीत होता है। यही गौरीबाबूके पढ़ने-लिखने तथा इष्ट-मित्रोंके साथ उठने-बैठनेका कमरा है। यह कमरा चौकके भीतरी भागमें चार-पाँच हाथकी ऊँचाईपर है। गौरीबाबू कलकत्तेके धनी-मानी लोगोंमें हैं और यह उनका निजी मकान है; इधर दो वर्षसे पिताका देहान्त हो जानेके कारण गौरीबाबू ही इस मकानके स्वामी हैं।

इसी कमरेमें एक तरफ तख्तपोशके ऊपर सादे राजहंसके पंखोंके समान कोमल और स्वच्छ बिछौनेपर अस्पतालसे लाकर रुग्ण ज्ञानदत्त लिटाये गये हैं। सिरहानेका तकिया ऊँचा करके उसीके सहारे ज्ञानदत्त लेटे हुए हैं और आसपासमें चार-छः मित्र कुर्सियोंपर बैठे शोक-प्रकाश कर रहे हैं। यद्यपि अब ज्ञानदत्त भलीभाँति चल-फिर सकते हैं, किन्तु गौरीबाबू उन्हें

प्रणय

कहीं भी नहीं जाने देंगे, इसकी भी चर्चा हो रही है। दिनभर मित्रों-का आना-जाना लगा रहता है, इसलिए आनन्दकी इच्छा भी कहीं जानेकी नहीं होती। फिर भी कल सन्ध्या समय मोटरसे गौरीबाबूने हवाखोरीके लिए क्रिकेट मैदान ले चलनेका प्रलोभन दे रखा है। 'कलकत्ता हो आराम क्यों न हो, इधर-उधर घूमने फिरनेवाले आदमीके लिए एक जगह पड़े रहना, जेलके कष्टसे कम दुःखदाई नहीं होता,'—यह बात गौरीबाबूने कही। रामदीनने इसका समर्थन करते हुए कहा,—हाँ भी सच है बाबूजी। हमारे आनन्द बबुआ जी तो ऐसे थे कि सब दिन घूमते रहे।

रामदीनकी बातें सुनकर मित्र-मण्डली हँस पड़ी। गौरीबाबूने इशारेसे लोगोंको रोका और रामदीनकी ओर मुख करके कहा,—ठीक है पण्डितजी।

रामदीनने कहा,—अब दो ही तीन दिनमें घर चलना है, इस बार तो कालीमाईका दर्शन भी कर लेना चाहिए।

आजकलके युवकोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो गयी है कि वे पुराने आदमियोंकी बात बड़े चावसे काटते हैं। एकने कहा,—दर्शन करनेसे क्या होता है पण्डितजी?

रामदीनने कहा,—देवीके दर्शनसे बड़ा फल होता है बाबू। पुराणोंमें बड़ा माहात्म्य लिखा है।

युवकने कहा,—आपका या और किसीका?

बेचारे रामदीनको समझमें कुछ भी नहीं आया। कहा,—ऐं!

प्रणय

युवकने कहा,—हूँ।

सबलोग खिलखिलाकर हँस पड़े। ज्ञानदत्तसे भी उस हँसीमें योग दिये बिना न रहा गया। बात टालकर हँसीको रोकते हुए उन्होंने कहा,—अच्छा, यह तो बतलाओ कि मुझे किस ट्रेनसे जानेमें आराम मिलेगा? सुनते हैं, आजकल गाड़ीमें भीड़ बहुत होती है।

युवकने कहा,—बस पञ्जाबमेलसे जाना ही ठीक है।

ज्ञानदत्तने पूछा,—तो फिर सीट रिजर्व कैसे होगी? कहीं सीट न मिली तो?

गौरीबाबूने कहा,—वाह भाई, तुम भी अच्छे रहे! अरे इस रिश्वतखोरीके युगमें भी ऐसी बातें कर रहे हो?

ज्ञानदत्त मुस्कराकर चुप रह गये। युवकने कहा,—घबराइये मत, इसका प्रबन्ध गौरीबाबू करेंगे।

बहुत देरतक वार्त्तालाप होनेके बाद सबलोग उठकर चले गये। एकान्त पाकर ज्ञानदत्तपर आर्थिक चिन्ताका भूत सवार हो गया। सोचने लगे, पासमें केवल पन्द्रह रुपये हैं, कैसे काम चलेगा! कमसे-कम एक सेकेण्ड और एक थर्डका टिकट लेनेके लिए तथा राह-खर्च और घूँस देनेके लिए पचास रुपया होना बहुत जरूरी है। इसके अलावा इतने दिनोंके बाद क्या खाली हाथ घर चलना उचित है? औरोंकी बात तो दरकिनार, क्या भैयाके लड़के को भी योंही गोदमें लेंगे? लोग क्या कहेंगे?

यही न कि बच्चोंके प्रति इनके दिलमें कुछ भी प्रेम नहीं है। यदि होता तो क्या दो रुपये भी उसके हाथपर न रख देते? अच्छा, उसके (रमाके) लिए कौन कौनसी चीजें ले चलनी चाहिएँ? वह रुपया तो लेगा नहीं, और हम देंगे ही क्या कह कर? अवश्य दो-एक अच्छी चीज उसके लिए खरीद लेनी जरूरी है। किन्तु माँ और भाभी तथा भैया और बाबूजीके लिए कुछ न ले चलना बड़ा अनुचित होगा। लोग कहेंगे यह केवल स्त्रीका दास है। तो फिर कैसे काम चलेगा? पासमें तो कुछ था, वह तो अस्पतालमें खर्च हो गया। कहाँसे रुपये आवेंगे? गौरीबाबूसे दो-तीन सौ रुपये ले लेनेमें क्या हर्ज है। नहीं, यह नहीं होनेका। मित्रके साथ लेन-देनका बर्ताव करना मूर्खता है,—मैत्रीमें फर्क डालना है। प्राणोंपर आ बीतनेपर ही मित्रकी सहायता लेनी चाहिये, अन्यथा नहीं। सो भी कहकर नहीं, यदि वह अपनेसे सहायता दे, तब।

मनुष्य कभी-कभी उचित कारण न होते हुए भी बिना किसी युद्धमें विजय प्राप्त किये ही विजयीके और बिना पराजित हुए ही विजितके क्रमशः गर्व और विषादका अनुभव करता है। शान्तनुके सम्बन्धमें भी यही बात हुई। जब बहुत राततक सोचते-विचारते थक गये, तब अचानक उन्होंने घर पहुँचनेपर लोगोंकी सम्मिलन-कल्पना की। सोचा,—मेरा नव-जन्म हुआ है, अतः माँका हृदय मुझे देखनेके लिए बेतरह छटपटा रहा होगा। हृदयसे लगाते ही उनकी—रमाकी—आन्तरिक-वेदना मुरझा जायगी। अहा! बीमारी-

स्थाके आनेपर भी मनोहर लज्जा शीलता-युक्त उसकी बाल्यी-वसुलभ-चपलता कितनी प्यारी लगेगी ! क्या अब भी वह वैस ही होगी ? पहले तो वह मेरे सामने शर्मसे गड़ी जाती थी, क्या अब भी वैसा ही करेगी ? अवश्य वैसा ही करेगी । मेरे पहुँचनेपर पहले वह अबोध-बालिकाकी भाँति सिसकेगी ! उस समय मैं भी अपनेको न सँभाल सकूँगा । पर यह दृश्य तो क्षणभरमें ही विलीन हो जायगा और मुझे देखकर उसके हृदयमें एक विचित्र प्रकारकी आनन्द-स्फूर्ति संचारित हो जायगी । फिर तो मैं उसे पकड़कर खूब दिक करूँगा । उसे चिढ़ानेमें क्या ही आनन्द मिलेगा !

इस प्रकारकी सुख-मय स्मृति-कल्पनामें आनदत्त विभोर हो गये । खुशीसे उनका चेहरा चमक उठा । फिर सोचने लगे,—बाबूजीके पैरोंपर गिरते ही उनके शरीरमें प्राणका संचार हो जायगा । मैं क्या लाया हूँ और क्या नहीं, इसकी सुध किसे रहेगी ? मैं जीता-जागता उनके सामने पहुँचूँगा, यह क्या कम आनन्दकी बात है ? किन्तु भाभीको प्रसन्न करनेके लिए मेरा पहुँचना ही काफी न होगा । इसलिए उनके लिए तथा उनके लड़केके लिए कुछ-न-कुछ ले चलना आवश्यक है । भैयाकी विशेष चिन्ता नहीं है । मैंने यहाँ आकर बड़ी भूल की । यदि अपने डेरेपर होता तो थर्ड क्लासका टिकट लेकर चुपकेसे गाड़ीपर सवार हो जाता । किन्तु अब यहाँ गौरी-बाबूसे कैसे कहूँ कि मैं थर्ड क्लासमें जाऊँगा, मेरे पास रुपये नहीं हैं ? वह अपने मनमें क्या कहेंगे ? यही न, कि यह थर्ड क्लासका ही

आदमी मालूम होता है। और उनको तो विशेष चिन्ता नहीं, पर उनके नौकरों-चाकरोंकी दृष्टिमें भी मैं उतर जाऊँगा। और फिर ऐसा करनेपर भी तो छुटकारा नहीं हो सकता। गौरीबाबू तुरन्त हाँ कर बैठेंगे,—"कोई चिन्ता नहीं; आपके पास रुपये नहीं हैं तो क्या? मेरे पास तो है न? आखिर वे किस काम आवेंगे?" गौरीबाबू क्या मुझपर स्वाभाविक कृपा और प्रेम रखते हैं? यदि उनका स्वाभाविक प्रेम न होता तो वह अकस्मात् यह कथा कहते कि,—'तुम हमारे यहाँ आओ। ऐसेपर कहोगे तो तुम्हें कष्ट होगा।' ओह! गौर करनेसे दिनमें जितना अबतक कहनेसे कम पचास सौ रुपये तो बाबूने मेरे ऊपर खर्च किये होंगे। इस प्रकार मित्रका मिलना कठिन है। हाय! मैंने गौरीबाबूके साथ कुछ भी न किया! परमात्माने मुझे किसी योग्य न बनाया।

इसपर विचार करनेसे यह प्रकट होता है कि शान्तमें शास्त्रीय ज्ञानकी तो कमी नहीं है, पर व्यावहारिक ज्ञानकी कुछ-न-कुछ न्यूनता अभी अवश्य है। यदि न्यूनता न होती तो वह धनी मित्रोंके सामने यहाँ कलासमें बैठना अपमान-जनक कदापि न समझते। सम्मान-लोलुप युवक! अपनी वास्तविक स्थितिपर पर्दा डालकर मैत्री बढ़ानेकी आशा न करो! क्या धनी और निर्धन मनुष्योंमें मैत्री नहीं होती? क्या सुदामाजी भगवान् श्रीकृष्णकी मैत्रीके योग्य थे? मैत्रीकी दृढ़ता सत्यतामें है; नकि मिथ्या आडम्बरमें। मैत्रीका सम्बन्ध हृदयसे है नकि बाह्य-पदार्थोंसे। किन्तु इस कमीसे

लिए ज्ञानदत्तको दोषी ठहराना उचित नहीं। अभी उनकी अवस्था ही क्या है? संसारका अनुभव एक दिनमें नहीं होता। किसी-न-किसी दिन गौरीबाबूके हृदयकी विशालता ज्ञानदत्तको स्वयं ही ज्ञात हो जायगी।

अन्तमें दो दिनके बाद ज्ञानदत्तने यह स्थिर किया कि आज डेरेपर चलना चाहिए और वहाँसे रुपयेका प्रबन्ध करना चाहिए। इसी निश्चयके अनुसार उन्होंने काम भी किया। गौरीबाबू अपनी आफिस गये थे, किन्तु अभीतक आये नहीं। ज्ञानदत्तने घरमें कहला भेजा कि,—साढ़े चार बज गये, अब तक गौरीबाबू नहीं आये; इसलिए अब मैं अपने डेरेपर जाता हूँ, बहुत जरूरी काम है। कल सवेरे आकर उनसे मिलूँगा।

डेरेपर पहुँचकर उन्होंने दरवाजा खोलकर देखा कि चारों ओर कागज-पत्र तथा पुस्तकें बिखरी हुई हैं। टेबुल और कुर्सी तथा कमरेकी प्रत्येक वस्तुको पवनदेवने रज-कणसे ढँक दिया है। मानो उन चीजोंको चोरोंकी दृष्टिसे बचानेके लिए पवनदेवने प्रवीण पहरेदारका काम किया है। ज्ञानदत्तने पहुँचते ही कमरेको साफ करया, बाद अंग्रेजीमें एक पत्र लिखकर नौकरद्वारा उस अंग्रेजके पास भेजा, जिसे पढ़ाने जाते थे। लगभग दस बजे रातको साहबके यहाँसे पत्रका उत्तर लेकर नौकर वापस आया। यह पढ़कर ज्ञानदत्त प्रसन्न हुए कि कल बारह बजे सौ रुपये आपके पास भेज दिये जायँगे। पश्चात् उन्हें नींद आ गयी। भोरमें उठकर ज्ञानदत्तने देखा

कि प्रातःकालका प्रकाश धुएँमें चन्द्रमाकी हँसीके समान स्वच्छ होकर प्रस्फुटित हो रहा है। आकाशमें जहाँतहाँ सफेद बादलके टुकड़े निष्प्रयोजन इधरसे उधर फिर रहे हैं।

सड़ककी ओरके बरामदेमें एक कुर्सीपर बैठकर ज्ञानदत्त निर्मल प्रभातकी स्फूर्तिसे मनःप्राण पुलकित हो रहे थे। इतनेमें सड़कपर तेजीसे आती हुई मोटरकी आवाजने उनका ध्यान भंग कर दिया। सड़ककी ओर दृष्टि डालते ही मकानके दरवाजेके सामने वह मोटरकार खड़ी हो गयी। देखनेपर मालूम हुआ कि गोरीबाबू हैं। ज्ञानदत्त प्रसन्न होकर उठे और कमरेको लाँघकर जीनेके बरामदेमें पहुँचे ही थे कि सीढ़ियोंकी चढ़ाई तय करके गोरीबाबू आते दिखलायी पड़े। ज्ञानदत्त कुछ कहना ही चाहते थे कि गोरीबाबू बोल उठे,—भाई वाह? मुझसे भेंट नहीं की और चले आये। रातको क्या खाया पिया?

ज्ञानदत्तने संकुचित भावसे कहा,—क्षमा करना गोरीबाबू, जब तुम आफिस चले गये, तब मुझे एक जरूरी कामकी याद आयी। फिर भी मैंने तुम्हारे लौटनेकी पूरी प्रतीक्षा की।—यह कहते हुए ज्ञानदत्त और गोरीबाबू कमरेमें आकर बैठ गये।

गोरीबाबूने पूछा,—ऐसा कौनसा काम था, जिसे तुम वहाँ रहकर नहीं कर सकते थे?

ज्ञानदत्तने साहबका पत्र खोलकर दिखलाया। कहा,—आज यदि यह काम न होता तो हफ्तेभर मुझे और रुकना पड़ता।

क्योंकि यह अंग्रेज हफ्तेभरमें एक ही दिन वेतनभोगियोंकी बातें सुनता है। अंग्रेजलोग कितना नियम-बद्ध काम करते हैं, यह तो तुम जानते ही हो। यद्यपि यह काम वहाँसे भी किया जा सकता था, तथापि मेरा यहाँ आना बड़ा आवश्यक था; क्योंकि डायरीमें देखकर उसे यह लिखना था कि किस तारीखसे किस तारीखतके मैंने उसे पढ़ाया है।

गौरीबाबूने कहा,—तो इसकी कौनसी जल्दी पड़ी थी। घरसे लौटकर भी तो रुपये उससे ले सकते थे। खैर जो हुआ सो हुआ, अब यह बतलाओ कि कल तुमने भोजन क्या किया?

ज्ञानदत्तने हिचकिचाते हुए कहा,—दूध पिया था। कल कुछ भी खानेकी इच्छा नहीं थी।

इसके बाद गौरीबाबूने घर चलनेके लिए अनुरोध किया किन्तु ज्ञानदत्तने नम्रता-पूर्वक अपने कामका हर्ज बतलाकर उनसे क्षमा मागी। पश्चात् गौरीबाबू चले गये। ज्ञानदत्त नौकर की प्रतीक्षामें बैठे रहे। ठीक एक बजे साहबका नौकर आया। ज्ञानदत्तको सलाम करते हुए एक लिफाफा दिया। ज्ञानदत्तने लिफाफा खोलकर देखा, तो उसमें एक पत्र और सौ रुपयेका एक नोट था। पत्रमें आग्रहपूर्ण शब्दोंमें लिखा था कि घरसे लौटनेपर मुझसे अवश्य मिलियेगा। ज्ञानदत्त मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। सचमुच ही अंग्रेजलोग वादेके बड़े पक्के होते हैं। इतनेमें उनके कानमें मानो किसीने कहा,—"सन् १८५७ के गदरके समय महारानी विक्टोरियाकी घोषणा तभी तो

प्रणय

काममें लाया जा रहा है? पञ्जाबवालोंने जर्मन युद्धके समय भारतीय सिपाहियोंकी जो आत्मोत्सर्गता प्रगट किये थे, उनके चरितार्थ करनेमें अंग्रेजोंने कमाल किया! पंजाबके जालियाँवाला बागमें अंग्रेजोंकी की हुई सिपाही बहादुरोंको [illegible] याद रक्खेगा।" इतना सुनते ही आनन्द [illegible] हो गये। [illegible] और न जाने क्या क्या बकने, किन्तु [illegible] लगे। [illegible] पहुँचकर [illegible] और कहा,—मेम साहबसे हमारा सलाम कहना। 'आनन्द [illegible]' [illegible] हुआ।

इस प्रकार कई दिन बीत गया। [illegible] जा चुकीं। [illegible] जुड़ने लगा। [illegible] आरम्भ [illegible]। आनन्द बाबू अपनी [illegible]। गौरीबाबूने कहा,—जरा जल्दी करो, नहीं तो गाड़ी न मिलेगी।

मित्रकी [illegible] सुनकर आनन्दबाबूको सफरका ख्याल हुआ। बोले,—क्या टाइम है गौरीबाबू?

गौरीबाबूने कहा,—सात बजे हैं।

इतना सुनते ही आनन्दबाबू घबरा उठे। झटपट सामान ठीक करके सबलोग घोड़ागाड़ी और मोटरमें बैठकर स्टेशनकी ओर रवाना हुए। सड़कपर बिजली बत्तियाँ जगमगा रही थीं। दोनों ओर दूकानें सजी थीं; ऐसा प्रतीत होता था, मानो दूकानपर रक्खी हुई चीजें बिक्रयार्थ नहीं हैं बल्कि दर्शनार्थ हैं। उस समय कलकत्ता

प्रणय

महानगरी स्वर्णपुरीकी अनुहार कर रही थी। यह दृश्य अधिक देरतक आँखोंके सामने न टिका, ज्ञानदत्तकी मोटर पुलपर पहुँच गयी। भगवती भागीरथी पति-सम्मिलनके लिए आतुर हो, बड़े वेगसे दौड़ी जा रही थीं। इस उद्विग्नतामें भी उनका इठलाना बड़ा ही मनोहर था। किनारेकी कतार-बद्ध बत्तियोंके प्रकाशमें अस्पष्ट अट्टालिकाएँ ऐसी भली मालूम होती थीं, मानो देवाङ्गना-समूह श्री गंगाजीकी आरती करनेके लिए खड़ा है।

सबलोग स्टेशन पहुँचे। गाड़ी छूटनेमें केवल सात मिनटकी देर थी। उत्सुकताके साथ टिकट लेकर सबलोग ज्ञानदत्तकी सीट ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़नेमें एक मिनट भी नहीं लगा कि गौरीबाबूको रिजर्व सीट मिल गयी। ज्ञानदत्तका सब सामान रखा गया, विस्तरा लग गया। मित्रोंने पुष्प-मालाओंसे उनकी यथोचित सम्वर्द्धना की। गौरीबाबूकी आँखोंमें आँसू भरे थे। ज्ञानदत्तका सामना होते ही वे छलछला पड़े। अब ज्ञानदत्त भी अपनेको न सँभाल सके। ग्लानि-युक्त हृदयसे मुँह फेर लिया। इतनेमें गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी। ज्ञानदत्त गाड़ीमें दरवाजेके पास आकर खड़े होगये। गौरीबाबूने आँसू पोछते हुए बड़े कष्टसे कहा,—पहुँचका पत्र भेजनेमें देर न करना।

ज्ञानदत्त 'अच्छा' कहना चाहते थे, पर कण्ठ-द्वार न खुला; गाड़ी भक-भकाती हुई आगे बढ़ गयी। मित्र-मण्डली अपने स्थान-पर खड़ी आशाभरी दृष्टिसे ताक रही थी। जब ज्ञानदत्त नजरोंसे

प्रणय

ज्ञानदत्तको उसकी मूर्खतापर बड़ा दुःख हुआ। सोचा, पक्षपात ही न्यायका गला घोंटता है। इन अंग्रेजोंके साथ मैंने भी इतना शिष्ट बर्ताव किया, और यह जातीय पक्ष-पातके कारण ऐसा अन्याय-पूर्ण शब्द निकाल रहा है। कहा,—क्या यही अंग्रेज-जातिकी सभ्यता है?

ज्ञानदत्तकी उक्त बातोंपर सब अंग्रेज बिगड़ खड़े हुए। ज्ञानदत्त भी अब आपेसे बाहर हो गये। हो-हल्ला सुनकर गाड़ीके दरवाजेके सामने और भी बहुतसे लोग इकट्ठे हो गये। बातको बढ़ाना इसीको कहते हैं? पं० रामदीन भी सेकेण्ड क्लाससे निकलकर आ गये। ज्ञानदत्तने कहा,—पंडितजी आप सामान देखिये, मेरा जो कुछ होनेवाला होगा, सो होगा।

रामदीनने कहा,—नहीं बबुआ, ऐसा न करो। साहबलोगोंसे झगड़ना ठीक नहीं है।

ज्ञानदत्तने उनकी बात नहीं सुनी और अपना बिस्तरा ठीक करने लगे। विलियम्सनने उनका हाथ पकड़ लिया और उन अंग्रेजने बिस्तरेको नीचे फेंक दिया।

ज्ञानदत्तके शरीरमें काफी ताकत थी। उन्होंने बल-पूर्वक विलियम्सनको झटक दिया, वह धड़ामसे गिर पड़ा।

इतनेमें बाहर खड़े हुए कई अंग्रेज गाड़ीमें घुसकर ज्ञानदत्तको पीटकर बाहर करनेका प्रयत्न करने लगे। अंग्रेजोंका यह ऐक्य देखकर बाहर खड़े हुए एक हिन्दुस्तानी सज्जनने भारतीयोंको

सम्बोधित करके कहा,—क्या तमाशा देख रहे हो, हिन्दू-मुसलमान भाइयो ! ये लोग एक भाईकी बेइज्जती कर रहे हैं और हमलोग खड़े तमाशा देख रहे हैं ! बड़े शर्मकी बात है ।

उक्त बातें सबलोगोंके कलेजेमें चुभ गयीं । फिर क्या था, सबके सब गाड़ीमें टूट पड़े और ज्ञानदत्तकी मान-रक्षाके लिए अंग्रेजोंका गला पकड़-पकड़कर बाहर फेंकने लगे । दो-एकके बाहर फेंकते ही सब अंग्रेजोंकी सिटल्ली भूल गयी और देखते-ही-देखते वहाँसे सब अंग्रेज दुम दबाकर खिसक गये । ज्ञानदत्त अपने स्थानपर जा बैठे । गाड़ीने सीटी दी, शीघ्रतासे और लोग भी जहाँ-तहाँ बैठ गये । गाड़ी भकभक करती हुई शानके साथ रवाना हो गयी ।

ज्ञानदत्तको इस विजयसे प्रसन्नता तो अवश्य हुई, किन्तु वह पश्चात्तापसे खाली नहीं था । भारतीयोंकी एकता देखकर तो अत्यन्त प्रसन्नता हुई, किन्तु महात्मा गाँधीके सिद्धान्तोंका खून हुआ, यह सोचकर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ । वह इसी चिन्तामें निमग्न थे कि एक यूरेशियन टिकट चेकरने ध्यान भंग कर दिया ! टिकट दिखलाकर शायद वह फिर विचार-मग्न हो जाते, लेकिन एक हास्यास्पद घटनाने वैसा न होने दिया । बात यह थी कि उस गाड़ीमें जो अंग्रेज पहले बैठे थे, उनमें दोको छोड़कर बाकी दूसरी गाड़ीमें चले गये थे और उनकी जगहपर झगड़ेसे अनभिज्ञ तीन भारतीय युवक गाड़ी छूटनेके समय आ बैठे थे । ज्ञानदत्तका टिकट चेक करनेके बाद टिकट कलेक्टरने उनसे टिकट दिखलानेके लिए कहा।

प्रणय

तब युवक अपने-अपने बूटके फीते खोलने लगे। युरेशियनने कहा, महाशयजी कृपा करके टिकट दिखला दीजिये।

एक युवकने जूता खोलते हुए ही कहा,--निकालकर अभी देता हूँ, घबराओ मत।

युरेशियनने कहा,—अच्छी बात है।

युवकने कहा,—अच्छी बात तो नहीं हुई।

युरेशियन थोड़ी देरतक खड़ा रहा। जान पड़ता है, उसने उस-की बात नहीं सुनी। जब टिकट किसीने नहीं दिखलाया, तब उसने कहा,—जरा शीघ्रता कीजिये।

युवकने कहा,—आपहीके वास्ते जूता खोल रहा हूँ, जनाब।

युरेशियनको झेंप आ गयी। युवकोंने जूतेमेंसे टिकट निकालकर दिखला दिये। आनन्दको बड़ा हँसा हुआ। समझा कि ये सब कालेजके समझदार लड़के हैं।--वास्तवमें बात भी यही थी।



ग्यारहवाँ परिच्छेद

रमा अपनी सास देवकीका स्नेहानुरोध-भार अधिक देरतक वहन न कर सकी। यद्यपि उसकी आन्तरिक इच्छा तो यह थी कि जबतक स्वामीका दर्शन न करूँगी तबतक मैं यहाँसे उठूँगी ही नहीं और यदि उठूँगी भी तो केवल उनके दर्शनहीके लिए। तथापि वह ऐसा न कर सकी। सासकी स्नेहभरी आश्वासनपूर्ण बातोंसे पत्र पढ़नेके बाद रमाको उठना ही पड़ा।

आज ही ज्ञानदत्त आनेवाले हैं। रमाके हृदयमें पति-दर्शनकी उत्कण्ठा वारि-प्रयासी चातककी अपेक्षा भी अधिक सुदृढ़ हो गयी है। उसका असीम धैर्य प्रचुर वर्षा वारि-प्राप्त क्षुद्रा-तटिनीकी भाँति विपर्यास्त हो गया। यदि और समय होता तो वह लुक छिपकर यथा-साध्य अपने कमरेकी सजावट करती, सरला आदिकी छेड़खानीका आनन्द लूटती, हृदयमें हर्षोत्फुल्लताका अनुभव करती, किन्तु इस समय उसकी दशा ही विचित्र है। चाञ्चल्य-भाव तो उसमें आया ही नहीं।

दरवाजेपर बहुतसे बच्चे खेल-कूद रहे थे, बाहर-भीतर आ-जा रहे थे। जरा भी खटका होनेपर सबके-सब चतुर सेनाकी भाँति एक साथ स्तब्ध होकर ज्ञानदत्तकी टमटम देखने लगते और विफल होनेपर फिर खेलनेमें योग देते थे। जिस

प्रणय

प्रकार बारातमें आतशबाजी के लिए हाथी सबसे पहले लड़कीवाले-के दरवाजेपर पहुँचनेका विपुल प्रयास करते हैं, उसी प्रकार बाल-समुदायका प्रत्येक बालक भी ज्ञानदत्तके आगमनका समाचार सबसे पहले घरमें पहुँचानेके लिए उत्सुक था। इसीलिए कई बार व्यर्थ समाचार देनेके कारण उनमें अधिकांश झूठे भी हो गये थे। ठीक समय-पर गाड़ी दिखलायी पड़ी। लड़के घरकी ओर टूट पड़े। कुछ तो रास्तेमें ही धक्केसे गिरकर जमीन चूमने लगे, कुछ दरवाजेपर ही अटक गये और कुछ समाचार लेकर देवकीके पास गये। किसीने कहा,—'माता! भैया आ गये हैं।' किसीने कहा,—'बधा आवत होवें।'

अबकी बार देवकीने झुँझलाकर कहा,—चल झूठे कहींके। जाओ सबलोग बाहर खेलो। व्यर्थ ही मेरे पास काँव-काँव न करो।

लड़के अपने वचनकी सत्यताके लिए कसमें खाने लगे और देवकीके ऊपर गिरने लगे। इतनेमें दूसरेने आकर कहा,—लालू बबुआ आ गये।

अब देवकीको विश्वास हुआ। हृदयकी धड़कन और भी तीव्रतर हो गयी। अधिक देरतक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी कि सबलोगोंसे मिल-भेंटकर ज्ञानदत्त माँके पास आ गये। आते ही वह माताके पैरोंपर गिर पड़े। वहाँ देरतक अपने आँसुओंसे माताके पाँव पखारते रहे। माता देवकी भी अश्रु-वर्षाद्वारा लड़केको शीतल करनेका प्रयत्न कर रही थी। माँ-बेटेका हृदय-तालिका वर्णन करना असम्भव है।

दोनोंकी यह स्थिति कबतक रहेगी, यह कौन कह सकता है। इतनेमें एक स्त्रीने देवकीका ध्यान भंग कर दिया। बोली,—लड़केको कुछ पानी पिलाओ बहन। यह क्या कर रही हो ?

मानो देवकीको सहारा मिल गया। साहस करके अश्रु-मोचन करती हुई करुणा-कम्पित स्वरमें बोलीं,—उठो बेटा, जरा पानी पी लो प्यास लगी......

इतना कहते ही गला फँस गया। ज्ञानदत्त उठकर चारपाईपर बैठ गये। महान अपराधीकी भाँति उनसे किसीकी ओर ताका नहीं जाता था। यदि आँगनमें दृष्टिपात करते तो अवश्य ही भाभीको पूछते कि कहाँ हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश उधर उनकी दृष्टि ही न गयी।

हाय ! रमा देख भी न सकी और जलपान करके बाहर निकल आये। वाहरी हिन्दू-समाजकी प्रचलित प्रथा ! किन्तु समय-स्रोत नदी-प्रवाहकी भाँति प्रवाहित होता रहता है, अतः रमा और ज्ञानदत्त-के सम्मिलनमें अधिक देर नहीं लगी। भोजनादिसे निवृत्त होकर ज्ञानदत्त बाहर बैठे हुए आगत पुरुषोंसे बातें कर रहे थे। चार घंटा बीतनेपर सबलोग चले गये। रमासे मिलनेके लिए ज्ञानदत्तका हृदय तड़प रहा था। गाँवके लोगोंसे बातें करनेमें उन्होंने इतना समय निहायत बेसब्रीसे बिताया था। इसलिए उपयुक्त समय जानकर वह तुरन्त ही रमाके कमरेमें गये।

उस समय चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल पपीहा आदि पक्षियोंका जब-तब एकाध शब्द सुनायी पड़ जाता था। ज्ञान-

प्रणय

[illegible] और भी भाँति दबे पाँवसे जाकर रमाके कमरेमें बन्द हो गये। देखा, रमाके बड़े नेत्रकी ज्योति टिमटिमा रही है और विकसित-यौवना रमा पलंगपर लेटी हुई है। आनन्द और भी चौकन्ने हो गये; समझ गये कि रमाकी आँखें लग गई हैं, जरा भी आहट पानेपर जग जायगी। वह खड़े खड़े रमाका शील-सौन्दर्य निहारने लगे। हृदय भर आया। ओफ! आनन्दकी इस अनादृताका रूप-यौवन मेघच्छायान्धकारमें विलीन हो गया होता। जो रमा चन्द्रमाके समान स्निग्ध, पुष्पोंके समान कोमल, स्थिर-विद्युत्-रेखाकी भाँति समुज्ज्वल-दर्शना और विधाताकी सृजन-कलाकी एक अपूर्व सफलता थी, उसकी आज यह दशा!

नाक सुड़कनेने रंगमें भंग डाल दिया। आनन्द इस प्रकारके विचारोंमें निमग्न थे और आँखें आँसू बरसा रही थीं कि सौतिया डाहके कारण नाकने भी पानी गिराना प्रारम्भ कर दिया। उसे रोकनेका प्रयत्न करनेमें बहुत हल्की आवाज हुई, रमा झटसे उठ गयी। आनन्दने आगे बढ़कर प्यारी रमाको हृदयसे लगा लिया। रमा अबोध-बालिकाकी भाँति सिसक-सिसककर रोने लगी। उस समय उसकी रुलाई रोकनेसे रुकती ही न थी। वह दृश्य अपूर्व था। और वह हृदय-स्थित भाव भी निराला ही था।

इस प्रकार बड़ी देरके बाद रमाकी उद्वेग-ज्वाला स्वामि-दर्शनसे शान्त हुई। किन्तु पहलेकीसी प्रफुल्लता उसके चेहरेपर अब भी न आयी। अब उसमें विलक्षण शान्ति, गम्भीरता और सहन-

शीलता दिखलायी पड़ने लगी; चंचलता का तो नाम-निशान भी नहीं रह गया। किसी कविने क्या ही अच्छा कहा है:—

"सुर्ख रू होता है इन्साँ ठोकरें खानेके बाद।
रंग लाती है हिना पत्थर पै पिस जानेके बाद॥"

यौवनावस्थाका भूषण-स्वरूप वह स्वाभाविक चांचल्य भाव प्रच्छन्न हो गया। जो रमा पहले बात-बातपर हँसा करती थी, वही अब गाम्भीर्यकी प्रतिमूर्ति बन गयी। यदि उसे इतना गहरा सदमा न पहुँचा होता, तो उसकी ऐसी दशा कदापि न होती। किन्तु ईश्वर-को यही स्वीकार था; उन्हें रमाके द्वारा देश और समाजका जो कार्य कराना है, वह चपलता रहनेपर न हो सकता। रमाका यह परिवर्त्तन साहित्यिक ज्ञानदत्तसे छिपा न रहा। विलास-प्रिय मनुष्यके लिए वह परिवर्त्तन अवश्य खटकता, किन्तु ज्ञानदत्त तो इससे प्रसन्न हुए।

दुःखके समय एक पलका बीतना कठिन हो जाता है और सुखमें वर्षों बीत जानेपर भी कुछ मालूम ही नहीं होता। रमा और ज्ञानदत्तका यह जीवन सुखमय था। धीरे धीरे सात महीने ज्ञानदत्तको आये हो गये। इतने दिनोंमें ज्ञानदत्तने रमासे लघुकौमुदी और सिद्धान्तकी उद्धरनी करा डाली और साथमें प्रथम ग्रन्थ स्वयं भी पढ़ लिया। उनमें जो संस्कृत-ज्ञानकी कमी थी, वह अब दूर हो गयी। रमा भी काव्य-ग्रन्थोंसे चुन-चुनकर सुन्दर-सुन्दर रचनाएँ स्वामीको सुनाया करती और अर्थसहित अपनी बुद्धिके अनुसार उनकी व्याख्या किया करती। इससे

ज्ञानदत्तमें संस्कृत-काव्य समझनेकी शक्ति भी बहुत जल्द आ गयी। इस प्रकार रमा-जैसी विदुषी पत्नीको पाकर ज्ञानदत्तने सहजहीमें संस्कृत पढ़ लिया। और इधर रमाने भी बहुत-कुछ अंग्रेजी तथा हिन्दीका ज्ञान प्राप्त कर लिया। रमाके प्रति स्नेहके साथ ज्ञानदत्तकी श्रद्धा भी बहुत बढ़ गयी। यद्यपि रमामें तो दोनों बातें पहलेहीसे विद्यमान थीं, किन्तु ज्ञानदत्तमें एक चीजकी कुछ कमी थी। उनका स्नेह तो चरम सीमापर पहुँचा हुआ था, परन्तु श्रद्धा उतनी नहीं थी। अब वह भी बढ़ गयी। इसका कारण यह था कि रमा, समयके सदुपयोगपर सदा ध्यान रखती थी और उसने कभी भी गृह-कलह-सम्बन्धी अपने कष्टकी बातोंका जिक्रतक स्वामीसे नहीं किया। उसने ऐसी भी कोई बात कभी नहीं कहा, जो स्वामीके लिए चिन्ताका विषय हो। बस रमाके इन्हीं गुणोंने ज्ञानदत्तके हृदयमें उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी।

वास्तवमें ज्ञानदत्त और रमाके अनिर्वचनीय आनन्दका वर्णन करनेकी शक्ति भाषामें नहीं। ज्ञानदत्त जब अपनी प्रियतमासे मिलते, तभी उनके दिलमें आनन्दकी उमंगें एक विचित्र प्रकारकी गुदगुदी पैदा कर दिया करती थीं। रमा भी साधारण आनन्दका अनुभव नहीं करती थी। उसका सदा-हास्य-विमंडित मुख कभी तो लज्जासे रंग जाता और कभी आनन्दसे विकसित हो उठता था। कभी अवसर पाकर ज्ञानदत्त रातके आठ-नौ बजे ही अपने शयनागारमें घुस जाते और निहायत बेसब्रीसे रमाके आनेकी प्रतीक्षा

करते थे। वह सब काम-काजसे निवृत होकर पानका डब्बा लिए अजीब नाजोअन्दाजसे आती थी। यदि कभी उसके आनेमें तनिक देर हो जाती, तो ज्ञानदत्त व्याकुल हो जाया करते थे। उस समय उनकी यह दशा होती थी कि पलँगपर लेटे-लेटे बेचैनीसे, पुस्तकोंके पन्ने उलटा करते, परन्तु नजर सफ़्हांपर न रहकर, दरवाजेपर डटी रहती। उस इन्तजारीमें—उस बेचैनीमें, ज्ञानदत्तको कितना सुख मिलता था, इसका ठीक-ठीक अन्दाजा कोई प्रेमी दम्पति ही लगा सकता है। उसी व्याकुलताके समय वह दरवाजा खोलकर दबे पाँव, सकुचाती और शर्माती हुई चालसे अन्दर आती थी। कभी-कभी ऐसी ही भाव-तरंगोंमें लीन होकर ज्ञानदत्त कविता भी कर डालते थे, जिससे मासिक पत्रिकाओंकी उदर-तृप्ति हो जाया करती थी।

किन्तु इधर प्रभा अपने देवरसे कुढ़ रही थी। कलकत्तासे आनेपर वह सबलोगोंसे मिले, किन्तु उसे पूछातक नहीं। यह क्या कम अपमानकी बात है? यद्यपि आनेके दूसरे दिन ज्ञानदत्तने प्रभाके चरण छूकर उसे प्रणाम किया, बड़े हर्षसे मिले-भेंटे; तथापि प्रभाकी ज्वाला शान्त न हुई। उसने अपने स्वामीसे कहा भी,—ज्ञानूने बाबाके लिए जो कमीज, जूता, मोजा और टोपी तथा मेरे लिए साड़ी और जाकेट भिजवा दिये हैं, उन्हें मैं उनके पास भेज दूँगी, मुझे नहीं चाहिए।

धर्मदत्तने पूछा,—क्यों? क्या किसीने कुछ कहा है?

प्रणय

प्रभाने कहा,—कहनेवालेके मुँहमें आग न लगा दूँगी! मुझे कहनेकी हिम्मत किसकी है? क्या मैंने भी मैकेमें खसम किया है कि कोई मुझे कहेगा?

धर्म—तो फिर क्यों वापस करती हो?

प्रभा—मेरी इच्छा।

धर्म—आखिर कोई कारण भी है या नहीं?

प्रभा चुप रही। धर्मदत्तने कहा,—ऐसी नासमझीकी बात न करनी चाहिए। भला लोग क्या कहेंगे?

प्रभा भस्म हो गयी। तमककर बोली,—बलासे। मुझे किसीके कहने-सुननेका भय नहीं है। जब ज्ञानूने आकर मुझे पूछा तक नहीं, तब मैं उनकी कोई चीज न लूँगी—न लूँगी।

इस प्रकार बातें करके धर्मदत्तने सारा रहस्य समझ लिया और किसी तरह समझा बुझाकर प्रभाको रोका। प्रभा भी स्वार्थवश स्वामीकी बात मान गयी। ज्ञानदत्तको प्रसन्न रखनेमें ही उसे अपनी अर्थ-सिद्धि दिखायी पड़ी।

एक दिन प्रभाने ज्ञानदत्तको एकान्तमें पाकर अन्यान्य बातोंके सिलसिलेमें गुप्त रीतिसे रमाकी दुश्चरित्रताका हाल कह डाला। ज्ञानदत्तने उसका अभिप्राय अच्छी तरहसे समझकर भी ऐसी ही बातें कीं, जिनसे प्रभाको यही प्रतीत हुआ कि इन्होंने कुछ भी नहीं समझा। अन्तमें उसे और भी स्पष्ट रूपसे कहना पड़ा।

प्रणय

तब ज्ञानदत्तने भाभी के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा कि,—अच्छा मैं इसका प्रबन्ध बहुत जल्द करूँगा।

यह बात सुनकर प्रभा मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। किन्तु ज्ञानदत्तने प्रभाकी बातोंकी चर्चा भूलकर भी रमासे नहीं की। —जब एक दिन रमाने स्वयं ही अपने कलंककी यह बात कही, तब ज्ञानदत्तने भी उसकी पुनरुक्ति की। स्वामीके मुखसे सुनकर रमा रो पड़ी। उसे इस बातका दुःख हुआ कि इन्होंने सुनकर भी मुझसे कभी नहीं कहा।

ज्ञानदत्तने रमाको सान्त्वना देते हुए हृदयसे लगाकर कहा,—दुखी होनेकी कोई बात नहीं है भाई। तुम पढ़ी-लिखी होकर ऐसा क्यों करती हो? संसारका काम ही ऐसा है। तुच्छ स्वभावके लोग हमेशा दूसरोंको कष्ट पहुँचानेकी चेष्टा किया करते हैं।

रमा और भी सिसकने लगी। ज्ञानदत्तके बारबार समझानेपर बड़े कष्टसे रुकते हुए स्वरमें बोली,—तुमने मुझसे—कहा—तक नहीं!

ज्ञानदत्तने स्नेह-पूर्वक उसके सुन्दर कपोलोंपर पड़े हुए अश्रु-विन्दुओंको पोंछते हुए पुचकार कहा,—इसीलिए तुम रो रही हो? दुत् पगली कहींकी। अरे मैंने तो यह समझकर तुमसे नहीं कहा कि, ऐसी व्यर्थकी बातें सुनकर तुम्हें दुःख होगा। तुम्हीं सोचो न, यदि मुझे सन्देह हुआ होता तो मैं तुमसे बिना पूछे रहता? चुप रहो! इस तरह नहीं रोना चाहिए।

प्रणय

रमा सतीत्व-गर्विता रमणी थी। यह उपहास सुनकर उसका हृदय फटा जाता था। यद्यपि पतिदेवकी बातें सुनकर रमाके उत्तप्त हृदयको बहुत-कुछ शान्ति मिली, तथापि वह उस उत्तापसे सर्वथा मुक्त न हो सकी। बोली,—इस तरहकी बातें सुननेहीसे तो मनुष्यके मनमें सन्देह उत्पन्न हो जाता है।

ज्ञानदत्तने धीरज देकर कहा,—तुम्हारा कहना ठीक है। लेकिन सत्य सदा सत्य ही रहता है—उसपर कोई भी धब्बा नहीं लग सकता। शत्राजितने भगवान श्रीकृष्णको मणिकी चोरी लगाकर क्या किया? जगज्जननी जानकीकी अग्नि-परीक्षाके समय अग्निने रक्षा की या नहीं?

रमाने ग्लानि-युक्त स्वरमें कहा,—किन्तु दोनों घटनाओंमें क्या साधारण कष्ट हुआ था?

ज्ञानदत्तने कहा,—तो क्या तुम कष्टसे डरती हो? यदि हाँ, तो यह तुम्हारी भूल है। यह संसार सुख-दुःखके आधारपर ही स्थित है। यदि इनमेंसे एकका अभाव हो जाय, तो शरीर नहीं रह सकता। जिस प्रकार गाड़ीके पहियेका ऊपरी भाग नीचे और नीचेका भाग ऊपर आता ही है, उसी प्रकार मनुष्य-शरीरमें सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुखका आना अनिवार्य है। इसलिए दुःखोंका सामना करनेके लिए प्रत्येक मनुष्यको सदा तैयार रहना चाहिए।

रमाने मौन रहकर अपनी भूल स्वीकार कर ली। उसने प्रभाको प्रसन्न रखनेके लिए मन-ही-मन निश्चय किया। प्रभाके असन्तुष्ट

प्रणय

रहनेका मूल कारण क्या है, इसका अन्वेषण करनेपर उसे मालूम हुआ कि सासकी कृपा-दृष्टि रखनेहीके सबबसे प्रभाके दिलमें जलन रहती है। वास्तवमें बात भी यही थी। देवकी चतुर गृहणी नहीं कही जा सकतीं। क्योंकि उन्होंने प्रभाको अपने वशमें नहीं किया। प्रभाका जैसा स्वभाव अब है, वैसा पहले नहीं था। देवकीकी अनभिज्ञताके कारण ही उसका ऐसा क्रूर स्वभाव हो गया। यदि पहलेहीसे उसका स्वभाव बनानेकी ओर उनका ध्यान रहा होता तो आज घरमें इतना विरोध ही न होता। प्रभाको आये महीनाभर भी नहीं हुआ था कि एक दिन उसे हलुआ बनाना पड़ा। वह पाकशास्त्रमें प्रवीणा नहीं थी, इसलिए उसमें मीठा बहुत अधिक डाल दिया; सूजी भी कच्ची रह गयी। देवकीका कर्त्तव्य था कि वह प्रेमके साथ उसे समझा देतीं कि देखो बहू, सूजीके बराबर घी डालकर हलकी आँचसे खूब भूनना चाहिए। जब सूजीमें सुर्खी आ जाय और सोंधी महक आने लगे, तब उसमें सूजीसे तिगुना गरम पानी छोड़ दे और सूजीसे ड्योढ़ी चीनी डालकर चला दे। अथवा तिगुने पानी या दूधमें चीनीकी चाशनी बनाकर छोड़ दे। हलुआ चलानेमें खूब सावधानी रखनी चाहिए, ताकि न तो वह लगने पावे और न उसकी गोलियाँ बँधने पावें। इस प्रकार उसे पकाकर ऊपरसे मेवा आदि चीजें कतरकर डाल दे; किन्तु देवकीने ऐसा उपदेश न करके नव-वधूको कोसना और पास-पड़ोसकी स्त्रियोंसे उसकी निन्दा करना शुरू कर दिया। बहुत दिनोंतक प्रभा कुछ न बोलती थी। पर जब देवकी

प्रणय

बात-बातपर नुक्ताचीनी करने लगा, तब धीरे-धीरे उसकी धड़क खुल गयी और लुक-छिपकर वह भी अन्यान्य स्त्रियोंसे शिकायत करने लगी। वे स्त्रियाँ प्रभाकी सारी बातें बढ़ा-चढ़ा कर देवकीको सुनाने लगीं। कुछ ही दिनोंमें मनोमालिन्य बहुत बढ़ गया। फिर क्या था, सास पतोहूमें देवरानी-जेठानीकी तरह सवाल-जवाब होने लगा। अब तो यदि देवकी एक बात कहे, तो प्रभा दस सुनानेके लिए तैयार रहती है।

देवकीने रमाके साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया था। किन्तु एक तो रमा गृहस्थीके प्रत्येक कार्यमें बड़ी कुशल थी और दूसरे उसे इस बातकी पूर्ण शिक्षा मिली थी कि सासकी बातें सहन करके रहनेमें ही सुख मिलता है। इसीसे उसके साथ देवकीकी दाल न गली और उसने अपनी सहन-शीलतासे सासको वशमें कर लिया। यद्यपि अब भी देवकी जरा-जरासी बातपर रमाके ऊपर बेतरह बिगड़ जाया करती हैं, किन्तु रमा हँसकर टाल दिया करती है—जवाबतक नहीं देती।

बस यही सारे अनर्थोंकी जड़ है। यही बात प्रभाकी सहन-शक्तिसे बिलकुल बाहर है। वह तो यह चाहती है कि रमा भी मेरी ही भाँति साससे लड़े। ऐसा न होता देख, अब वह रमासे बदला लेनेके लिए तैयार बैठी है। दूषित और पतित विचारोंके करते रहनेसे उन्नतोन्मुखी बुद्धि भी क्रमशः नष्ट होने लगती है और कुछ ही दिनोंमें वह इतनी गिर जाती है कि उसे और नीचे

जानेका स्थान ही नहीं रह जाता। प्रभा ठीक इसी दशामें है। अब उसमें इतनी बुद्धि नहीं रह गयी है कि वह हित-अहित चाहने-वालोंकी पहचान कर सके। यद्यपि रमा अब भी उसका हित चाहती है, तथापि उसका प्रत्येक कार्य प्रभाको अहितकर ही दिखलायी पड़ता है।

एक दिन शामका वक्त था, डेढ़ वर्षके बालक जगदीशको आँगनमें बिठाकर प्रभा दिया-बत्ती करने चली गयी। रमा लड़केके पास ही बैठी थी। जगदीश चारपाईपर चढ़नेका प्रयास कर रहा था। रमा बैठी देख रही थी, किन्तु कुछ बोलती नहीं थी। जब बालकसे नहीं चढ़ा जाता था तब नीचे पैर उतारकर फिर किलकारी मारता हुआ चढ़नेका उद्योग करता था। प्रभा अपना काम करते समय यह कौतुक देख रही थी। सोचने लगी,—देखो, छोटी बहूसे उठकर सँभाला नहीं जाता। अगर लड़का गिर पड़े तो? मगर गिर पड़ेगा तो उसका क्या बिगड़ेगा। वह तो लड़केका प्राण लेनेके लिए उधार खाये बैठी है।

प्रभाने जो सोचा, वही हुआ। अचानक जगदीश धड़ामसे उलट गया। आवाज सुनते ही प्रभा बड़े जोरसे बच्चेको उठानेके लिए झपटी। तबतक रमाने उसे उठा लिया था। प्रभाने पास आकर झुँझलाहटके साथ रमाकी गोदसे बच्चेको छीन लिया और जो कुछ बुरा-भला मुँहसे निकला, उसे कह सुनाया। बेचारी रमा सब-कुछ सुनकर चुप रह गयी। जगदीश एक साँस चिल्ला रहा था।

उसका रोना सुनकर पं० शम्भूदयाल भी दौड़कर आँगनमें आये। पूछा,—जगदीश रो क्यों रहा है?

दाईने कहा,—गिर पड़े हैं।

शम्भू०—ज़रा भी ध्यान तुमलोगोंमें नहीं रक्खा जाता। ले आओ यहाँ।

दाई जगदीशको ले जाकर दे आयी। शम्भूदयाल उसे लेकर बाहर चले आये। यहाँ भीतर प्रभाकी ज्वाला और भी भभक उठी। घण्टेभर बाद उसने कलहका श्रीगणेश कर ही दिया। किन्तु रमाके कुछ न बोलनेपर बेचारी प्रभाको अपनासा मुख लेकर रह जाना पड़ा। एक हाथसे आवाज़ नहीं होती। थोड़ी देरतक अपने-आप बड़बड़ाकर प्रभा चुप हो गयी।

देवकीने एकान्तमें रमासे कहा,—जगदीशको पकड़ क्यों नहीं लिया बेटी! जानती तो हो कि वह हवासे झगड़ा कर सकती है।

रमाने खिन्न होकर कहा,—मैंने यह नहीं समझा था माँ। मैं तो यह जानती हूँ कि बच्चोंको केवल समझा देना चाहिए, ऐसे कामोंमें रोकना नहीं चाहिए। रोकनेसे वे बढ़कर वही काम करना चाहते हैं और हठी हो जाते हैं। शिशु-पालन-विधि सबलोगोंको मालूम नहीं रहती। अबोध बच्चोंको ऐसे कामोंसे रोकना भूल है; क्योंकि यही उनकी कसरत है। हाँ, यदि कोई भयानक काम करना चाहते हों,—जैसे आगमें हाथ डालना आदि, तो उससे उन्हें रोक देना चाहिए। पर साधारण कामोंमें ईश्वरके भरोसे छोड़कर उनकी

देखरेख करनी चाहिए। ऐसा करनेसे बच्चोंका ज्ञान बढ़ता है तन्दुरुस्ती ठीक रहती है और प्रत्येक कार्यका हानि-लाभ स्वत उनकी समझमें आ जाता है। मामूली बातोंके लिए डपटनेसे बालकोंका स्वभाव दब्बू हो जाता है। बच्चोंको भूत, म्याऊँ, गोंगा आदिका भय कभी न दिखलाना चाहिए। मेरे नानाजी कहा करते थे कि ऐसा भय दिखलाना, बच्चोंके विकाशमें बाधा डालना है। अंग्रेजोंके बच्चे निर्भीक होते है और हमारे देशके बच्चे डरपोक होते हैं, इसका कारण यही है कि उनके बच्चोंको भयावह बातें बतलायी ही नहीं जाती और हमारे बच्चोंको ज़रासी बातपर भय दिखलाया जाता है। अब तक मैं ऐसा ही समझती आयी। इसीसे मैंने जगदीशको नहीं रोका। मैंने तो यह समझा कि रोकनेसे वह चारपाईपर चढ़नेके लिए हठ करने लगेगा और न रोकनेसे उसका साहस बढ़ेगा। यदि गिर भी जायगा तो कोई हर्ज नहीं, आगे वह और भी सावधानीसे चढ़नेका उद्योग करेगा।

देवकीने डींग मारते हुए कहा,—तुम्हारा समझना बहुत ठीक है। ज्ञानू जब छोटा था, तब मैं भी ऐसा ही करती थी। यहाँतक कि एकबार जब वह आठ-नौ महीनेका था, अँगीठी पकड़ने चला। मैं जी कड़ा करके बैठी रह गयी। उसका हाथ जल गया और महीनों बाद अच्छा हुआ। लेकिन उस मितीसे ज्ञानू आगसे बहुत डरने लगा।

ज्ञानदत्तकी चर्चा सुनकर स्वाभाविक ही संकोच-भारसे रमाका

सिर झुक गया। देवकीने कहा,—लेकिन इसका हाल तो जानती हो। यह तो हमलोगोंको शत्रुके समान देखती है।

रमाका सिर उठा। बोली,—वह चाहे जैसा समझें माँ, हम-लोगोंके दिलमें तो उनके प्रति जरा भी बुरा भाव नहीं है।

देवकीने कहा,—अच्छा जिसका पाप उसका बाप। जाओ तुम अपना काम-धन्धा देखो।

इधर प्रभाने सारा समाचार स्वामीके आनेपर कह डाला। यह भी कहा कि,—यदि मैं न पहुँचती तो आज बाबाको बड़ा गहरा चोट लगती। क्योंकि जहाँ यह गिरा, वहींपर पत्थरका एक टुकड़ा पड़ा हुआ था। खैर हुई कि मेरे हाथका धक्का लगनेसे बाबाका सिर उस पत्थरपर न गिरकर जमीनपर गिरा। फिर भी लड़का बड़ी देरतक चिल्लाता रहा। क्या बतलाऊँ ऐसी औरत तो मैंने वसुधामें नहीं देखी इसमें जरा भी दया नहीं।

यह कहकर उसने जगदीशका सिर टटोलनेके लिए कहा। धर्मदत्त-ने सिरपर हाथ रखकर आश्चर्यके साथ कहा,—अरे! यह तो बहुत फूला हुआ है। राम राम, मैं उसे ऐसी नहीं जानता था।

प्रभाने कहा,—तुम काहेको जानोगे? मैं तो तुमसे झूठ कहा करती हूँ न!

धर्मदत्तने मौन रहकर मानो अपराध स्वीकार कर लिया। थोड़ी देरतक चुप रहे। बाद बोले,—सचमुचमें छोटी बहूका स्वभाव अच्छा नहीं है। भला लड़केसे वह इतना द्वेष क्यों रखती है?

प्रणय

प्रभाने माथा भिकोड़कर उत्तेजित स्वरमें कहा,—इतनेपर तो लोग छोटी बहूको हथेलियोंपर लिये फिरते हैं। और लोगोंको कौन कहे, तुम भी प्रशंसाका पुल बाँध देते हो। देख लेना, किसी दिन यह औरत तुमलोगोंके मुँहमें कालिख जरूर लगावेगी। शानूको तो तुमने भेंड़ा बना ही लिया है, तुम्हारी बुद्धिपर भी पत्थर पड़ गया है।

धर्म—क्या किया जाय तुम्हीं बतलाओ न?

प्रभा—बतलाना क्या है, उसे विदापुर भेज दो, झंझट तय हो जाय। अपने बापके घरसे चाहे डोमके साथ निकल जाय, तुम्हें तो कोई कहनेके लायक न रहेगा। लेकिन तुमलोगोंका कुछ किया हो तब तो! कुछ भी कोई कहे, कानपर जूँ तक नहीं रेंगती।

धर्म—अच्छा वहाँसे किसीको आने दो, ऐसा ही होगा।



बारहवाँ परिच्छेद

माघका महीना था। इसी महीनेके अन्तमें सरलाका ब्याह होना स्थिर हुआ है। बारात बड़े धूम-धामसे आयेगी, इसकी चर्चा चारों ओर हो रही है। ब्याहकी तिथि अब कुछ ही दिन रह गयी है, पर अभीतक किसी चीजका प्रबन्ध नहीं हुआ। शम्भूदयाल छटपटा रहे हैं। इस समय क्या करना चाहिए यह उनकी समझमें नहीं आ रहा है। आवे कैसे? पासमें रुपया रहता है तो सब कुछ अपने-आप ही समझमें आता है; बिना रुपयेके वह कुछ समझकर ही क्या करेंगे। केवल समझनेसे ही सारी सामग्री थोड़े ही जुट जायगी! तिलकके दो हजार रुपये तो उन्होंने ज्यों-त्योंकर किसी तरह दे दिये, लेकिन अब कहीं भी रुपयेका जुगाड़ नहीं हो रहा है। इसी चिन्तामें वह रात-दिन व्यस्त रहते हैं। इसके अतिरिक्त वह अपने समधी पं० सदानन्दके आनेपर यह भी वचन दे चुके हैं कि ब्याहपर जो आदमी निमंत्रणमें आयेगा, उसीके साथ छोटी बहू विदा कर दी जायगी। कमसे-कम आठ सौ रुपये हों तो छोटी बहूके गिरो रखे हुए गहने छूटें। सम्भ्रान्त कुलकी लड़कीको बिना गहनेके विदा करना अपमान-जनक है। इस प्रकार कुल तीन हजार रुपये हों तो काम चले, और यहाँ एक पैसेका अभीतक प्रबन्ध नहीं हुआ।

अब पं० शम्भूदयालको अपनी भूलें मालूम होने लगी यदि

प्रणय

वह बुद्धिमानोंके साथ गृहस्थीका काम करते आये होते तो आज उन्हें ऐसे संकटका सामना न करना पड़ता। उनके पिता पाँच लाखकी सम्पत्ति छोड़कर मरे थे। हजारों रुपये मासिक सूदकी आय थी, गल्लेके लेन-देनका व्यापार था—सब कुछ था। पिताके मरते ही इन्होंने सब नष्ट कर डाला। इनमें और कोई बुरी लत नहीं थी; हाँ यह अवश्य था कि यह अत्यन्त साधारण बुद्धिके मनुष्य होते हुए भी अपने मनमें अपनेसे बढ़कर बुद्धिमान किसीको नहीं समझते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अच्छे लोगोंने इनके यहाँका आना-जाना बन्दकर दिया और दुनियाभरके चापलूसोंने अड्डा जमा लिया। इन्हें इसका किंचित् भी ज्ञान न हुआ कि क्या हो रहा है। अब शेखी बघारनेका इन्हें अच्छा अवसर मिलने लगा। कभी कहते,—परसों कलट्टर साहबसे बातचीत हो रही थी; वह कहते थे कि विलायतमें एक नये यंत्रका आविष्कार हुआ है जो घंटेभरमें दो सौ मीलकी रफ्तारसे दौड़ेगा। उसपर तीन आदमी बैठ सकते हैं। उस यंत्रमें प्रशंसनीय बात यह है कि वह दौड़ते समय दिखलायी भी नहीं पड़ता। हमने तो तीस हजारमें एक यंत्र मँगानेके लिए साहबसे कह दिया। क्यों, ठीक है न ?

चापलूस कहते,—बहुत ठीक भैया। अरे आप न मँगावेंगे तो कौन ससुरा मँगावेगा।

यह सुनकर शम्भूदयाल सम्पत्ति-गर्वका अनुभव करते। दो-चार महीनेके बाद यदि कोई चापलूस पूछता कि अभी वह

यंत्र आया कि नहीं भैया, कितने दिनमें आवेगा? तब शम्भू-दयाल कह बैठते, तुमसे कहा नहीं? वह तो जहाज ही समुद्रमें फट गया न! बड़ी दिल्लगी हुई; साहब कहते थे कि वह यंत्र है तो बहुत छोटा, पर वजनदार इतना है कि मामूली जहाज उसका भार नहीं सह सकता। बेचारा जहाजवाला हजार पाँच सौ रुपयेके लोभसे उसे ला रहा था, इस लालचका जहाज गवाँ बैठा। अब उसे नहीं मँगावेंगे।

चापलूस कहते,—यहाँ मँगाकर क्या करियेगा भैया।

इस प्रकार शम्भुदयाल खूब ही डींग मारा करते और चापलूसलोग ध्यानसे सुना करते थे। पढ़े-लिखे लोगोंके साथ बातें करनेमें उन्हें यह सहूलियत न होती थी, इससे वह अच्छे लोगोंसे कोसों दूर रहने लगे। रुपये और गल्लेका व्यापार भी झंझट समझकर छोड़ दिया, इससे वह आय भी कम हो गयी। इधर नौकरों-चाकरोंकी निगरानी भी वह नहीं कर सकते थे। पहले तो उन्हें चापलूस सभाकी बैठकसे छुट्टी ही बहुत कम मिलती थी और यदि मिलती भी थी तो वह बही-खातेकी जाँच करनेमें बिल्कुल कोरे थे; हाँ यह जरूर था कि नौकरोंपर रुआब दिखानेके लिए कभी-कभी बही-खातेकी जाँच करने बैठ जाते और त्योरियाँ चढ़ाकर पूछते,—यह रकम कैसी है, अभीतक खतियान क्यों नहीं हुआ? मुनीम-गुमाश्ते भी इधर-उधरकी बातें

करके लगने उल्लू सीधा करने। परिणाम यह हुआ कि पिताके मरनेके पन्द्रह वर्ष बाद ही आज यह दशा हो रही है।

पिताको चिन्तित देखकर ज्ञानदत्तने कारण पूछा। शम्भूदयालने कह सुनाया। ज्ञानदत्तने कहा,—घबरानेकी आवश्यकता नहीं है बाबूजी। सब ठीक हो जायगा, किन्तु आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था। दो हजारमें ही यदि विवाह कर लेते तो इतना कष्ट क्यों सहना पड़ता?

शम्भू—तुम अभी लड़के हो बेटा, यह क्या मैं नहीं जानता? लेकिन क्या करूँ इज्जतमें तो बट्टा लग जाता न! धन तो पुनः पुनः होता है, पर खोयी हुई इज्जत फिर जल्द नहीं आती।

ज्ञान—यह समझना भूल है। मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार काम करना चाहिए। इसमें इज्जतमें बट्टा लगनेकी कोई बात नहीं है। इज्जत नष्ट होती है बुरे कामोंसे नकि वित्तके अनुकूल काम करनेसे।

यदि और समय होता तो शम्भूदयाल ऊपरकी बातपर रुष्ट हो जाते, किन्तु इस समय वह जी मसोसकर रह गये। इसलिए नहीं कि ज्ञानदत्तकी बुद्धि सराहनीय है, बल्कि इसलिए कि ज्ञानदत्तने कहा है "सब ठीक हो जायगा"। अतः कुछ कहनेसे ज्ञानू रंज हो जायगा। क्योंकि ज्ञानदत्तने विद्यामें कितनी उन्नति की, इसका शंम्भूदयालको क्या गाँवके किसी भी आदमीको ठीक-ठीक पता नहीं; सबलोग तो ज्ञानदत्तको साधारण

पढ़ा-लिखा समझते हैं; बहुतसे लोग उन्हें शौकीन छैला भी समझते हैं; क्योंकि मूर्ख लोग, तो लायक उसे समझते हैं जो खूब रुपया पैदा करे। हाँ, शम्भूदयालको ज्ञानदत्तकी उन्नतिका कुछ हाल अवश्य सुननेमें आया था, पर पूरा नहीं।

सच है! गुणका आदर गुणियोंके समीप ही होता है। यदि बुद्धि होती तो शम्भूदयाल समझते कि ज्ञानदत्तने कितनी अच्छी बात कही है। पिताके उदासीन भावसे ज्ञानदत्तने समझ लिया कि मेरी बात इन्हें बुरी मालूम हुई है। अतः उन्हें प्रसन्न करनेके लिए बात टालकर कहा,—चारों इलाके कितने रुपयेपर गिरों रक्खे गये हैं बाबूजी?

शम्भूने अन्यमनस्क भावसे उत्तर दिया,—साठ हजारमें।

ज्ञानदत्तने इलाकोंकी आमदनी जोड़कर हिसाब लगाया। मालूम हुआ कि रेहनदारोंको एक रुपया सैकड़ा माहवारीसे अधिक नफा हो रहा है। कहा,—अच्छा, अब आप घबरावें नहीं, मैं रुपयों-का प्रबन्ध कर लूँगा।

यह कहकर ज्ञानदत्त चले गये। दो-चार जगह गये, पर कहीं भी काम न हुआ। अन्तमें वह बनारसके दलालोंसे मिले। ऐसे दलालोंसे जो जमींदारीके बिकवाने और खरिदवानेका काम करते थे। दो-तीन दिनके भीतर ही आठ आनेके नफेपर एक जगह मामला बैठ गया। ज्ञानदत्त घर चले आये। सारा हाल कह सुनाने-

पर शम्भूदयाल प्रसन्न हो गये। अभी काम तो नहीं हुआ, पर उनकी चिन्ता दूर हो गयी।

इस प्रकार ज्ञानदत्तने एक लाख रुपयेमें तीन इलाके गिरों रखकर एक इलाका बचा लिया और जो फुटकल रुपये थे, उन्हें भी देकर सूद कम कर दिया तथा ब्याहके लिए ढाई हजार रुपया पिताके हवाले कर दिया। अब चार-पाँच हजार रुपये वार्षिक लाभकी गुञ्जायश हो गयी। ज्ञानदत्तके इस प्रबन्धसे शम्भूदयाल जी उठे।

परसों ही बारात आवेगी, यह समझकर सबलोग सामान जुटानेमें लग गये। दो दिनके भीतर सब सामान आ गया। ज्ञानदत्तने दो-तीन आदमियोंकी सहायतासे दरवाजेकी सजावट की। उन्होंने मकानके सामने बाँसकी खपचियोंका महराबदार दरवाजा कपड़ेके फूलोंसे ऐसा अच्छा सजाया कि एकबार उसपर दृष्टि पड़ते ही हर मनुष्यके मुखसे बरबस निकल पड़ता था—'वाह !'

निश्चित समयपर बारात आ गयी। ज्ञानदत्तने प्रबन्धका भार अपने ऊपर ले लिया। वह यह जानते थे कि बारातमें बड़ी गड़बड़ी हुआ करती है, इसलिए सबसे पहले उन्होंने यह अन्दाजा लगाया कि कुल कितने आदमी हैं। द्वारपूजा होनेके पहले ही उन्होंने चारपाई और जलका प्रबन्ध बारातियोंके लिए करा दिया। यह व्यवहार देखकर सब बाराती प्रसन्न हो गये। अब यदि ज्ञानदत्तके प्रबन्धमें कोई त्रुटि भी हो तो बारातका कोई आदमी 'चूँ' नहीं कर सकता,

इतना भार ज्ञानदत्तने उनपर पहले ही डाल दिया। बाद स्वयं जाकर प्रधान लोगोंसे मिले और प्रत्येक बीस आदमियोंके बीच अपना एक आदमी नियुक्त करके चले आये। उनलोगोंसे यह भी कह आये कि जिस चीजकी जरूरत हो, आपलोग इसी आदमीसे कहें। और उन आदमियोंको यह संकेत किया कि तुमलोग कोई चीज लानेके लिए स्वयं न जाओ बल्कि जो दो आदमी तुमलोगोंमेंसे हर आदमी-को दिये जा रहे हैं, उन्हींसे सामान मंगाओ। इस प्रकार चौदह सौ आगत बरातियोंका प्रबन्ध ठीक करके ज्ञानदत्त और कामोंमें लगे।

इष्टपूजाके बाद उन्होंने यह सूचना भेज दी कि आठ बजेतक सबलोग शौचादिसे निवृत्त हो जायें। सवा आठ बजे भोजन कराया जायगा और साढ़े दस बजे वैवाहिक कार्य प्रारम्भ हो जायगा। स्वयं-पाकियोंको भोजनकी सारी चीजें भेजी जा रही हैं।

ज्ञानदत्तके प्रबन्धसे बारातमें दुर्व्यसनबाजीका नामतक नहीं था। स्त्रियोंके अश्लीलता-रहित सुन्दर गीत सुनकर तो सब बारातियोंको दंग रह जाना पड़ा। प्रसन्नता-पूर्वक सब कार्य समाप्त होनेके बाद तीसरे दिन बारात विदा हो गयी। ऐसा अच्छा सत्कार अबतक किसी बारातमें नहीं हुआ था, यह बात बाराती रास्तेभर कहते गये।

सबकुछ तो हुआ, किन्तु ज्ञानदत्तको इस विवाहसे एक बातका बड़ा ही दुःख हुआ। वह यह कि लड़का, सरलाके अनुकूल नहीं था। क्या लड़का कुरूप था? नहीं। लड़केकी सुन्दरताका तो गाँवभरमें बखान हुआ, गहने भी कम नहीं आये, लेन-देन भी बड़े ऊँचे दर्जेका

हुआ, धनकी भी शिकायत नहीं। शिकायत है, केवल लड़केकी अल्पावस्थाकी। लड़केकी अवस्था अभी तेरह वर्षकी थी। ज्ञानदत्तकी इच्छा थी कि द्वादश वर्षीया सरलाके लिए सोलह वर्षसे कम अवस्थाका लड़का किसी भी दशामें न रहे। वह इच्छा पूर्ण न हुई, बस यही उनके दुःखका कारण था। किन्तु अब तो जो कुछ होना था सो हो गया, यह सोचकर ज्ञानदत्तने इस बातको दूर कर दिया।

धीरे-धीरे दो दिनके बाद सब रिश्तेदार बिदा हो गये। ज्ञानदत्तका छोटा साला विजय अपनी बहनको ले जानेके लिए रह गया। उसने शम्भूदयालसे जाकर कहा,—कलके लिए सवारी और कहारका प्रबन्ध कर दीजिये।

शम्भूदयालने हँसकर कहा,—क्यों बेटा सवारी लेकर क्या करोगे?

विजय—बहनको साथ ले जानेके लिए।

शम्भू—और तुम?

विजय—मैं अपने घोड़ेपर जाऊँगा। सड़क बन रही है, नहीं तो बाबूजीने मोटर भेजनेका विचार किया था।

दस वर्षके लड़केकी बातें सुनकर शम्भूदयाल बड़े प्रसन्न हुए। बोले,—अच्छी बात है, मैं प्रबन्ध कर दूँगा, मोटर नहीं आयी तो क्या हर्ज है।

विजय खुश होकर अपनी बहन रमासे यह समाचार कहनेके लिए चला गया। और शम्भूदयाल बैठकर मन-ही-मन सोचने

लगे, रुपये सब खर्च हो गये। छोटी बहूके गहने कैसे छूटेंगे? क्या उसके लिए आनन्दन कोई प्रबन्ध न करेगा? उससे कहे कौन! बिना गहनेके बिदा करना ठीक नहीं है। इतने बड़े धनीके घरकी लड़की बिना गहनेके जायगी तो सब औरतें क्या समझेंगी। यदि अभी न बिदा किया जाय तो कैसा हो? पं० सदायतनसे वादा न किया गया होता तो अच्छा था। अब उनसे झूठा बनना उचित नहीं है। भला वह अपने मनमें क्या कहेंगे? यही न, कि यदि नहीं बिदा करना था तो वचन क्यों दिया। उनका यह सोचना क्या मेरे लिए कम अपमानकी बात है,—इत्यादि बातें वह बड़ी देरतक सोचते रहे, किन्तु कुछ भी स्थिर न कर सके।

इधर रमा गहरी चिन्तामें पड़ी हुई थी। हैं! माँ-बापके घर जाते समय चिन्ता कैसी? क्या रमा मैकेमें जाना पसन्द नहीं करती? ऐसी कौन स्त्री है जो इसे पसन्द न करे? किन्तु रमाकी स्थिति ही ऐसी है कि उसे चिन्तित होना पड़ रहा है। अच्छा, तो क्या वह अपने स्वामीको छोड़कर नहीं जा रही है? हो, सकता है कि एक कारण यह भी हो। किन्तु जहाँतक समझमें आता है, वह किसी और भी कारणसे जानेमें हिचक रही है। क्या कारण है, समझना सहज नहीं है।

बात यह है कि रमाके पिता पं० सदायतनजी इस समय कमसे कम तीस लाखके धनी हैं। उनके घरका चाल-व्यवहार तथा खाना-पहनना अमीराना है। ऐसे घरमें रमा जायगी। उसके पास रंग

बिरंगे कीमती कपड़े-लत्ते नहीं, वहाँकी स्त्रियोंके मेलके गहने नहीं; ऐसी दशामें वह वहाँ जानेमें कैसे प्रसन्न हो? अभी सालहीभर पहले तो वह सबकुछ भोग आयी है। उसकी सातो भावजें आपसमें कानाफूसी करती थीं। रंमा क्या अबोध बालिका है जो इतना भी न समझ सके? यद्यपि उसे खुद तो इन सब चीजोंका बिलकुल शौक नहीं रहता, तथापि वह सब औरतोंके अँगुली उठानेकी वस्तु बनना नहीं चाहती। उसकी भावजें प्रतिदिन तरह-तरहकी चीजें मँगाया करती हैं, रुपये दो रुपये रोज खर्च किया करती हैं, बेचारी रमाके पास इतने रुपये कहाँ? वह अपने घरमें रूखी रोटी खाकर दिन बितावेगी, आभूषण-रहित हो, फटे-पुराने कपड़े पहनेगी, नाना प्रकारके अपमान भी सहेगी, किन्तु भावजोंके बीच गरीबकी भाँति कभी न रहेगी। यद्यपि रमाको सबलोग चाहते हैं, भाइयोंका स्नेह अलौकिक है, माँ-बापके स्नेहका कुछ कहना ही नहीं है, भावजें भी ऊपरसे प्रेम ही रखती हैं, फिर भी उसे वहाँ रहना सुखकर नहीं प्रतीत होता।

इन बातोंके अतिरिक्त रमाके लिए सबसे बड़े दुःखकी बात यह है कि वहाँके सबलोग ज्ञानदत्तको साधारण पढ़ा लिखा समझते हैं। अभीतक स्वामीकी योग्यताके प्रति रमाकी भी कोई विशेष ऊँची धारणा नहीं थी। हाँ इतना तो उसे जरूर मालूम था कि विद्यामें उसके स्वामी क्रमशः उन्नति कर रहे हैं। किन्तु इस बारके सम्मिलनमें उसने समझ लिया कि ज्ञानदत्तने कितनी उन्नति की

है। यदि वहाँके लोग भी रमाकी भाँति आनन्दके पाण्डित्य-पूर्ण सुविचारोंसे परिचित हो गये होते तो सम्भवतः वह वहाँ जानेमें भी संकुचित न होती। किन्तु अभी तो उसके भाइयोंकी धारणा पूर्ववत् ही बनी हुई है। ऐसी दशामें वह स्वामीकी निन्दा सुननेके लिए क्यों जाने लगी? माना कि वहाँ जानेपर रमाको दो-चार भी रुपये स्वाभाविक ही मिल जायँगे, परन्तु रमाका स्वाभिमान इतना सस्ता नहीं जो रुपयोंसे खरीदा जा सके। परमात्मा करे रमाकीसी स्थिति शत्रुकी भी न हो! बेचारी अपनी कष्ट-कहानी किसीसे कह भी नहीं सकती,—यहाँतक कि स्त्रियोंसे भी नहीं कह सकती। क्योंकि कहनेसे मैकेकी तथा उसकी तौहीन होती है। लोग यह समझेंगे कि इसका वहाँ आदर नहीं होता। कैसे, माँ-बाप हैं कि सात लड़कोंमें एक ही लड़की रहनेपर भी वे उसकी खातिर नहीं कर सकते? लोगोंका यह कहना क्या रमाके लिए सह्य होगा? कदापि नहीं! स्त्रियाँ सबकुछ सह सकती हैं, किन्तु अपने नैहरकी निन्दा वे मरने, दमतक नहीं सहन कर सकतीं। तिसपर रमा जैसी स्वाभिमानिनी स्त्रीका तो कहना ही क्या!

इन्हीं बातोंकी चिन्तामें वह कई दिनोंसे पड़ी थी। विवाहोत्सवके समय भी वह क्षणभरके लिए इस चिन्तासे मुक्त नहीं हो सकी। आज भी वह अपने कमरेमें अकेली बैठी यही सब सोच रही थी, इतनेमें विजय दौड़ता हुआ आकर उसके ऊपर

गिर पड़ा और हाँफता हुआ बोला,—बहन, तुम अपनी तैयारी करो, कल चलना होगा।

रमाने हँसकर उसे सँभालते हुए कहा,—मैं तेरे घर न जाऊँगी।

विजयने बहनकी आवाज सुनी। एक बार अर्थहीन दृष्टिसे उसकी ओर देखा। उसकी सारी प्रसन्नता जाती रही। चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह अलग खड़ा होकर बोला,—क्यों, मेरा घर कैसा? क्या तुम्हारा घर नहीं है बोलो?

रमा अपने छोटे भाईका दीन वचन न सह सकी। बोली,—है क्यों नहीं भाई।

विजय—तब तुम क्यों नहीं चलोगी?

रमा—यों ही।

विजयकी आसकी फाँकसी आँखें डबडबा गयीं। बड़े कष्टसे बोला,—कारण?

रमाकी दृष्टि भाईके चेहरेपर पड़ी। देखते ही उसका जी भर आया। बोली,—हँसीकर रही थी रे विजय। चलूँगी क्यों नहीं? भला तेरे आनेपर न चलूँगी, यह तुझे विश्वास है?

विजयको शान्ति मिली। नीचे ताकता हुआ सिर हिलाकर उत्तर दिया,—'उँहूँ।'

रमा यह कहना ही चाहती थी कि—"क्या तू उदास हो गया?" किन्तु कहते-कहते न-जाने क्यों रुक गयी। शायद यह

सोचकर रुकी कि यह कहते ही विजय रो पड़ेगा, फिर चुप कराना कठिन हो जायगा। भाईका जी बहलानेके लिए बोली,—"हाँ रे विजय, तेरे लिए एक बढ़ियासी चीज रक्खी है।"—यह कहकर रमा उठी और दीवारमें लगी आलमारीके भीतरसे एक तश्तरीमें दो-तीन मिठाइयाँ तथा कुछ फल रखकर ले आयी। कहा,—ले, इसे खा ले।

विजयने नीचा सिर किये उदास भावसे कहा,—मेरी इच्छा नहीं है।

रमाने उसके कोमल गालोंपर हाथ फेरकर कहा,—ले, ले।

विजयने कहा,—अभी न खाऊँगा।

रमाने कहा,—तो फिर मैं कभी न बोलूँगी।

अब तो विजय विवश हो गया। मीन-मेख कुछ भी न कर सका। चुप-चाप तश्तरी हाथमें लेकर खाने लगा।

इधर शम्भूदयालने बहुत माथा-पच्ची करनेके बाद यही निश्चय किया कि अभी न विदा करना ही अच्छा है। इसलिए, उन्होंने विजयको बुलाकर कहा,—कलके लिए तो मुहूर्त अच्छा नहीं है बेटा, चार-पाँच दिन ठहरो; बाद अपनी बहनको ले जाना।

विजयने कहा,—चार-पाँच दिनके बाद मुहूर्त है?

शम्भूदयालने कहा,—हाँ।

लड़का राजी हो गया। शम्भूदयालने एक पत्र लिखकर सदानन्दजीके पास भेज दिया। उस पत्रका आशय यह था कि,—मैं तो

आपको वचन दे चुका हूँ, इसलिए बिदा करनेमें मुझे कोई इनकार नहीं है। पर मेरी आन्तरिक इच्छा यह थी कि यदि आप महीनेभर-के बाद लड़कीको बुलावें तो अधिक उत्तम हो। आगे जैसी आप आज्ञा देंगे, उसे मैं शिरोधार्य करूँगा। आपके पत्रोत्तरकी देर है। चिरं० विजय मजेमें है, ज्ञानू अभी घरपर ही है; एक मासके बाद जानेके लिए कहता है,—यद्यपि मेरी इच्छा तो यह है कि अब वह कहीं न जाय, घरपर ही रहे।

पत्र पढ़कर सदायतनजीने सारा हाल अपनी स्त्रीसे कहा। स्त्री-की तो रुचि थी कि बिदा करनेके लिए पत्र लिख दो; किन्तु सदा-यतनने कहा,—"अभी लड़का घरपर है, इसलिए बुलाना ठीक नहीं है। ज्ञानदत्तके चले जानेपर उसे बुला लिया जायगा। यही समझ-कर उन्होंने मुझपर टाल दिया है।" यह सुनकर रमाकी माँ राजी हो गयी।

सवेरे पत्रका उत्तर लेकर आदमी आ गया। शम्भूदयाल पत्र पढ़-कर संकट-मुक्त हो गये। यह समाचार सुनकर ज्ञानदत्तकी भी आन्त-रिक ज्वाला शान्त हो गयी। रमा, पहले कष्टसे मुक्त होकर अब दूसरी ही चिन्तामें पड़ गयी। पितृ-गृहका दर्शन अब आज उसे न हो सकेगा। कब होगा, यह भी ठीक नहीं। जिसकी सुश्रुषासे वह इतनी बड़ी हुई, अब भी जो उसके लिए प्रतिदिन प्रेमके आँसू बहाया करती है, उसके न आनेका समाचार सुनकर आज जिसका हृदय थोड़े जलकी मछलीकी भाँति छटपटा उठेगा, उस माँका दर्शन रमाको

प्रणय

आज न होगा। एक ही दो दिनमें विजय भी चला जायगा! यह सोचते ही रमाकी आँखोंसे आँसूके दो कतरे, सीपसे मोतीकी तरह ढुलककर उसके गोरे गालोंपर आ गये। हाय! फिर तो रमा अकेली रह जायगी। यहाँ उसका कोई भी न रहेगा। वह किसे लेकर सन्तोष करेगी?

अब रमाकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। सोचने लगी,—अबतक मैं शहरमें होती, घंटेभर बाद मैं माँके पास पहुँच जाती, सखी-सहेलियाँ आकर मिलतीं-भेंटतीं, स्वतन्त्रता पूर्वक हौसले और उमंगके साथ मैं पड़ोसियोंके घर जाती। हाय, वह सब दुर्लभ हो गया! अब न-जाने कब ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा!

रातके ग्यारह बज गये थे, बालक विजय खा-पीकर गहरी नींदमें बेखबर सो गया था और रमा इसी चिन्तामें लेटी जाग रही थी। ज्ञानदत्तने उसका चेहरा उतरा हुआ देखकर पूछा,—आज अभीतक तुम्हें नींद क्यों नहीं आयी? क्या माँको याद कर रही हो?

रमाने कहा,—अभी तो सोनेका समय ही हो रहा है।

ज्ञानदत्तने उसके अरुण अधरोंका प्रेम-पूर्ण चुम्बन करते हुए कहा,—वाह! ग्यारह बज गये, अभी सोनेका समय नहीं हुआ? मेरे भाग्यसे ही तुम्हारा आना रुक गया।

"और मेरे भाग्यसे नहीं," यह रमा कहना चाहती थी, किन्तु संकोचने उसकी जबान बन्द कर दी।

प्रणय

ज्ञानदत्तने कहा,—क्या तुम भारतेन्दुजीकी उस दिन वाली कविताका स्मरण कर रही थी ?

रमाने तिरछी नजरोंसे ताकते हुए पूछा,—कौनसी ?

ज्ञानदत्तने कहा,—याद करो ।

रमाने मतवाली आँखोंके संकेतसे कहा,—मुझे नहीं याद है।—फिर न-जानें क्या सोचकर कहा—बतलाओ ?

ज्ञानदत्तने मुस्कराते हुए कहा,—मैं अच्छी तरह समझ गया कि तुम उसी कविताकी याद कर रही थी ।

रमाने ज्ञानदत्तके वक्षस्थलपर हाथ रखकर कहा,—बतला दो न !

ज्ञानदत्तने भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी कविताका पाठ किया—

"टूट ठाट घर टपकत खटियउ टूट ।
पिया कै बाँह उसिसवाँ सुखके लूट ॥"

ऊपरकी पँक्तियाँ सुनते ही रमाने स्वामीपर एकबार नेत्रबाण चलाकर मुस्कराते हुए, आँचलसे किञ्चित् मुँह ढँककर कहा,—चलो, तुम्हें तो यही सब आता है ।

सुशिक्षिता रमाके इस शब्द और मनोहर भावमें कितनी सरलता है, इसका अनुमान करते ही ज्ञानदत्तका रसीला हृदय आनन्द लहरीमें उद्वेलित हो नृत्य करने लगा । थोड़ा-कालतक चुप रहनेके बाद उन्होंने रमाको हृदयसे लगा लिया और कहा,—थी न यही बात ?

प्रणय

रमाने स्वाभाविक सलज्जताके साथ साहस-पूर्वक मधुर स्वरमें कहा,—तो इसमें अनुचित ही क्या है !

थोड़ी देरतक दोनों चुप रहे बाद आनन्दने पूछा,—अच्छा अब ये बातें जाने दो, सच बतलाओ तुम्हारी उदासीका असली कारण क्या है ?

रमाने कहा,—कुछ तो नहीं, यों ही जरा वहाँकी याद आ गयी थी।

रमाका यह स्पष्ट उत्तर सुनकर आनन्द बागबाग हो उठे। इसके बाद दाम्पत्य विस्रम्भालाप (केलि-कलह-पूर्ण वार्त्तालाप) बहुत देरतक होता रहा।

भोली रमा ! जरा यह भी तो सोच कि, यदि तू चली गयी होती तो आज तुझे स्वामि-दर्शन कैसे मिलता ? तुलना करके देख तो सही, पति-सुखके बराबर संसारके समूचे सुख मिलकर होते हैं या नहीं ? कदाचित् तेरा हृदय यही निष्कर्ष निकालेगा कि संसारके सब सुख मिलकर स्वामि-सुखके पासंगमें भी नहीं आ सकते। अच्छा, तो फिर तू पितृ-गृहमें जानेके लिए क्यों अधीर होती है ? नहीं नहीं, भूल हुई। तेरे पिताका घर तेरे लिए गौरव-पूर्ण स्मरण रखनेकी वस्तु है,—स्त्रियाँ तो ससुरकी भव्य अट्टालिकामें दर्जनों दासियोंसे सेवा कराना छोड़कर निर्धन पिताके घर जाकर बासन माँजनेके लिए तरसती हैं, बिलखती हैं, देवी-देवताको मनाती हैं।—लेकिन क्या तूने अपनी स्थितिपर भी ध्यान दिया ? जरा पहलेकी बातोंका भी

नो स्मरण कर पगली ! कैसी भद्दी भूल है ! सोचनेकी बात है, यदि रमाने पहलेकी बातोंपर ध्यान न दिया होता, तो स्वामीके आते ही—दो-चार बातें करते ही—वह सब चिन्ताओंसे मुक्त क्यों कर हो जाती ?

सामनेकी वस्तुका असर मनुष्यके हृदयपर पड़ ही जाता है—चाहे वह थोड़े समयतक रहे, अथवा अधिक समय तक; किन्तु असर अवश्य पड़ता है, यह मनुष्यका स्वाभाविक धर्म है, इसीसे रमा भी पिताके घरकी याद करके दुःखी हो गयी थी। किन्तु स्वामीसे भेंट होते ही उसे भावजोंके अँगुली उठाने तथा पति-वियोगके दुःखका स्मरण हो आया, इसलिए उसका वह दुःख दूर हो गया। यदि ऐसा न होता तो अभी वह न-जानें कबतक यह यंत्रणा भोगती, रोती-कलपती, और ज्ञानदत्तसे भेंट होनेपर उसका वह दुःख-सागर अधिक वेगसे उमड़ता।

कुछ आहट पाकर ज्ञानदत्तने कहा,—ज़रा देखो, तो कोई है क्या ?

रमाने दूसरी खिड़कीसे जाकर देखा और फिर उलटे पाँव वापस आकर आहिस्तेसे कहा,—मैं तो नहीं पहचान सकी, ज़रा तुम उठकर देखो कौन है।

ज्ञानदत्त चोरकी आशंका करके झट उठे और दबे पैरसे जाकर देखा तो मालूम हुआ कि कोई स्त्री सफेद साड़ी पहने दरवाजेके पास कान लगाकर खड़ी बड़े यत्नसे भीतरकी बातें सुन रही है।

आनन्दलालने उस स्त्रीका पृष्ठ-भाग देखकर ही समझ लिया कि यह और कोई नहीं 'प्रभा' है।

तेरहवाँ परिच्छेद

प्रभाकी व्यग्रता बहुत बढ़ गयी। रमाका यह दुःखमय जीवन उसके कलेजेमें काँटेकी तरह चुभने लगा। आनन्द १५-२० दिनके बाद चले जायँगे, यह सोचकर उसे कुछ सन्तोष तो अवश्य होता था, पर उतना नहीं, जितना कि होना चाहिए। वह कोई नया काम करनेके लिए यत्न सोचनेमें निमग्न ही थी कि दयालु परमात्माकी कृपासे दाईने आकर एक पत्र दिया और यह सुसम्वाद सुनाया,—कलकत्तासे लाल बहुओंको बुलानेके लिए तार आया है बहू, वह बहुत जल्दी आनेके लिए कहते थे।

प्रभाने विह्वल होकर पत्र पढ़ते हुए पूछा,—तार कब आया है?

दाईने कहा,—"अभी।"—यह कहकर दाई चली गयी।

प्रभा फिर कुछ सोचने लगी। न-जाने क्या सोचकर थोड़ी ही देरके बाद वह अपने स्थानसे उठी और रमाके कमरेमें गयी। वहाँ रमाको न पाकर फिर लौट आयी। शायद आनन्दलालके तारका समाचार कहकर रमाको कष्ट पहुँचानेके लिए ही वह आतुर थी। आँगनमें आकर देखा तो सामने मालकिनके कमरेमें रमा बैठी थी।

उसके मकेसे एक औरत कुछ चीजें लेकर आयी थी, उसीसे वह बातें कर रही थी। देवकी सब चीजें देख रही थीं। उसमें रमाके लिए एक साड़ी थी, दो जैकेट थी, पाँच जोड़ी कीमती चूड़ियाँ थीं और भी बहुतसी चीजें थीं। प्रभा जाकर खड़ी हो गयी। देवकीने दुलहिनको देखकर आयी हुई मजदूरिनसे कहा,—जब तू आती है बुधिया, तब मैं यह समझती हूँ कि मेरे भी समधियाना है, नहीं तो मैं तरस कर मर जाती।

दुलहिनको सासकी यह बात बहुत खली। यदि उसके मैकेसे भी कभी-कभी इससे बढ़कर चीजें आती होतीं, तो आज देवकीको यह कहनेका अवसर न रहता। यद्यपि प्रभा गरीब पिताकी कन्या नहीं है; यह भी नहीं है कि उसके पिता कभी कोई चीज भेजते ही नहीं, तथापि यह अवश्य है कि अब उसके पिताकी स्थितिमें अन्तर पड़ गया है। पहले भी वह रमाके पिताके समान धनाढ्य नहीं थे और न इतनी चीजें ही भेजते थे, जितनी कि रमाके पिता। इसीसे वह तुरन्त ही वहाँसे खिसक गयी। सत्य है, दूसरेको कष्ट पहुँचाने-की चेष्टा करनेसे स्वयं दुःख भोगना पड़ता है। यदि प्रभा, रमाको कष्ट पहुँचानेके इरादेसे वहाँ न गयी होती तो उसका हृदय सासके व्यंगपूर्ण वाग्-बाणसे विद्ध कदापि न होता।

सासका कहना रमाको भी अच्छा न लगा। किन्तु वह भी कुछ बोल न सकी। थोड़ी देरके बाद ही रमा उठकर अपने कमरेमें चली आयी, क्योंकि आजहीसे कथा बैठनेवाली थी और

प्रणय

उसके लिए प्रबन्ध करना था । यह नवीन कार्य ज्ञानदत्तके उद्योगसे प्रारम्भ होनेवाला था । इसके लिए एक अस्सी वर्षके वृद्ध सदाचारी कथा-वाचक चुने गये थे । गाँवके लोग अपने घरकी स्त्रियोंको कथा सुननेके लिए आने देना स्वीकार कर चुके थे । रमाने सब सामान एकत्र करके सब शिक्षित और पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको निमंत्रण-पत्र लिखकर भेज दिया । जो स्त्रियाँ अनपढ़ थीं, उनके पास सन्देशा कहला दिया कि वे सन्ध्याके समय आठ बजे शिवजीके मन्दिरपर पधारें ।

शिव-मन्दिर, पं० शम्भुदयालके मकानके सामने थोड़ी दूरके फासलेपर बना हुआ है । इस मन्दिरका निर्माण पं० शम्भुदयालके पिताने किया था । स्थान बड़ा ही रमणीक है । आसपासकी शोभा वर्णनीय है । फुलवारीके बीचोंबीच कथा-मंडप बनाया गया है और उसमें पर्देके भीतर सात सौ स्त्रियोंके बैठनेका प्रबन्ध है । एक ओर तीन फुट ऊँचे चबूतरेपर व्यास-गद्दी है । सात बजे शाम होते ही धीरे-धीरे स्त्रियाँ जुटने लगीं । ठीक साढ़े सात बजे कथा-वाचकजी तथा गाँवके प्रमुख लोग भी आ गये । सबलोग ज्ञानदत्तकी प्रतीक्षा करने लगे ।

इधर स्वामीकी यात्राका समाचार सुनकर रमाका सारा उत्साह भंग हो गया । वह एकान्तमें बैठकर मन-ही-मन कुछ सोचने लगी । स्वामीके वियोगका स्मरण करके उसका हृदय विषादसे भर गया । तबतक मकानके बाहर किसी वृक्षपर बैठी हुई कोयल सहसा 'कुहू

कुहूँ' करके कूक उठी। यह कहना कठिन है कि उस कूकमें कौनसा जादू था जिसे सुनते ही रमाकी आँखोंमें आँसू भर आये। आह कोयल! इस असमयमें तू क्यों कूक उठी? तुझे रमाके आन्तरिक व्यथापर तनिक भी तरस न आया? क्या तेरा हृदय इतना निष्ठुर है? तेरे मधुर स्वरमें कितना हलाहल भरा है? माना कि तू बड़ी सुकंठा है; किन्तु तेरी संगीत-लहरीमें एक वेदना छिपी रहती है, जो मानव-हृदयकी उत्पन्न हुई ज्वालामें घृताहुतिका काम करती है। सौभाग्यसे इसी समय ज्ञान-दत्त आ गये। रमाने अपनी हृदय-वेदना छिपानेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु ज्ञानदत्तको देखते ही उसकी आँखोंसे जल-धारा बह चली। ज्ञानदत्तने कहा,—यह क्या? मैं इसीलिए आया हूँ? ऐसे शुभ कार्यके प्रारम्भ करनेमें कहीं रोना होता है?

थोड़ी देरके बाद रमाने अपना सिर स्वामीकी छातीसे लगाकर मुख छिपा लिया। बड़े कष्टके साथ कहा,—क्या करूँ, चेष्टा तो करती हूँ कि आँसू न गिरें, पर ये निगोड़े रुकते ही नहीं।

रमाके इस वाक्यमें कितनी वियोग-व्यथा भरी थी, यह ज्ञान-दत्तसे छिपी न रही। कहा,—तुम बुद्धिमती होकर ऐसा कहती हो? राम, राम,! भला तुम इस प्रकार अपने मनके वशमें हो जाओगी, तो कैसे काम चलेगा? तुममें लोहेके समान दृढ़ता होनी चाहिए।

इस प्रकार बहुत समझाने-बुझानेके बाद रमाके परितप्त

हृदयको कुछ शान्ति न मिली। सभामें सम्मिलित होनेके लिए राजी हो गयी। ज्ञानदत्त चले गये। रमा उठी और सासके पास गयी।

देवकी दाइयोंको घर सहेजकर जानेके लिए तैयार बैठी थी उनसे आज्ञा लेकर डरते-डरते अपनी जेठानी प्रभासे चलनेके लिए कहा। डरनेका कारण, वही सासका कथन था। उसे यह विश्वास था कि प्रभा क्रुद्धा सर्पिणीकी भाँति भल्ला उठेगी। किन्तु न जाने क्यों ऐसा नहीं हुआ। प्रभाने हँसकर बड़े प्रेमसे कहा,—तुम माँजीको लेकर चलो, मैं बाबाको सुलाकर किसी दाईके साथ अभी आती हूँ।

रमाने कहा,—तो फिर हमलोग भी ठहर जायँ, साथ ही चलेंगी।

प्रभाने बड़े आग्रहसे कहा—नहीं, तुम ठीक समयपर वहाँ पहुँच जाओ, क्योंकि आज पहला दिन है। वक्त हो गया है। जाओ। मैं अभी आती हूँ न! सबलोगोंका रुकना ठीक नहीं। बेचारी रमा यह न समझ सकी कि जगदीश तो सो गया है, यह झूठा बहाना किया जा रहा है। उसे क्या मालूम कि आज उसपर कोई गहरा षड्यंत्र रचकर प्रभा इस तरह प्रसन्न है। बोली,—अच्छा तो फिर चलती हूँ, आना जरूर जीजी।

"अभी आयी" कहकर रमाके जानेपर प्रभा मन-ही-मन कुछ

सोचकर हँसी और बोली,—तेरा सर्वनाश किये बिना कभी न छोड़ूँगी।

रमा अपनी सासके साथ चली गयी। वहाँ जाकर देखा कि गाँवकी सब स्त्रियाँ आ गयी हैं। अबतक कार्य प्रारम्भ हो गया होता, किन्तु झानू बबुआ कुछ देर करके आये, इसीसे काम रुका है। रमाने अपने मनमें समझा कि मेरे ही कारण उन्हें आनेमें देर हुई।

इतनेमें व्यास-गद्दीके बाम पार्श्वमें एक विशाल नेत्रवाला सुन्दर युवक कुछ कहनेके लिए खड़ा हुआ। उस युवकके चेहरेसे सुन्दरता टपकी पड़ती थी। पक्का रंग, घुँघराले बाल, पतली नाक और ओठ तथा सुडौल मुखकी कान्तिपर एकबार सबकी दृष्टि अटक जाती थी। युवककी अवस्था भी कोई अधिक नहीं, केवल बीस-इक्कीस वर्षकी प्रतीत होती थी; रेखोंसे मुखच्छवि और भी बढ़ गयी थी। युवकके उठते ही कथा-भवनमें शान्ति छा गयी। युवकने पहले शिव-स्तुति की, बाद अपना भाषण ठेठ बोलीमें प्रारम्भ किया। उसके गलेकी माधुरी लोगोंके चित्तको बरबस खींचे लेती थी। युवकके भाषणका सारांश यह है:—

माताओ, बहनो, तथा उपस्थित ग्रामीण बन्धुवरो,

आपलोगोंको मालूम है कि हमारे देशके अधःपतनका मूल कारण स्त्री-समाजकी अनभिज्ञता है; और यह अपराध पुरुष-जातिका है। क्योंकि पुरुषोंने ही स्त्रियोंकी शिक्षा रोक रक्खी है। स्त्रियोंका

प्रणय

मूर्खताके कारण ही गृह-कलह, पारस्परिक कष्ट और मूर्ख सन्तानोंकी उत्पत्ति हो रही है। इसलिए स्त्री-जातिके सुधारकी सबसे बड़ी आवश्यकता है, और इसी उद्देश्यसे यह कार्य प्रारम्भ किया जा रहा है। अब आजसे यहाँपर हर रविवारको सन्ध्या समय रामपुर गाँवकी सब स्त्रियाँ जमा होंगी और हमारे पूज्य वयोवृद्ध कथावाचकजी एक घंटेतक उत्तमोत्तम उपदेश दिया करेंगे। सौभाग्यकी बात है कि हमलोगोंको एक ऐसे कथावाचक मिले हैं जो आजकलके कथक्कड़ोंसे सर्वथा भिन्न, देश-कालका ज्ञान रखनेवाले, पुराने देशसेवक, वृद्ध होनेपर भी परम उत्साही, सदाचारी निर्लोभी तथा उत्तम उपदेशक हैं। कथा-वाचकजी सदा ऐसी कथाएँ सुनावेंगे और ऐसे ही उपदेश दिया करेंगे, जिससे हमारी माँ-बहनें देवी बनेंगी और उनके भीतरसे सारे कुसंस्कार दूर हो जायँगे। सती-साध्वी देवियोंके चरित्र, गृहस्थीके कार्य करनेकी रीति, समयके उपयोगकी विधि तथा और भी इसी तरहकी उपदेश-प्रद बातें ग्रन्थोंसे छाँट-छाँटकर सुनायी जायँगी। यहाँपर इन बातोंपर सबलोग हमेशा ध्यान रखें:—

१—इस भवनमें कथाके दिन स्त्रियोंके सिवा कोई भी पुरुष न आ सकेगा, और सब चीजका प्रबन्ध स्त्रियाँ स्वयं करेंगी। जैसे, स्त्रियोंको बैठाना-उठाना, उन्हें जल पिलाना, पंखा झलना आदि।

२—पाँच आदमी इस भवनकी देख-रेख करनेके लिए नियुक्त किये जाते हैं। जब कभी किसी चीजकी आवश्यकता पड़े तो स्त्रियाँ

अपने घरके किसी आदमीसे उन पाँचो आदमीयोंमेंसे किसी एकके पास कहला भेजें,—किन्तु स्वयं पत्र लिखकर न भेजा करें।

३—महीनेके अन्तमें सब स्त्रियाँ एक सेर चावल, सेरभर आटा आध सेर दाल, और एक छटाँक घी कथा-वाचकजीको दिया करें।

४—यदि कथा वाचकजी कथामें कोई अश्लील बात कहने लगें तो किसी नौकरानीसे तुरन्त कहलाकर कथा-वाचकजीको रोक देना चाहिए।

५—जहाँतक हो सके, सब स्त्रियाँ इसका प्रचार करें, ताकि अन्यान्य गाँवोंमें भी इसी तरहकी कथाएँ हुआ करें। किन्तु यह समझा देना चाहिए कि हर जगह कथा-वाचक बहुत समझ-बूझकर नियुक्त किये जायँ,—क्योंकि आजकल कथा-स्थानोंमें बहुत अधिक पाप किये जा रहे हैं।

६—यहाँ आकर सब स्त्रियाँ शान्तिसे रहा करें और जो कुछ उपदेश सुनें उसपर चलनेकी चेष्टा करें।

७—आपसमें बैठकर हमेशा अच्छी-अच्छी बातें सोचा करें और स्वयं उपदेश देनेके योग्य बननेकी चेष्टा करें—ताकि कुछ ही दिनोंमें आज जिस स्थानपर कथा-वाचकजी हैं, उस स्थानपर कोई स्त्री बैठे।

बस। संक्षेपमें मैंने सारी बातें कह दीं। यद्यपि आज मुझे इस विषयपर बहुत कुछ कहना चाहिए था, तथापि मैं इतना ही कहकर अपना भाषण समाप्त करता हूँ कि यदि रामपुर-निवासी इस कार्य-

को सुचारु रूपसे करते जायँगे और इसमें किसी प्रकारका भी दोष न घुसने देंगे, तो एक वर्षके भीतर ही यह रामपुर स्वर्गपुर हो जायगा और यहाँके रहनेवाले स्त्री-पुरुष स्वर्ग-सुखका अनुभव करेंगे। ओ३म् शान्ति! शान्ति!

इसके बाद करतल-ध्वनिके साथ युवक अपने स्थानपर बैठ गया। पाठक समझ गये होंगे कि युवक महाशय पंडित ज्ञानदत्तजी हैं। इनके बैठनेके बाद कथा-वाचकजीने जगज्जननी जानकीजीका जीवन-वृत्तान्त मनोहर भाषामें कहना प्रारम्भ किया।

अभीतक तो रमा पर्देकी आड़में बैठी स्वामीका अभिभाषण सुननेमें तन्मय थी, रह-रहकर कनखियोंसे पासमें बैठी हुई स्त्रियोंकी नजरें बचाकर स्वामीकी मुखच्छवि भी निहार लिया करती थी, किन्तु अब उसे अपनी जीजीका स्मरण हुआ। प्रभा अभीतक नहीं आयी, क्या कारण है? जान पड़ता है, जगदीश ऊधम मचा रहा है, सोया नहीं।

कथा समाप्त हो गयी। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सब अपने-अपने घर जाने लगे। जहाँ देखो, वहीं ज्ञानदत्तके इस कार्यकी प्रशंसा हो रही थी। आज लोगोंको मालूम हुआ कि ज्ञानदत्तने अवश्य अपनी उन्नति की है। रमा भी पति-प्रशंसा सुन-सुनकर गद्गद हो, घर गयी। पहुँचते ही उसने प्रभाके कमरेमें जाकर कहा,—जीजी, तुम बड़ी झूठी हो। अब आजसे मैं भी तुम्हारी कोई बात न मानूँगी।

प्रणय

प्रभाने विषाक्त हँसी हँसकर कहा,—नहीं बहू, मुझे दोष ने दो। सच मानो मैं तो तरसकर मर गयी। क्या करूँ, यह पाजी सोया ही नहीं। अच्छा हाँ, क्या-क्या हुआ बतलाओ तो सही।

रमाने रूठकर कहा,—जाओ, मैं कुछ न बतलाऊँगी। मैं समझ गयी कि तुम्हारी जानेकी इच्छा ही नहीं थी; नहीं तो तुम्हारे कहनेकी देर थी, जगदीशको मैं ले लेती।

प्रभाने कहा,—उदास न हो बहू, मैंने इसीलिए नहीं कहा कि उसे ले चलनेमें व्यर्थ ही तुम्हें कष्ट होगा। अच्छा अभी रहने दो, खा-पीकर आज यहीं सोना, तब निश्चिन्ततासे सब हाल कहना। क्योंकि आज तो ज्ञानू बबुआ भी नहीं रहेंगे।

रमा तो सारा हाल कहनेके लिए उत्सुक थी, किन्तु प्रभाकी उक्त बात सुनकर न कह सकी। अपनेको भूलकर पूछ बैठी,—कहाँ जायँगे?

प्रभाने बनावटी चकित भाव दिखलाकर कहा,—तुम्हें नहीं मालूम? वह इलाकेपर किसी जरूरी कामसे जायँगे, शायद चले भी गये हों तो मैं नहीं कह सकती।

रमा कुछ न बोली और उदास होकर चली गयी। कल ही ज्ञानदत्त विदेश जायँगे, आज यह क्या? ऐसा कौनसा काम आ पड़ा, जिसकी चर्चा रमासे किये बिना ही वह इलाके पर चले गये?

साढ़े दस बज गये थे। सबलोग नींदमें मस्त थे। किन्तु ज्ञानदत्त

प्रणय

कोठीके लोग अभी भी चारपाईपर पड़े करवटें बदलते हुए किसी बातकी प्रतीक्षामें जागरण कर रहे थे। दरवाजा खड़कनेपर ज्ञानदत्त चारपाईसे उठे और सीधे अपने कमरेमें चले गये। वहाँ जाकर देखा, रमा नहीं है और उसकी चारपाईपर एक मनुष्य बिस्तरेको सिरहाने रखकर गहरी नींदमें अचेत पड़ा है। ज्ञानदत्त चौंक उठे, छाती धकधकाने लगी। नजदीक जाकर देखा तो मालूम हुआ कि सोये हुए मनुष्यकी अवस्था अठारह वर्षसे अधिक नहीं है; गोरा रंग है, काकुलके बाल बिखरे हुए हैं, लम्बा मुख है, बिल्लीकीसी छोटी-छोटी आँखें हैं, जिसका चुन्नटदार कुर्ता पसीनेसे तर हो रहा है। ज्ञानदत्त दो मिनटसे अधिक वहाँ नहीं रुक सके। सोया हुआ मनुष्य उनका अपरिचित नहीं था, फिर भी उन्होंने कईबार उसकी शकल बड़े गौरसे देखी। दिलमें आया, इसका काम तमाम कर देना चाहिए; फिर सोचा, ऐसा करनेमें षड्यंत्रका पता न चलेगा; धीरताके साथ इस रहस्यको जानना चाहिए। यही स्थिर करके वह बिना कुछ बोले-चाले बाहर आकर सो रहे। रातभर उन्हें नींद नहीं आयी। बिछौनेपर करवटें बदलकर रात बितायी। सबेरे भी वह उद्भ्रान्तसे घूमते रहे।



चौदहवाँ परिच्छेद

प्रातःकालकी सूचना देनेके लिए दीपकका प्रकाश कुछ मन्द हो चला। कोयल, पपीहा दधियलके स्वर भी भोर होनेकी सूचना देने लगे। उषा देवीकी अठखेलियाँ स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगीं। ज्ञानदत्तकी नींद उचट गयी। आज ही साढ़े चार बजे उनकी यात्राका मुहुर्त्त है। झटसे उठकर बैठ गये। देखा, रमा उनका जूता साफ कर रही है। न-जानें क्यों, रमासे बिना कुछ बोले ही, ज्ञानदत्त बाहर जानेके लिए उठ खड़े हुए। रातको सोते समय भी उन्होंने रमासे दो-चार रूखी बातोंके सिवा कोई बात नहीं की थी। किन्तु रमाने इसका कोई खयाल नहीं किया था। सवेरे फिर जब वह जानेको तैयार हुए, तब रमाने कहा,—अभी तो अधिक रात है, थोड़ा और सो लो न, रातको ट्रेनमें जागना पड़ेगा।

ज्ञानदत्तने अन्यमनस्क होकर उत्तर दिया,—अब रात नहीं है।

रमा यह न समझ सकी कि स्वामी मुझपर नाराज हैं। उसने तो यही समझा कि जुदाईके समय मनुष्यकी तबीयत खिन्न हो ही जाया करती है। उसे क्या मालूम कि मामला क्या है। पूछनेपर भी तो नहीं बतलाया कि कल इलाकेपर कौनसा काम था। रमाके हृदयमें न-जानें कैसा उद्गार उठा कि वह व्याकुल हो गयी। आँखोंसे आँसू गिर पड़े।

प्रणय

ज्ञानदत्त खड़े हो रहे थे। यदि उस समय वह शुभ्र गौर-वदना, मृगनयनी, पके हुए बिम्बाफलके समान आरक्त अधरोष्ठी रमा सुन्दरीके मुख-कमलकी ओर दृष्टि फेरते तो अवश्य ही उनका मन भ्रमरकी भाँति मकरन्द पान करनेमें विभोर हो जाता। किन्तु हाय, रमाके दुर्भाग्यसे ऐसा न हुआ। रमा कुछ कहनेके लिए छटपटा रही थी, किन्तु थोड़ी ही देरमें स्वामी चले जायँगे, इसकी याद करके उसका गला खुलता ही न था। उसके परिपुष्ट और सुविशाल नेत्रोंसे ग्रंथि-छिन्न मुक्ता-मालाकी भाँति शुभ्र और स्थूल अश्रु-विन्दुओंका झरना बन्द नहीं हुआ। ज्ञानदत्तने घड़ी देखकर अपने-आप ही कहा,—ओह! गाड़ीमें सिर्फ घंटेभरकी ही देर है।

इसपर भी रमा कुछ न बोली। कुलमें घण्टाभर! यह सोच-कर रमाका हृदय काँप उठा।

ज्ञानदत्त बाहर चले गये और शौचादिसे निवृत्त होकर आ गये। रमा ज्योंकी-त्यों बैठी थी। उसके हृदयमें वियोग-कविताकी आशा लहरा रही थी। ज्ञानदत्तने अपने कपड़े पहने और चलते समय रमाके विकसित पुष्प सदृश कपोलोंपर हाथ फेरकर कहा,—अच्छा, अब जाता हूँ, यदि तुम चाहोगी तो फिर आऊँगा।

रमाको अन्तिम वाक्य सुनायी नहीं पड़ा, और यदि सुनायी भी पड़ा हो तो यह कहना चाहिए कि इस समय उसने उसपर ध्यान ही नहीं दिया। यही कारण है कि उसने थर्रायी हुई आवाज-से बड़े कष्टके साथ केवल इतना ही पूछा,—कब आओगे?

प्रणय

ज्ञानदत्तने रमाकी आवाज़ सुनी। अर्थ-हीन दृष्टिसे उसकी ओर देखा। एकबार उनकी इच्छा हुई, इस प्रश्नकी अपेक्षा कर दें—इसपर ध्यान ही न दें; परन्तु दूसरे ही क्षण यह भाव न-जाने कहाँ विलुप्त हो गया। एक अज्ञात आकर्षणसे खिंचकर कमरेसे बाहर होते-होते ठमक गये। 'कब आओगे' इस छोटेसे वाक्यमें ज्ञानदत्तको विश्व-साहित्यका प्राण दिखायी पड़ा। वाह! इसमें किसी विरह-सूचक रस-भरी कविता है! कैसा मर्मान्तक आर्त्तनाद है।

'मेरा आना तुम्हारी कृपापर निर्भर है' यह कहकर ज्ञानदत्त कमरेसे बाहर हो गये।

उनके जाते ही रमाको चक्करसा आ गया। तुरन्त ही वह बैठ गयी, इसलिए पछाड़ खाकर गिरनेसे बच गयी। उस समय उसे ऐसा जान पड़ता था कि मानो पूरी शक्ति लगाकर कोई उसके प्राणको बाहर खींच रहा है।' हाय! वह चले गये, मगर रमाको वियोगकी आगमें झोंककर! रमा अपने स्वामीके बिना दीवानी बन गयी। उसकी अजीब हालत हो गयी।

धर्मदत्त अपने भाईको गाड़ीपर बिठाकर वापस आ गये। सबलोग अपने-अपने काममें प्रवृत्त हो गये। देवकी रमाके पास गयी। देखा, पूर्ण चन्द्रको राहुने ग्रस लिया है। रमाके प्रफुल्ल नेत्र जलपूर्ण हो रहे हैं। देवकीने उसका मुँह ऊपर उठाकर कहा,—

प्रणय

यह क्या री! क्या कोई परदेश नहीं जाता? लालू पहले-पहल तो गया नहीं, वह तो हमेशा ही बाहर रहता है।

सासने उसका रोना देख लिया और यह समझ लिया कि यह पतिके लिए रो रही है, यह सोचकर रमाको बड़ी लज्जा मालूम हुई। किन्तु क्या करती, उस समय रुदनका रोकना उसकी शक्तिके बाहर था। चेष्टा करनेपर भी आँसू छलछला पड़े।

उस दिन रमाने बहुत गोलमाल किया। भातकी कढ़ाई लुढ़का दी, भातमें नमक डाल दिया, दाल अलोनी रह गयी, कटोरेका घी नीचे गिरा दिया। दुलहिनने यह शोभा देखते ही महाभारत मचा दिया। कहा,—बाप-रे-बाप! ऐसा औरत मैंने दुनियामें नहीं देखी। न किसीकी लाज न डर! लालूके रहनेपर इसने एक दिन भी रसोई खराब नहीं की, उसके जाते ही फिर पुरानी चालसे चलने लगी।

दुलहिनका कहना शम्भुदयालने सुन लिया। मालकिनसे जाकर कहा,—जरा दुलहिनको समझा दो, छोटी बहूको कुछ न कहे। भला ऐसे समयमें कुछ कहना होता है!

देवकीने झुँझलाकर कहा,—तुम्हीं जाकर समझाओ, मैं अपना सिर फोड़वाना नहीं चाहती।

यह उत्तर पाकर शम्भुदयाल बाहर चले आये। बेचारी रमाका दुःख सुननेवाला इस घरमें कोई नहीं! वाह रे संसार।

———:❋०❋:———

प्रणय

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

ज्ञानदत्त कलकत्ता पहुँचकर एक दैनिक पत्रका सम्पादन करने लगे। गौरीबाबूने इसी कामपर नियुक्त करनेके लिए तार भेजा था। दो ही महीनेमें ज्ञानदत्त अपने शिष्ट-स्वभाव तथा लेखन-कौशलसे हिन्दी-जनताके आराध्यदेव बन गये। शहरमें चारों ओर उनकी ख्याति हो गयी। समाचार-पत्रकी बिक्री भी चन्द दिनोंमें ही दूनी हो गयी। यह देखकर पत्रके मालिकने अपने-आप ही तीसरे महीनेसे ज्ञानदत्तका वेतन दो सौ रुपये मासिक कर दिया और उनके रहनेके लिए अपने हरीसनरोडवाले मकानमें एक बढ़िया कमरा तथा रसोईघर मुफ्त दे दिया। सब सिलसिला ठीक हो गया, किन्तु ज्ञानदत्तका क्षुब्ध और प्रेमी हृदय शान्त न हुआ। कुशल यही थी कि कार्य्य-भार इतना विशेष था कि उन्हें फुरसत ही बहुत कम मिलती थी और जो कुछ समय मिलता भी था, उसमें मित्र-मण्डली घेरे रहती थी।

आफिससे आकर ज्ञानदत्त अपने कमरेमें बैठे पुस्तक पढ़ रहे थे। चंचल मन अपने स्वभावानुसार इस स्वाध्याय-निरत तपस्वीके ध्यानको भंग करनेमें लग गया। ज्ञानदत्तका दिल पुस्तकसे उचटा। घरसे विदा होते समय रमाके उन

प्रणय

जल-भरे विशाल नेत्रों और हवाके झोंकेमें जलके ऊपर लहराते हुए विकसित लाल कमलके समान आँखोंका स्मरण हो आया। सोचने लगे,—वह शिशिर-मथिता पद्मिनी या मेघ-कवलित मलिन-कान्ति निशाकरके समान पति-विरहमें बैठी होगी।

किन्तु तुरन्त ही उन्हें उस मनुष्यकी याद आयी, जो रात्रिमें रमाके कमरेमें लेटा हुआ था। उनके शरीरका रक्त खौल उठा। सोचा, क्या सचमुच ही भाभीका कहना ठीक है? वह (रमा) दुराचारिणी है? यदि ऐसा न होता तो सन्नाटी रातमें एक बिराना पुरुष उसके कमरे-में क्यों जाता? स्त्रीकी सम्मतिके बिना कोई उसके घरमें कैसे जा सकता है? पर उसके चाल-व्यवहारसे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता। भाभीने जो पत्र दिखलाया था, वह उसके हाथका लिखा हुआ भी नहीं मालूम होता था। हो सकता है कि उसने ही दूसरेके द्वारा कोई षड्यन्त्र रचा हो। परन्तु यह भी सम्भव नहीं। भला साधारण पढ़ी-लिखी और देहातकी रहनेवाली भाभीमें इतनी बुद्धि कहाँ? कौन जाने किसीके बतलानेसे भाभीने यह जाल रचा हो। अवश्य यही बात है, क्योंकि वह ऐसी नहीं है। वह मुझपर अगाध प्रेम रखती है। मैंने भूल की।

इतनेमें नौकरने आकर कहा,—पाखाना जानेके लिए पानी रख दिया है बाबू।

ज्ञानदत्तकी समाधि टूटी; झट उठे और शौचादिसे निवृत्त हो-कर कमरेमें आ गये। नौकर जरूरी चीजोंको टेबुलपर रखकर

चीजें लानेके लिए बाजार गया। ज्ञानदत्त दीवारपर टँगे हुए बड़े शीशेके सामने कुर्सीपर बैठकर कंघीसे बाल सँवारने लगे। अचानक उन्हें शीशेपर किसीका प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ा। ज्ञानदत्त भौंचक्के-से होकर इधर-उधर ताकने लगे, किन्तु कोई दिखलायी न पड़ा। फिर उन्होंने शीशेकी ओर देखा, पर वहाँ भी कुछ न पाया। विवश हो, कपड़ा पहनने लगे। रह-रहकर शीशेकी ओर ताक दिया करते थे। हठात् वही प्रतिबिम्ब फिर दिखायी पड़ा, किन्तु फिर दृष्टि पड़ते ही वह फिर गायब हो गया।

ज्ञानदत्तका यह कमरा दोतल्लेपर था। सन्ध्याके समय बरामदे-में बैठनेसे हरीसनरोडकी निराली बहारका खासा आनन्द मिलता था। पहले मकानके मालिक इसी मकानमें रहते थे, और यही ज्ञानदत्तवाला कमरा ही उनके उठने-बैठनेका होनेके कारण आयल पेंटिंग, मार्बिल आदिसे खूब सजा हुआ था। अब मकान-मालिक अपने नये मकानमें चले गये, और उन्होंने सजा-सजाया कमरा ज्ञानदत्तके लिए छोड़ दिया।

ज्ञानदत्त सड़ककी ओर बरामदेमें आकर चारो ओर देखने लगे। किन्तु फिर कुछ देखनेमें नहीं आया। प्रतिबिम्ब-दर्शनकी आशासे वह फिर भीतर जाकर आशा-भरी दृष्टिसे शीशेकी ओर टकटकी लगाकर निहारने लगे। थोड़ी देरके बाद ही छायाके पार्श्व भागका दर्शन हुआ। अबकी उस चित्रमें एक विशेषता दिखलायी पड़ी। जान पड़ता था, वह बिम्ब किसीसे बातें कर रहा था। इतने-

में प्रतिबिम्ब मुसकरा कर सीधा हो गया। अहा! उस मधुर और मन्द मुसकानमें कैसा जादू भरा था! जो ज्ञानदत्त कभी किसी परायी स्त्रीकी ओर देखतेतक न थे, अचानक किसी स्त्रीपर या स्त्री-चित्रपर दृष्टि पड़ते ही मुँह फेर लेते थे, वही आज इस प्रतिबिम्बपर मंत्रमुग्ध हो गये। ऐसा क्यों हुआ, कहना कठिन है; शायद स्वयं ज्ञानदत्तके लिए भी इसका उत्तर देना असम्भव है। हाँ, यह अवश्य है कि उनमें ज़रा भी दुर्वासनाका अंश नहीं घुसा था। उनकी उत्सुकताके झुकावमें दुर्वासना छूतक नहीं गयी थी।

यदि यह कहा जाय कि ऐसा अपूर्व सौन्दर्य ज्ञानदत्तने कभी नहीं देखा था, तो यह अनुचित होगा और रमाका अपमान होगा। रमा और इस प्रतिबिम्बमें किसकी सुन्दरता अधिक है, इसका निर्णय करना साधारण काम नहीं है। हाँ, वेष-भूषासे अवश्य ही प्रतिबिम्बकी सुन्दरता बढ़ी हुई मानी जा सकती है। किन्तु ज्ञानदत्तमें तो उसके अंग-प्रत्यंगको अलग-अलग देखनेका ज्ञान ही नहीं रह गया, उनकी आँखें तो केवल उस यौवन-पूर्ण मुखकी कोमलता-मंडित आभामें ही अटक गयीं। उसकी धनुषाकार भ्रू-भंगियोंके मृदुल हिल्लोल, स्वाभाविक सरलता, विकसित कपोल-लालिमाको देखकर यही अनुमान किया जा सकता है कि यह कोई देवबाला है।

प्रतीक्षा करते घंटों बीत गये, अन्धेरा हो गया, किन्तु फिर वह मुख दिखलायी न पड़ा। हवाके झोंकेसे हिलती हुई मेचक

प्रणय

रंगकी कामदार रेशमी साड़ी और सब्ज आस्तीन तथा उस गौर-वदनाकी किंचित खुली हुई ग्रीवापर भी यदि ज्ञानदत्तको दृष्टि गयी होती तो शायद उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती। नहीं, नहीं, तब तो उनकी व्याकुलता और भी बढ़ जाती। लाचार होकर वह बरामदेमें आराम कुर्सीपर बैठ गये। गौरीबाबू अपने घरपर बैठकर प्रतीक्षा करते होंगे, इसकी उन्हें बिलकुल सुध न रही।

थोड़ी ही देरके बाद गौरी बाबू आ गये। उन्हें देखते ही ज्ञानदत्त महान अपराधीकी भाँति काँप उठे। बोले,—क्षमा करना, एक काममें फँस जानेके कारण नहीं आ सका।

गौरी बाबूने पूछा—अब निश्चिन्त हो गये या नहीं?

ज्ञान—हाँ, अब तो मैं आनेके लिए ही तैयार था।

यह कहकर उठ खड़े हुए। ईडन-गार्डन पहुँचकर दोनों मित्र टहलने लगे। इतनेमें काशीप्रसाद खंडेलवाल, बज्रधर शर्म्मा, जुहारमल मारवाड़ी और गांगुली बाबू भी आ गये। प्रेम-सम्मिलनके बाद सबलोग हरी घासको कोमल और शीतल फर्शपर बैठ गये। गौरी बाबूने काशी बाबूकी ओर मुख करके पूछा,—आपकी नयी स्कीम अभी तैयार हुई या नहीं काशी बाबू?

ज्ञानदत्तने उत्सुकताके साथ पूछा,—कौनसी स्कीम?

काशी बाबूने कहा,—आपके पास तो पत्रमें प्रकाशनार्थ भेजी ही जायगी, घबराते क्यों हैं!

ब्रजधर शर्म्माने कहा,—फिर भी सुना जाइये। शायद् पं० ज्ञानदत्तजी उसपर कुछ नये विचार प्रकट करें।

काशी बाबूने कहा,—मेरा विचार ग्राम्य संगठन करनेका है। अभीतक तो नेतालोग शहरोंमें ही आन्दोलन करनेमें लगे थे, पर कुछ दिनोंसे उनलोगोंका झुकाव गाँवोंकी ओर भी हुआ है। मेरी समझसे नेताओंकी स्कीम उतनी लाभदायक नहीं है, जितनी होनी चाहिए। मैं यह चाहता हूँ कि ग्रामीणोंमें राजनीतिक ज्ञानकी वृद्धि भी होती जाय और साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधरती जाय। बस, इसीके लिए मैं उद्योग कर रहा हूँ। बनारस जिलेमें चिदापुर नामका एक गाँव है; वहाँ पं० मनसारामजी रहते हैं। वह धनाढ्य, विद्वान्, देशभक्त तथा प्रजापालक जमींदार हैं। मैं उनसे मिला भी था। वहींसे कार्यारम्भ करनेका इरादा है। वहाँके रहनेवाले पाँच योग्य और ईमानदार आदमियोंकी एक सभा कायम की जायगी। इससे पहले रुपयेकी आवश्यकता पड़ी, इसलिए यह विचार किया गया है कि उस गाँवमें कुल ग्यारह सौ पेड़ हैं, जिनमें आठ सौ ऐसे हैं जो पुराने हो गये हैं,—फल तो फलते नहीं और कुछ ही दिनोंमें सूख जायँगे। अतः वे आठ सौ पेड़ बेच डाले जायँगे। उनमें कुछ पेड़ तो ऐसे हैं जो सौ रुपयेसे भी अधिक दाममें बिकेंगे और कुछ ऐसे भी हैं जो तीस ही पैंतीस रुपयेमें बिक सकेंगे। इसलिए अटकल लगाया गया है कि आठ सौ पेड़ोंसे कमसे-कम पचास

हज़ार रुपये मजेमें वसूल हो जायँगे। वस उन्हीं रुपयोंसे कार्यारम्भ किया जायगा।

ज्ञानदत्तने पूछा,—अच्छा जो पेड़ काटे जायँगे, उनकी जगह पर नये पेड़ लगाये जायँगे या नहीं? यदि लगाये जायँगे, तो उन्हें कौन लगावेगा,—सभा, या पुराने पेड़का मालिक?

काशी—पुराने पेड़ोंसे कहीं अधिक नये पेड़ लगाये जायँगे। पर अभी यह निश्चय नहीं हुआ है कि वह कार्य किसके जिम्मे रहेगा और किस प्रकार। इस विषयमें पं० सदायतनसे राय लेकर स्थिर करूँगा।

गौरी बाबूको यह नाम कुछ परिचितसा जँचा। पूछा,—सदायतनजी कौन हैं? (ज्ञानदत्तकी ओर देखकर) क्या आपके ससुर तो नहीं?

ज्ञानदत्तने कहा,—मालूम होता है, वही हैं।

काशी बाबूने चकित होकर पूछा,—अच्छा, क्या पंडितजी आपके ससुर हैं?

ज्ञानदत्तने कहा—जी हाँ।

काशी बाबूने हर्षित होकर कहा—यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अबकी बार मैं उनसे चर्चा करूँगा।

ज्ञानदत्तने कहा—मेरी रायमें वृक्षोंके लगानेका भार किसानोंपर ही छोड़ना उत्तम होगा; क्योंकि सभाकी ओरसे लगानेमें सम्भव

प्रणय

है कोई किसान यह समझे कि अमुक आदमीके पेड़की सम्भाल अधिक की गयी है और मेरे पेड़की कम।

काशी बाबूने जरा सोचकर कहा,—हाँ। आपका यह कहना ठीक है। ऐसा किया जाय कि सभा सब किसानोंको खर्च दे दे और वे अपनी चीज अपने खेतमें लगावें और उपजावें।

"इसमें खर्चकी क्या जरूरत है," कहनेके बाद ज्ञानदत्त और कुछ कहना ही चाहते थे कि तुलारामजी बोल उठे—हाँ और क्या; पेड़ लगानेमें न तो कोई चीज मोल लानेकी जरूरत है और न मजदूरोंकी ही।

गौरी बाबूने कहा,—अच्छा यह तो बतलाया ही नहीं कि इन पचास हजार रुपयोंसे कौन-कौनसे काम किये जायँगे और उनसे किसानोंका क्या लाभ होगा।

काशी बाबूने कहा,—इन रुपयोंसे उद्योग-धन्धोंकी उन्नति की जायगी। किन्तु आजकलकी तरह कोरे उपदेशोंमें एक पैसा भी खर्च नहीं किया जायगा; बल्कि यह किया जायगा कि तरह-तरहके काम खोले जायँगे। जैसे साबुन बनाना, स्याही बनाना, पेंसिल बनाना आदि। ऐसे कामोंसे कई लाभ होंगे। एक तो यह कि कम लागतमें चीजें तैयार होनेके कारण देश-वासियोंको सस्ते दामोंमें सब चीजें मिलेंगी, देशका पैसा देशमें ही रह जायगा और दूसरे यह कि किसानोंको कभी बेकार नहीं रहना पड़ेगा। वे खेतीबारी भी करते जायँगे, साथ ही फाजलू समयमें कुछ पैसे भी कमा

लिया करेंगे। ऐसा करनेसे किसानोंकी आर्थिक स्थिति भी ठीक होती जायगी और वे कुछ ही दिनोंमें तरह-तरहकी चीजें बनाना भी सीख जायँगे। इसके अलावा एक दूकान खोली जायगी, जिसमें प्रायः सभी आवश्यकीय चीजें रहेंगी। किन्तु उसमें अधिक रुपया नहीं फँसाया जायगा। किसानोंको उस दूकानसे केवल वे ही चीजें तत्काल मिल सकेंगी, जो प्रतिदिन काममें आनेवाली हैं; जैसे नमक, तेल, घी, मसाला आदि। ऐसी चीजें भी फौरन मँगा दी जायँगी जिनकी उन्हें उसी समय आवश्यकता रहेगी; जैसे अचानक किसी लड़कीकी विदाईके समय कपड़ा बर्त्तन आदि। सालभरमें एक या दो बार अथवा आवश्यकता पड़नेपर इससे भी अधिक बार समूचे गाँवके लोगोंसे पूछकर सब चीजोंकी लिस्ट बना ली जाया करेगी और वे चीजें थोक मँगाकर उन्हें दी जाया करेंगी। पहनने-ओढ़नेके कपड़े, घर-खर्चके बर्त्तन ब्याहादिकी सामग्री आदि चीजें इसी प्रकार मँगाकर दी जायँगी। ऐसा करनेसे किसानोंको सस्ते दाममें सब चीजें मिलेंगी, नफा भी उनके घरमें रहेगा; और दूकानको यह लाभ होगा कि उसे बिना रुपया फँसाये लाभ हो जाया करेगा। इसी तरहके और भी बहुतसे ऐसे काम किये जायँगे, जिनसे किसानोंकी दशा बहुत जल्द सुधर जायगी। आफिसका प्रायः सब काम लिखने-पढ़ने तथा और जो कुछ वे कर सकेंगे, उन्हींसे लिये जायँगे,—ताकि उनका एक पैसा बाहरी आदमी न ले सके। इस तरहसे बचतकी ओर ध्यान रखा जायगा।

यदि कभी किसी किसानको अचानक रुपयेकी ज़रूरत पड़ जायगी तो संस्था कर्ज़के तौरपर दिया करेगी। जो आदमी निश्चित समयके भीतर रुपया वापस न करेगा, उसका उतना हिस्सा कम कर दिया जायगा और वह उतने ही रुपयेपर नफा पा सकेगा, जितने उसके जमा होंगे। किन्तु यह काम तब प्रारम्भ होगा, जब संस्थाके पास रुपये काफी तादादमें हो जायँगे। इस वर्षतक संस्था रुपया बढ़ानेमें लगी रहेगी, बाद पाँचवें नफेके रुपये किसानोंमें बाँट दिया करेगी। किन्तु पहले इस वर्षोंमें भी तिमाही हिसाबकी जाँच हुआ करेगी।

ज्ञानदने पूछा,—अच्छा यह तो आर्थिक स्थिति सुधारनेका काम हुआ; अब यह बतलाइये कि उनमें शिक्षा-प्रचार किस तरहसे करनेका विचार किया है?

काशी बाबूने कहा,—संस्थाकी एक लाइब्रेरी होगी। उसमें समाचार-पत्र तथा पुस्तकोंका प्रबन्ध रहेगा। हफ्तेमें एक दिन सुन्दर व्याख्यानोंका प्रबन्ध किया जायगा। राजनीति, धर्मनीति, कृषि-उन्नति, वाणिज्य-व्यवसाय, विदेशियोंके कला-कौशल आदि विषयोंको स्पष्ट रीतिसे समझाया जायगा। और भी बातें जो सोची जायँगी, की जायँगी।

गौरी बाबूने कहा,—इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकारके कार्यसे देशकी अच्छी उन्नति हो सकती है। यदि एक गाँवमें यह सुचारु रूपसे चल निकला, तो भारतके कोने-कोनेमें बिना किसीके

प्रचार किये यह काम फैल जायगा। किन्तु है बड़ा कठिन काम। परमात्मा आपको सफलता दे। देखिये काशी बाबू, जल्दीबाजी न करियेगा। पहले खूब सोच-समझ लीजियेगा तब कार्यारम्भ करियेगा। इसमें आप ज्ञानदत्तजीसे भी सहायता ले सकते हैं।

काशी बाबूने कहा,—और मैं कहता किसलिए हूं? असलमें ऐसे ही लोगोंकी तो इस काममें आवश्यकता है।

ज्ञानदत्तने कहा,—मेरे योग्य जो कुछ कार्य होगा, मैं सदा करनेके लिए तैयार हूँ।

गाँगुली बाबू चुप थे। जुहारमलने पूछा,—आप कुछ नहीं बोल रहे हैं।

गाँगुली बाबूने कहा,—आम एइसा मापिक काम नेईं कोरने सकता आम तो जो कुत्ता हाय वोई कोरेगा। ईसा मापिक देशका उद्धार कोभी होने नेईं सोकेगा, ये बात आम बोलता हाय।

सबलोग हँस पड़े। वास्तवमें गाँगुली बाबू अनार्किष्ट पार्टीके थे, उन्हें ऐसे कामोंमें मजा नहीं आता था। बज्रधरने पूछा,—अच्छा क्यों काशी बाबू, स्त्रियोंके उद्धारके लिए भी आपने कुछ सोचा है या नहीं? मेरी समझसे शिक्षा प्रचारके कार्यमें सर्व-प्रथम स्त्री-सुधारकी ही आवश्यकता है।

काशी बाबूने कहा,—पं० ज्ञानदत्तजीने जिस ढंगसे अपने गाँवमें कार्यारम्भ किया है, उसी ढंगसे मेरा भी करनेका विचार है। उससे अच्छा और सुविधा-जनक मार्ग इस समय और कोई नहीं है।

प्रणय

ज्ञानदत्त बातें तो करते जाते थे, किन्तु उनका मन उसी मुखके काल्पनिक चित्रमें लगा हुआ था। उन्होंने एक ठंढी साँस ली। गौरी बाबूने इतना लक्ष्य कर लिया कि इनके दिलमें किसी चीजकी याद आयी है, उसीकी यह आह है। पूछा,—क्यों जी, क्या सोच रहे हो? लम्बी साँस लेनेका क्या कारण है?

ज्ञानदत्तने कहा,—यों ही; कोई खास कारण नहीं है।

गौरी बाबूने काशी बाबूसे पूछा,—अच्छा, यह काम कबसे प्रारम्भ करियेगा?

काशी—सम्भवतः छः महीनेके भीतर ही शुरू कर दूँगा।

जुहारमल—तब तो अभी बहुत दिनकी देर है।

गौरी—ठीक है, काम भी तो बड़ा गहन है न! अच्छी तरह समझ-बूझकर ही प्रारम्भ करना उत्तम है।

काशी बाबूने कहा,—ज़रा आप भी इस विषयमें सोचिये गौरी बाबू। जो कुछ त्रुटि हो, उसे बतलानेकी कृपा कीजिये।

ज्ञानदत्तने कहा,—गौरी बाबूको विलायतकी चिट्ठी-पत्रीसे तो फुरसत मिल ले। हज़रतसे एक्सचेंजके ऊपर एक लेख माँगा, महीनों हो गये, आप लिख ही रहे हैं।

गौरी बाबूने कहा,—क्या करूँ, काम इतना रहता है कि मरने-की भी फुरसत नहीं। यही बहुत समझिये कि घंटा-दो-घंटा

आपलोगोंसे मिलने-भेंटनेके लिए समय मिल जाता है। फिर भी मैं सोचूँगा काशी बाबू।

इसके बाद थोड़ी देरतक टहलकर सबलोग लौट आये।



सोलहवाँ परिच्छेद

कई दिन बीत गये, वह मुख दिखायी न पड़ा। किन्तु ज्ञानदत्त एक मिनटके लिए भी उस मुखको भुला न सके। आफिसमें जाते थे, पत्रका सम्पादन करते थे, मित्रोंसे बातें करते थे, सब कुछ करते थे, पर उस मुखको सामने रखकर। चेष्टा करनेपर भी उन्हें वह मुख न भूला। उसे देखनेकी इच्छा हरवक्त बनी रहती थी।

दस बज चुके थे। भोजनादिसे निवृत्त होकर ज्ञानदत्त आफिस जानेके लिए तैयार खड़े थे। नौकर पान लगा रहा था, इसलिए उसकी इन्तिज़ारीमें वह बरामदेमें आकर टहलने लगे। सड़कके उस फुटपर सामनेके मकानकी ओर ताक रहे थे। दोतल्लेपर उनकी दृष्टि रुक गयी। देखा, एक युवती पर्देकी आड़में खड़ी होकर इन्हींकी ओर ताक रही है। किन्तु इनकी दृष्टि उसपर पड़ते ही वह छिप गयी। ज्ञानदत्त अचम्भेमें आ गये। सोचने लगे,— सम्भवतः यही युवती उस दिन शीशेमें दिखलायी पड़ी थी। सम्भवतः नहीं, अवश्यमेव यही थी।

प्रणय

ज्ञानदत्त [illegible] चले आये [illegible], [illegible] कोमल हृदय पर [illegible]। इतनेमें [illegible] फिर झाँकता हुआ [illegible] दृष्टिगत [illegible]। ज्ञानदत्तने पीछे फिरकर देखा। वह युवती फिर छिप गयी। [illegible] मन-ही-मन [illegible] करने लगे। [illegible] पीछे फिरकर न देखा होता तो [illegible] परन्तु कभी [illegible] नहीं जाता। वह मुख तो आँखोंमें स्पष्ट दिखता था, [illegible] आँखें मूँद कर [illegible] सकते थे, पर उसमें [illegible] होकर [illegible] किया नहीं जा सका। यह क्या [illegible] रूप है, जिस वस्तुको इतने [illegible] और [illegible] दिनोंकी [illegible] पा सके थे, उसे अपनी [illegible] वहीं देखें।

यदि आफिस जानेका समय न होता तो वह दिनभर बैठकर उस मुखका दर्शन मिलनेके लिए प्रार्थना करते, किन्तु खेद है कि वह दफ्तर जाते [illegible] मिनटमें अधिक न रुक सके और पराधीनताके दुःखका कटु अनुभव करते हुए आफिस चले गये।

और दिनोंकी अपेक्षा आज ज्ञानदत्त आफिससे जल्द चले आये। कहीं घूमने-फिरने भी नहीं गये। कभी बरामदेमें और कभी कमरेमें टहलकर समय बिताते रहे। इसी उधेड़बुनमें पड़े रहनेके कारण वह भोजन भी नहीं बना सके। किन्तु वह निष्ठुर मुख दिखलायी न पड़ा। बेचारे मारे संकोचके टकटकी लगाकर कुछ देरतक उस मकानकी ओर देख भी नहीं सकते थे। डरते थे कि

प्रणय

कहीं किसीकी निगाहें मेरी आँखोंको गिरफ्तार न कर लें। इसीसे वह सामनेके मकानपर दृष्टि डालते ही उसे समेट लेते थे। इससे पहले बरामदेमें बैठकर ज्ञानदत्त कभी-कभी घंटों उस मकानकी शोभा और बनावटको बड़े गौरसे देखा करते थे, किन्तु अब उधर एक सेकेंडसे अधिक ताकना उनके लिए असम्भव हो गया।

सामनेका मकान राजा मूर्तिनारायण सिंह के० सी० आई० ई० का था। यह प्रकांड-भवन उनके हाथका बनवाया हुआ था। कलकत्ता शहरमें इसकी सानीका दूसरा मकान खोजनेसे भी मिलना कठिन है। राजा साहिब संयुक्तप्रान्तके रहनेवाले क्षत्रिय हैं। इधर लगभग सौ वर्षसे वह कलकत्तामें ही रहते हैं, इसलिए कलकत्ता-निवासी ही कहे जा सकते हैं। गदरके समय राजा साहिबके पितामह आये थे। तबसे उनके वंशज यहीं रहने लगे। अब तो राजा साहिबके घरका व्याहादि कार्य भी यहींसे होता है,—देशसे कोई नाता नहीं रह गया है। जिस समयका प्रसंग छिड़ा है, उस समय राजा साहिब, उनकी धर्मपत्नी, दो लड़के तथा एक लड़की कुल पाँच प्राणी उनके घरमें थे। दास-दासियोंकी संख्या न थी। सम्पत्तिका वारापार नहीं। दोनों लड़के पढ़ते थे और ज्येष्ठा पुत्री राजकुमारी जिसकी अवस्था उक्त घटनाके समय सत्रह वर्षकी थी, मैट्रिक पास करके घरपर ही संस्कृतका अध्ययन करती थी। उसके पढ़ने-लिखनेका कमरा दोतल्लेपर सड़ककी ओर था। कमरेकी सजावट सराहनीय थी।

उस दिन राजो अपने कमरेमें खड़ी थी। अचानक उसकी

नजर ज्ञानदत्तपर पड़ी। न-जाने क्यों, ज्ञानदत्तकी सूरतने उसके हृदय-मन्दिरमें अड्डा जमा लिया। वह अधिक देरतक ज्ञानदत्तको देख भी न सकी थी कि पीछेसे किसी कामके लिए नौकरानीने पुकारा। रानी पीछे फिरकर उससे बातें करने लगी। उस समय दरवाजेका पर्दा पड़ा हुआ था। रानी विशाल खम्भेकी आड़में थी। दरवाजेके ठीक सामने एक बड़ा सुनहरे फ्रेमका दर्पण टँगा हुआ था। जिस समय वह आड़में खड़ी बातें कर रही थी, उस समय हठात् किसी बातपर वह जरा खिलकर मुसकरा उठी थी। उसकी छाया आईनेपर पड़ रही थी, अतः पर्दा पड़ा रहनेके कारण आईनेकी वह छाया ज्ञानदत्तके कमरेमें टँगे हुए आईनेपर जा पड़ी। यही कारण है कि इधर-उधर बहुत देरतक निहारनेपर भी ज्ञानदत्त उसे नहीं देख सके थे और न यही समझ सके थे कि यह छाया कहाँसे आकर इस प्रकार पड़ रही है। क्योंकि रानी खम्भेकी आड़में थी।

बस, यही दोनोंके एक दूसरेकी ओर आकर्षित होनेका प्रथम दिन था। इसके बाद अवसर पाकर रानी पर्देकी आड़से और कभी-कभी पर्देको हटाकर ज्ञानदत्तको देख-देखकर अपनी तृषित आँखोंकी दर्शन-पिपासा बुझाने लगी। जो रानी पहले कभी पर्देके पास खड़ीतक नहीं होती थी, जो इस तरहसे खड़ी होनेमें अपने पिताके गौरवका नाश समझती थी, वही अब यहाँ खड़ी रहनेके लिए अवसर ढूँढ़ती फिरने लगी। यद्यपि वह सब कुछ समझती थी, तथापि ज्ञानदत्तको देखे बिना उसे चैन ही न पड़ता।

प्रणय

ज्ञानदत्त तो उसे बहुत कम देख पाते थे, पर वह दिनभरमें कई बार ज्ञानदत्तको अच्छी तरह देख लिया करती थी। धीरे-धीरे दोनों ओरकी दर्शन-तृष्णाकी यौवनावस्था आ गयी। दोनों एक दूसरेको देखनेके लिए लालायित रहने लगे। पहले तो दोनों ही एक दूसरेसे डरते थे कि कहीं यह ताकना बेमेल न हो; किन्तु कुछ ही दिनोंमें दोनोंको एक दूसरेकी भाव-अनुकूलता भली भाँति मालूम हो गयी। फिर भी दोनोंमें संकोचकी मात्रा इतनी अधिक थी कि निगाहें निगोड़ी मिलती ही न थीं। कभी ज्ञानदत्त उधर देखते रहते और उसकी नजर उनपर आ पड़ती तो वह तुरन्त ही सहमकर दूसरी ओर ताकने लगते और कभी राजो इनकी ओर ताकती रहती और हठात् इनकी दृष्टि उधर जा पड़ती तो उसकी भी यही दशा होती थी,— बल्कि इनसे भी बढ़कर; क्योंकि यह तो मुख दिखलाते रहते थे, केवल आँखें ही फेर लेते थे, किन्तु वह अपना मुख भी छिपा लेती थी। राजो सोचती थी,—"अब उनकी ओर कभी न ताकूँगी, क्योंकि उन्होंने तो देख लिया।" किन्तु थोड़ी ही देरमें उसकी इच्छा फिर उमड़ पड़ती, उसे अपनी चोरवृत्ति-कुशलतापर यह सोचकर विश्वास हो जाता कि, "अबकी बार ऐसे यत्नसे देखूँगी कि वह किसी प्रकार भी मुझे न देख सकेंगे," अतः फिर वह उसी काममें प्रवृत्त होती और कभी तो अपने कौशलसे बच जाती, किन्तु बहुधा पकड़ी जाती थी। ज्ञानदत्तकी भी ठीक ऐसी ही दशा थी।

प्यारी राजो! तुम्हारा यह समझना तुम्हारी कमसमझीका

प्रणय

सोचता है कि 'मेरी आँखें बुद्धिमानीसे अपना काम कर लेंगी और पकड़ी न जायँगी।' याद रक्खो दुश्मनकी आँखें सदा तुम्हारी आँखोंको पकड़नेके लिए तैयार रहती हैं। तुम चाहे जो समझो, पर उन आँखोंका इतना कहना जरूर है कि तुम्हारी आँखें कभी भी निकलकर भाग नहीं सकतीं। तुम्हारा पीछा करनेवाला साधारण मनुष्य नहीं! जब तुम पंखेकी आड़से देखा करती हो और अपने मुख कमलके परिमलको समेटे रहती और उस युवकके छवि-मकरन्दका पान करती रहती हो, तब वह युवक पर्देके भीतर तुम्हें स्वयं समझकर अपने अतृप्त हृदयको व्यर्थ लुभाया करता है। यह न समझो कि वह बिना आशाके ही तुम्हें कुछ ध्यान कर रहा है, या उसकी अभिलाषाओंमें तुम कोई भाव पढ़ रही हो।

इस आख्यायिकामें सब बातोंमें दोनों ओरकी समानता थी। उधर यदि राजोके हृदयमें किसी प्रकारकी वासना नहीं है तो इधर आनन्दका हृदय भी स्फटिक मणिके समान बिल्कुल स्वच्छ है। राजो कौशल्य प्रान्तकी राजकन्या है और राज्यके सुख भोगनेवाली है तथा भविष्यमें राजरानी होनेवाली है, तो इधर आनन्द भी देश-सम्मानित पत्रके सम्पादक हैं, साहित्यानन्दमें राज्य सुखको तुच्छ समझनेवाले हैं तथा भविष्यमें अमर होनेवाले हैं। राजो अनुपम सुन्दरी है तो आनन्द भी पुरुषोंमें असाधारण सौन्दर्य धारण करनेवाले हैं। राजो सप्तदश-वर्षीया गौर वदना है, आनन्द चतुर्विंशतवर्षीय युवक हैं। राजो सम्पत्ति और ब्रिटिश-सम्मान गर्विता

कन्या है, ज्ञानदत्त विद्या-गर्वित हैं। सब-कुछ समान है, केवल एक बात राजोमें बढ़कर है, सो भी सार्थक है। यदि राजोमें एक भी विशेषता न होती, तो नारी-महिमाका मूल्य ही क्या रह जाता? सत्य है! नारी अनन्तकी महिमा है, विश्वकी गरिमा और सृष्टिकी निपुणता है! रमणी विलासकी विलास, साधककी साधना, योगीका ध्यान और तपस्याकी आत्मा है। नारी, माधुर्यमें अपराजिता, स्नेहमें मन्दाकिनी, पवित्रतामें गोमुखी, दया-दाक्षिण्यमें भागीरथी और प्रेममें फल्गु है। नारी ही सहिष्णुता और पवित्रतामें सीता, पातिव्रतमें सावित्री तेजस्विनतामें द्रौपदी और उच्चतामें—घोषा-सूर्या-यमी-गोधा-श्रद्धा-माद्री-वपुना-धारिणी-गार्गी-मैत्रेयी है। नारी गृह-कार्यमें गृहिणी, सन्तान-पालनमें जननी है। परमात्माने नारीकी उच्चता और महत्तापर ही संसारको स्थिर रखा है। भला इस जाति-धर्म या उच्चताको राजोके समान सर्व-गुण-सम्पन्ना भाग्यशालिनी कन्या कैसे छोड़ सकती है? अच्छा तो वह बात कौनसी है, जो राजोमें नारी-महिमाकी वस्तु है और ज्ञानदत्तसे अधिक है? यह बात आगे चलकर पाठकोंको स्वयं ही मालूम हो जायगी। जो लोग उपन्यास समाप्त करनेपर भी वह बात न जान सकें, उनका उपन्यास पढ़ना ही व्यर्थ है, उन्हें बतलानेसे कोई लाभ भी नहीं है।

दोनोंके इस आकर्षणका उद्देश्य क्या है, यह समझनेकी न तो दोमेंसे किसीने चेष्टा ही की, और न उसका समझना साध्य था! हाँ, यह अवश्य है कि दोनोंके हृदयोंमें किसी प्रकारका स्वार्थ

नहीं है। और न किसी प्रकारकी बुरी आकांक्षा ही है। यदि कुछ आकांक्षा है भी तो केवल निष्कलंक दृष्टिसे प्रति-सप्ताह एकान्त दर्शन करते रहनेकी। किन्तु दर्शन-विनिमय किसीको स्वीकार नहीं। ज्ञानदत्त स्वयं उसका दर्शन करना चाहते हैं, पर साथ ही यह भी चाहते हैं कि दर्शन करना वह न देख सके। उधर राजो होड़ लगाये बैठी है; ज्ञानदत्तकी हरकत देखकर ही मानो वह और आगे बढ़ गयी है। इसीसे स्वयं तो देखना चाहती है, किन्तु अपनेको बिलकुल ही देखने देना नहीं चाहती। वह तो यह चाहती है कि तुम मुझे देखो ही मत, केवल मैं तुम्हें देखा करूँगी।

छोटे-छोटेमें अड़ना बढ़ना कैसा? होड़में शक्ति रहते झुकाव कैसा? जब वह ऐसा चाहती है तो फिर भला ज्ञानदत्त काहेको पिछड़ने लगे? उन्होंने 'देखो ही मत' यह शर्त उड़ा दी। वह यह चाहते हैं कि,—तुम मुझे देखो या न देखो, मैं तुम्हें अवश्य देखूँगा। हाँ, इतनी कृपा करो कि मेरे देखनेको देखनेकी चेष्टा न करो, नहीं तो मुझे दुःख होगा।

ज्ञानदत्त और राजोके बीच किसी तरहका संकेत नहीं होता था। दोनों हृदयोंमें केवल दर्शनके सिवा और किसी तरहकी आकांक्षा भी नहीं थी। यदि होती तो उसकी पूर्तिके लिए तीसरे कानमें बात चली जाती और फिर बहुतसे लोगोंमें यह रहस्य मालूम हो जाता। किसीको इस बातका पता ही

लगना भी दोनोंके हृदयकी शुद्धताका पुष्ट प्रमाण है। वास्तवमें प्रेम स्वर्गीय पदार्थ है। प्रेम निस्वार्थ है, आकांक्षा-हीन है, सीमा-रहित है। किसी कारण-विशेषसे या किसी वस्तुके लोभसे उत्पन्न होनेवाला प्रेम, शुद्ध प्रेम नहीं। मलिन हृदयमें तो यह स्वर्गीय प्रेम पैर ही नहीं रखता। उसके निवासके लिए तो बिलकुल एकान्त, शान्त और पवित्र स्थान चाहिए। राजो और ज्ञानदत्तका प्रेम वही अलभ्य प्रेम है। दृष्टिपात होते ही दोनोंने एक दूसरेको हृदय-स्थित किया। दोनोंके भीतर वह प्रेम प्रातःकालीन सूर्यके तापकी भाँति छाया-प्रति-छाया बढ़ता ही गया, अपवित्रता छूतक नहीं गयी।

परमात्माकी लीला अपार है। वह सबको एक-न-एक अवलम्ब देते हैं। घरसे आनेके बाद ज्ञानदत्त हरवक्त चिन्तित रहते थे। रमाके कमरेकी वही रातवाली बात सोचा करते थे। यदि वही दशा रहती तो ज्ञानदत्तकी दशा बड़ी ही शोचनीय हो जाती। किन्तु उन्हें राजोका आधार मिल गया। वृत्तिका रुख पलट गया। अब तो रमाको वह भूलसे गये। नित्यकी भाँति आज भी ज्ञानदत्त बरामदेमें बैठे आनन्द लूट रहे थे, इतनेमें नौकरने एक लिफाफा लाकर दिया। उसे देखते ही उनका ध्यान भंग हुआ। लिफाफेपर लिखे हुए अक्षर इनके किसी परिचितके थे। उन्होंने अन्यमनस्क किन्तु उद्विग्न हृदयसे उसे खोला, और उसके भीतरसे सुन्दर अक्षरोंमें लिखा हुआ पत्र निकालकर पढ़ना शुरू किया:—

— [illegible] —

प्राणाधार,

जानेके बाद एकबार भी इस अभागिनीको याद नहीं किया, यह क्यों? यदि मुझसे कोई अपराध हो गया हो तो तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हारे सिवा और किससे मैं क्षमा प्रार्थिनी होऊँगी? बिना अपराध बतलाये ही तुम्हारे प्यारे हाथोंसे यह दंड मिलना, मेरे लिए दुःख मानेकी बात है। तुम्हीं सोचो कि मैं कैसे धैर्य करूँ? जी उचटनेपर समाचारपत्रों और पुस्तकोंका सहारा लेनेका विचार करती हूँ, पर उस समय तो व्याकुलता और भी बढ़ जाती है।

कहते हैं, सत्य सदा सत्य रहता है। पर यहाँ तो मैं उसके विपरीत ही देख रही हूँ। किन्तु इसकी मुझे विशेष चिन्ता नहीं है। क्योंकि मुझे तुम्हारी बातोंपर पूर्ण विश्वास है। चित्रपुर आकर मैं दो पत्र तुम्हारे पास भेज चुकी हूँ, किन्तु उत्तरसे वंचित रही। भावजें आदरसे हँसती हैं, यह सहा नहीं जाता। यदि मुझे रुलानेमें ही तुम्हें कुछ आनन्द मिलता हो, तो स्पष्ट सूचित करो मैं उसमें भी प्रसन्न हूँ।

जी चाहता है कि यह पत्र कभी समाप्त ही न होने दूँ। फिर सोचती हूँ, तुम्हें पढ़नेमें कष्ट होगा। आजकल यहाँपर बाबूजी कोई नया काम करनेकी तैयारी कर रहे हैं। रामपुरकी भाँति यहाँ भी कथाकी योजना की जा रही है। बाबूजी कथा कहनेका भार मेरे सिर लादना चाहते हैं। पर मुझे तो लज्जा आती है। तुम्हारी क्या राय

प्रणय

है ? समाचार-पत्रके इतने बड़े पन्ने प्रति दिन भरते हो, चार अक्षर मेरे लिए लिखनेकी दया न करोगे ? बस, और न लिखूँगी।

चरण-सेविका—

रमा

पत्र समाप्त करके थोड़ी देरतक कुछ सोचते रहे। बाद पत्रोत्तर देनेका विचार स्थिर करके उठे। कमरेमें जाकर बैठना ही चाहते थे कि गौरी बाबूका भेजा हुआ नौकर आ पहुँचा। उसने कहा,—बाबू-जीने कहा है कि काशी बाबूके साथ आपको भी बिदापुर चलना होगा। दस बजे आप दफ्तरमें रहियेगा, बाबू आपसे भेंट करके तब गोदामपर जायँगे।

'अच्छा' कहकर ज्ञानदत्तने घड़ीकी ओर देखा। साढ़े नौ बज चुके थे। पत्रोत्तर न दे सके और तुरन्त ही आफिस चले गये। वहाँ गौरी बाबू तथा काशी बाबू आकर बैठे हुए थे। बातचीत करते समय काशी बाबूने कहा,—बिदापुरमें आपका एक व्याख्यान भी होगा।

ज्ञानदत्तने कहा,—खैर वह तो पीछे देखा जायगा, पहले यह देखना है कि यहाँका काम कैसे चलेगा। अभी सहायकोंके भरोसे हमने कभी पत्रको नहीं छोड़ा। डर लगता है कि कहीं अंटसंट न लिख मारें।

गौरी बाबूने कहा,—ऐसा ही होगा तो दो दिनके लिए अग्रलेख लिखकर छोड़ जाना, और एक-दो लेख वहाँसे भेज देना। बाकी समाचार ये लोग भर लेंगे।

प्रणय

ज्ञानदत्तने सहायक सम्पादकसे पूछा,—क्यों साहब प्रेस करनेसे ठीक होगा ?

सहायक—जी हाँ, कोई आपत्ति नहीं। आप जा सकते हैं।

इसके बाद गौरी बाबू और काशी बाबू उठकर चले गये। ज्ञानदत्त भी अपने काममें लग गये, रमाको पत्रोत्तर नहीं दिया जा सका।

—::*::—

सत्रहवाँ परिच्छेद

कार्यमें सफलता होनेके कारण प्रभा फूली नहीं समाती थी। कुशल हुई कि ज्ञानदत्तके जानेके बाद ही रमा अपने पिताके घर चली गयी। यदि कुछ दिनोंतक वह और रह गयी होती तो जान पड़ता है कि प्रभा बोली बोलते-बोलते किसी दिन रमासे आत्महत्या कराके ही छोड़ती।

मादकता और मोहकताकी खान, ईर्ष्या-द्वेषकी साक्षात् मूर्ति मायाविनी प्रभा उस दिन जगदीशका झूठा बहाना करके कहाँ गयी थी, यह पाठकोंको स्मरण होगा। रमासे खूब हँस-हँसकर बातें की थीं, इसे भी पाठकगण न भूले होंगे। बात यह है कि उसी दिन उसके समुचे कामोंकी कृतकार्यता थी। यदि वह काशीमें चली

जाती अथवा रमाको प्रसन्न न रखती तो सब काम चौपट हो जाता। बिदापुरके रहनेवाले दिवाकरको प्रभाने बुलाया था और वह आज ही आनेवाला था। यह दिवाकर रमाका दूरका भाई लगता था। अवस्था रमासे साल-दो-साल अधिक थी। चेहरेसे आचरण-भ्रष्टता टपकी पड़ती थी। यह कभी-कभी रमाके यहाँ आया करता था, यद्यपि उसका आना रमाको अच्छा नहीं लगता था। प्रभा अपना काम साधनेके लिए दिवाकरसे बातचीत करके आत्मीयत्व-सम्बन्धमें नथ गयी थी, और बातें करके उसके दिलका भाव जानकर बहुत-कुछ गुप्त बातें भी करने लग गयी थी। दोनोंमें प्रेम-पूर्ण पत्र-व्यवहार भी होने लग गया था। प्रभाके कपट-व्यवहार-को दिवाकर सच्चा स्नेह समझ एक शिकारका लोभ किये बैठा था, इसीसे वह उसका बेदामका गुलाम भी हो गया था।

प्रभाने दिवाकरको पत्र लिखा था कि तुम यह पत्र देखते चले आओ। यहाँ रमा तुम्हारे लिए हरवक्त रोया करती है, पर लाजकी बात किससे कहे? बड़ी कठिनाईसे उसके दिलकी बात जानकर मैं यह पत्र लिख रही हूँ। कब आओगे, यह लिखकर इसी आदमीके हाथ भेज देना। मेरा यह पत्र फाड़कर फेंक देना और रमासे इसकी चर्चा मत करना।

छैलचिकनिया दिवाकर यह पत्र पाकर विह्वल हो उठा और पत्रका जबाब लिखकर भेज दिया। उस पत्रमें कथावाले

दिन ही दिवाकरने आनेको लिखा था, इसीसे झूठा बहाना करके कथामें प्रभा नहीं गयी ।

दिवाकर निश्चित समयपर आ गया । उस समय दरवाजेपर कोई नहीं था । प्रभा खिड़कीपर बैठी राह देख रही थी । दिवाकरको देखते ही बोली,—सीधे भीतर चले आओ ।

आवाज सुनकर दिवाकर चकपका गया, किन्तु ऊपर दृष्टि पड़ते ही प्रमुदित होकर भीतर चला गया । प्रभाने बड़े आदर-भावसे उसे जलपान कराया और कहा,—बड़े मौकेमें आये ।

दिवाकरने पूछा,—कैसा ?

प्रभा—वह तो अपने-आप ही मालूम हो जायगी । राम राम, बेचारी रोते-रोते आधी हो गयी ।

दिवाकरने उत्सुक होकर पूछा,—उसने तुमसे क्या कहा भाभी ? मुझे तो इसकी जरा भी आशा न थी ।

नराधम दिवाकरको 'भाभी' कहनेमें तनिक भी हया न आयी । खैर, यह कहनेकी जरूरत नहीं कि प्रभाके साथ उसका कैसा सम्बन्ध था । यहाँ तो यह देखना है कि रमाके प्रति उसका क्या भाव था । वह बहुत दिनोंसे इस बातका अभिलाषी था, पर रमाकी सच्चरित्रता और मित-व्यवहारसे कभी अपना आन्तरिक भाव प्रकट करनेका साहस नहीं कर सका था । यदि प्रभा इतनी नीचता न करती तो सम्भवतः आमरण वह रमाके स्वाभाविक आतंकके नीचे दबा पड़ा रहता और यहाँतक नौबत ही न आती । प्रभाने

हँसकर कहा,—सच बतलाओ दिवाकर, क्या तुम यह नहीं जानते थे कि वह तुम्हारे लिए इतना दुखी रहा करती है?

दिवाकरने कहा,—जानता क्यों नहीं था।

अब तो प्रभाको और भी विश्वास हो गया। बोली,—अभी सबलोग कथामें गये हैं, वह भी वहीं गयी है। तुम ऊपर चलो वहीं एक कोठरीमें रहो। अवसर आनेपर मैं भेंट करा दूँगी।

दिवाकरका कलेजा काँप उठा। प्रभा कोई छल तो नहीं कर रही है? जब उसने बुलाया ही है तो इतने छिपावकी क्या जरूरत? बाहर बैठनेमें क्या हर्ज है? कहा,—क्या ऊपर छिपकर बैठना होगा?

प्रभा ताड़ गयी। बुद्धिमानीसे बोली,—डरो मत दिवाकर, मैं तुम्हारी दुश्मन नहीं हूँ। इतने दिन आते हो गये, तुम अभी-तक मुझे पहचान नहीं सके? क्या करूँ, तुम्हारे स्नेहके कारण मैं यह सब कर रही हूँ। मैं तो तुम्हें अपना परम स्नेही समझती हूँ। रमा बेचारी साससे डरती है, इसीसे ऐसा करना पड़ रहा है। चलो ऊपर। मैं तैयार हूँ, तुम्हें किसका भय है? आओ।

यह कहकर प्रभा आगे-आगे चल पड़ी। दिवाकर डरता हुआ उसके पीछे हो लिया। ऊपर एक कोठरीमें बैठाकर उसका दरवाजा बाहरसे बन्द करके प्रभा नीचे चली आयी।

दिवाकर बेतरह फँस गया। जिस प्रकार इच्छाके न रहते हुए भी किसी समय कोई काम मनुष्य हठात् कर बैठता है और

पीछे पछताता है, ठीक वही दशा दिवाकरकी हुई। यद्यपि वह इस तरह छिपकर बैठना नहीं चाहता था, तथापि जाकर बैठ गया। अब निकल भागनेका भी कोई मार्ग नहीं।

कथासे वापस आनेपर सोनेके समय प्रभाने रमाको अपने कमरेमें सुला लिया। रमाको इसमें कोई आपत्ति नहीं हुई। यदि ज्ञानदत्त होते तो वह ऐसा कदापि न करती। किन्तु वह तो इसपर विश्वास किये बैठी थी कि वह इलाकेपर चले गये हैं।

इधर ज्ञानदत्तको एकान्तमें बुलाकर प्रभाने पहले ही पटा लिया था। कहा,—एक बात कहना चाहती हूँ, मानोगे बबुआ?

ज्ञानदत्तने कहा,—हाँ हाँ, मानूँगा क्यों नहीं? कहो।

प्रभाने मुँह लटकाकर उसी भावसे कहा,—क्या कहूँ, कहनेमें लज्जा मालूम होती है। पर बिना कहे भी भला नहीं देखती हूँ। जब सब काम ही चौपट हो जायगा, तब लज्जा करके ही क्या होगा?

ज्ञानदत्तने स्वाभाविक भावसे पूछा,—ऐसी कौनसी बात है, सुनूँ तो जरा।

प्रभाने एक नकली पत्र दिया और कहा,—इसे पढ़ लो तो सारा हाल बताऊँ। कभी-कभी बनावटमें भी असलियतका भ्रम हो जाता है।

ज्ञानदत्त पत्र लेकर पढ़ने लगे, और पिशाचिनी एवं मायाविनी

प्रणय

प्रभा उसी जगह नीचा सिर करके उदास खड़ी रही। यह पत्र रमाका लिखा हुआ था:—

प्यारे दिवाकर,

पत्र देखते आओ, तुम्हारे देखे बिना मेरा हृदय न-जानें कैसा हो रहा है। मेरी कसम है, आओ अवश्य। जवाब दो कि कब आवोगे।

दर्शनाभिलाषिनी—

रमा

ज्ञानदत्तने पत्र पढ़कर कहा,—यह पत्र तुम्हें कैसे मिला?

प्रभाने यह नहीं सोचा था कि पत्र दिखलानेपर कुछ प्रश्नोंके उत्तर भी देने पड़ेंगे; नहीं तो वह पहलेहीसे तैयार रहती। पहले तो वह हिचकिचा गयी, किन्तु तुरन्त ही सँभलकर बोली,—इसे दिवाकरकी स्त्रीने भेजा है। जान पड़ता है कि दिवाकरने अपने कोट या कमीजकी जेबमें रख दिया था, किसी तरह उसके हाथ लग गया।

वह पत्र रमाके नामपर ही लिखा था; किन्तु रमाके हाथका लिखा हुआ नहीं है, यह बात अक्षर देखकर ज्ञानदत्त समझ गये। अतः स्वाभाविक रीतिसे बोले,—अच्छी बात है, मैं इसपर विचार करूँगा और देखूँगा कि क्या बात है।

यह कहकर ज्ञानदत्त पत्रको जेबमें रखनेका उपक्रम करने लगे। इतनेमें प्रभाने एक दूसरा पत्र देते हुए कहा,—ठहरो, जरा इसे भी पढ़ लो। यह बात इस तरहसे उपेक्षा करनेके योग्य नहीं है।

ज्ञानदत्त ठिठक गये। दूसरे पत्रको हाथमें लेकर खोलते हुए बोले,—यह पत्र किसका है ?

प्रभाने कहा,—पढ़ लो, आप ही मालूम हो जायगा।

ज्ञानदत्तने पढ़ लिया। यह पत्र दिवाकरका था—जो कि उसने रूपरके पत्रके उत्तरमें लिखा था और जिसमें उसने आनेके लिए भी लिखा था। ज्ञानदत्तने पूछा,—और यह पत्र तुम्हें कैसे मिला ?

प्रभाने कहा,—यह पत्र उसकी चारपाईपर पड़ा हुआ था।

ज्ञानदत्तको पूरा विश्वास नहीं हुआ। पढ़ी-लिखी रमा ऐसे गुप्त पत्रको इतनी लापरवाहीसे रक्खेगी, यह बिलकुल असम्भव है। कहा,—अच्छा मैं पता लगाऊँगा।

प्रभाने कहा—पता किस बातका लगाओगे ?

ज्ञान०—इसी बातका।

प्रभा—इसका पता आज ही लग जायगा।

ज्ञानदत्तने चकित होकर पूछा,—सो कैसे ?

प्रभाने कहा,—मुझे पता लगा है कि दिवाकर आज ही रातको आनेवाला है। इसलिए आज तुम इलाकेपर जानेका बहाना करके द्वारसे कहीं हट जाओ।

ज्ञानदत्तने कहा,—हटनेकी क्या जरूरत है ? आखिरकार भेंट करनेके लिए उसने तो कुछ सोचा ही होगा। मैं लड़का ही पकड़ूँ तो क्या बुरा है।



प्रणय

प्रभाने कहा,—मेरी बात मानो, तुम्हारे हटनेका बहाना करनेमें ही अच्छा है। नहीं तो सब काम गड़बड़ हो जायगा।

ज्ञानदत्त कुछ सोचकर बोले,—अच्छा, ऐसा ही करूँगा।

यह कहकर वह बाहर चले आये। सोचने लगे,—भाभीको इस बातका कैसे पता लगा कि, दिवाकर आज ही आवेगा? उसके पत्रमें आनेके लिए तो कोई निश्चित समय नहीं लिखा है। अवश्य ही इसमें कुछ-न-कुछ भाभीका भी हाथ है।

इधर प्रभाने रमाको अपने कमरेमें सुलाकर कथाका हाल पूछना प्रारम्भ किया। थोड़ी देरतक तो सुनती रही, बाद नींदका बहाना करके बोली,—अच्छा अब कल सुनूँगी, आज नींद आ रही है। तुम भी थकी हो सो जाओ।

नयी अवस्थामें और बातोंके अतिरिक्त नींद भी अधिक आती है। रमा कुछ ही देरमें सो गयी। प्रभाने कई तरहसे अन्दाजा लगाकर जब यह निश्चय कर लिया कि अब रमा सो गयी है, तब उठी और रमाके कमरेमें जाकर पहले बत्ती जलायी; बाद दिवाकरको सोया हुआ देखा।—वह झटपट वहाँसे लौट आयी।

पाठकगण चकित होंगे कि दिवाकर तो ऊपर था, यहाँ कैसे आ गया। बात यह है कि जब रमा प्रभाके कमरेमें चली गयी, तभी प्रभा किसी बहानेसे जाकर दिवाकरको बुला लायी थी और सहेज आयी थी कि यदि रमा यहाँ आवे भी तो तुम छिप जाना और बिना उसके बोले पहले न बोलना। क्योंकि वह तो खुद ही

बोलेगी, यदि न बोले तो समझ लेना कि अभी घरमें कोई जाग रहा है। मेरी बातोंका पूरा ध्यान रखना, नहीं तो तुमलोगोंके साथ मैं भी बदनाम हो जाऊँगी।

अधिक ढीठ हो जानेपर मनुष्य उतना नहीं डरता, जितना नया आदमी डरता है। दिवाकर इस फनमें चढ़ा हो गया था, इसलिए प्रभाके जाते ही वह मजेमें पलंगपर बैठ गया। शंका तो थी ही, थोड़ी देरतक प्रतीक्षा करता रहा, बाद गहरी नींद आ जानेके कारण सो गया। यदि कोई नया आदमी होता तो ऐसी अवस्थामें भला उसे नींद कैसे आती? किन्तु दिवाकरको क्या! वह तो इतनी ही अवस्थामें न-जाने कितने घरोंको चौपट कर चुका है, अपमान सह चुका है। बदनाम मनुष्यकी बदनामी ही क्या होगी? काले रंगपर कोई कालिमा पोतकर ही क्या कर लेगा?

पश्चात् प्रभाने जाकर बाहरका दरवाजा पाँच बार खटखटाया। ज्ञानदत्त उठ बैठे। क्योंकि उसने पहले ही कह दिया था कि मैं पाँच बार आवाज करूँगी, इसलिए ज्ञानदत्तको कोई सन्देह नहीं हुआ। भीतर आनेपर प्रभाने कहा,—आकर देख लो, अब सब पता अपने-आप ही लग जायगा।

इसके बाद ज्ञानदत्तने जो कुछ देखा, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है। प्रभाको आशा थी, दिवाकरको सोया देखते ही ज्ञानदत्त उथल-पुथल मचा देंगे। किन्तु उसकी वह आशा सफल न हुई। ज्ञानदत्त इतने जल्द आवेशमें आनेवाले आदमी नहीं थे।

उन्होंने तो जाते समय रमाके साथ जो थोड़ासा शुष्क बर्ताव किया, वही आश्चर्य्यकी बात है। क्या रमा-जैसी साध्वी स्त्रीपर ज्ञानदत्त-सरीखे समझदार युवकका इतने जल्द अविश्वास करना और उससे उसकी चर्चा भी न करना योग्य था? किन्तु इसमें ज्ञानदत्तका कोई दोष नहीं। इतने पुष्ट प्रमाणोंको पाकर भी वह जानेकी रातको रमाके कमरेमें रहे, यही बहुत है। यदि उन प्रमाणोंको ज्ञानदत्तने पुष्ट समझा और फिर भी कुछ नहीं बोले तो यह उनकी अकर्मण्यता है। परन्तु ज्ञानदत्त अकर्मण्य नहीं! जान पड़ता है कि उन्होंने उन प्रमाणोंपर विश्वास ही नहीं किया। अच्छा, जब विश्वास नहीं किया, तब रमापर रुष्ट क्यों हुए? अभीतक कोई पत्र उसे क्यों नहीं भेजा? इससे तो यही साबित होता है कि उन्हें कुछ तो विश्वास हुआ और कुछ अविश्वास। इसीसे उन्होंने दोनों तरहका काम किया।

भले आदमी, यह तुमने क्या किया? रमासे चर्चातक नहीं की! उससे कहते ही तो सारा भ्रम दूर हो जाता। वह तो तुमसे कोई भी भली-बुरी बात नहीं छिपाती, फिर तुम उस देवीसे इतना कपट क्यों रखते हो? वह तो पहले ही कहती थी कि कभी-कभी झूठी बातें भी सच प्रतीत हो जाती हैं। किन्तु तुमने औरका और ही कहकर उसे समझा दिया। उस गरीबनीने तुम्हारी उस बातको भी अवहेलनाकी दृष्टिसे नहीं देखा।

कभी-कभी बड़े-बड़े मेधावी और व्यवहार-प्रवीण लोगोंको

भी चक्करमें आ जाना पड़ता है, यह बात ज्ञानदत्तका व्यवहार देखकर दृढ़ता-पूर्वक कही जा सकती है। यदि ऐसा न होता तो क्या प्रभाके जाली पत्र इतना काम कर जाते?

ज्ञानदत्तके चले जानेपर ही दिवाकरकी नींद खुली। बत्ती जलती देखकर उसे हर्ष और विषाद हुआ। वह आयी और बत्ती जलाकर चली गयी, यह सोचकर हर्ष हुआ। मैं सो गया था, नहीं तो उससे बातें करता, यह सोचकर विषाद हुआ। इसी उलझनमें पड़े रहनेके कारण फिर उसे नींद नहीं आयी।

प्रभाका काम पूरा हो गया। ज्ञानदत्तके दिलमें सन्देह उत्पन्न कर देना ही उसका मुख्य उद्देश्य था। वह दो बजे रातके करीब हाँफती हुई दिवाकरके पास आयी और घबराकर बोली,—तुम जल्दी मेरे साथ आओ, डाकू पहुँचा आ रहे हैं।

इतना सुनते ही दिवाकर गिरते-पड़ते उठकर भाग चला। प्रभाने मकानके चोर दरवाजेसे उसे बाहर कर दिया और कहा,—अब तुम अपने घर चले जाओ; और देखो—इसकी चर्चा किसीसे न करना, नहीं तो प्रभाकी बदनामी होगी। जाओ, जल्दीसे निकल जाओ, नहीं तो कोई आ जायगा।

यह कहकर प्रभाने दरवाजा बन्द कर लिया। 'जान बची लाखों पाया' यही सोचता हुआ दिवाकर बिना कुछ कहे-सुने दस छलाँगमें रामपुर गाँवसे बाहर हो गया।

अब तो प्रभाकी बन आयी। ज्ञानदत्तके बाहर जाते ही उसने

रमाको वाग्-वाणोंसे बेधना शुरू कर दिया। पहले तो रमा कुछ समझ ही न सकी; किन्तु दो-चार दिनके बाद बातों-ही-बातोंमें वह बहुत-कुछ मर्म जान गयी। घरके और लोग भी केवल सन्देहवश उससे खिंचसे गये। वे और कुछ न करके रमाके सम्बन्धमें जो अफवाह घरमें उड़ी थी, उसकी जाँच करनेमें लग गये। किन्तु धर्मदत्तने तो अपनी स्त्रीकी बातोंपर पूर्ण-रीतिसे विश्वास करके एक दिन बात-ही-बातमें यहाँतक कह डाला कि ऐसी औरतके हाथका बनाया हुआ भोजन करना वेधर्म होना है। इन्हीं बातोंसे रमा रात-दिन चिन्तित रहने लगी। इधर ज्ञानदत्तने भी उसके पास कोई पत्र नहीं भेजा। स्वामीके आदेशानुसार वह ग्रंथावलोकनसे दिल बहलानेकी चेष्टा किया करती थी, पर अब तो पढ़नेमें उसका दिल ही न लगता था। रह-रहकर उसके दिलमें यही बात पैदा होती थी कि घरवालोंकी दृष्टिमें मैं दुराचारिणी हूँ!

तबतक रमा अपने पिताके घर चली गयी। जाते समय उसने यह सोचा कि चलो कुछ दिनके लिए जान तो बची, किन्तु प्रारब्धकी गतिको कौन मेट सकता है? वह यहाँ आनेपर भी सुखी न हुई। सोचने लगी, बल्कि इससे अच्छा तो वहीं था। स्वामीके पास कई पत्र भेजे, पर उनका एक भी पत्र न आया। इससे भावजें तरह-तरहकी बातें कहने लगीं; अपढ़ आदमियोंकी ये ही आदतें तो बुरी मालूम होती हैं। परमात्मा करें यह दुःख किसीको न हो। क्वाँरी रहना अच्छा है, परन्तु ऐसे आदमीके साथ रहना अच्छा

प्रणय

नहीं। यदि उनके दिलमें ज़रा भी प्रेम-भाव होता तो क्या वह पत्रका उत्तरतक न देते?

रमा इन बातोंको सुनकर मन ही मन सोचती थी कि, मैंने व्यर्थ ही उनके पास पत्र भेजा। यदि मेरी भूल न होती तो इनलोगोंको आज यह सब कहनेका अवसर न मिलता। किन्तु फिर उससे न रहा गया,—सबकी चोरीसे एक पत्र फिर लिख ही भेजा। उसकी इच्छा यह भी लिखनेकी थी कि, यदि तुम्हारे मनमें मेरे प्रति किसी तरहका सन्देह हो तो स्पष्ट लिखो और उचित समझो तो उस सन्देहकी निवृत्तिके लिए स्वयं जाँच करो। पश्चात् कुछ सोचकर उसने ऐसा नहीं लिखा।

यही आशा थी कि इस पत्रका उत्तर अवश्य आवेगा। पूरा एक पखवारा बीत गया, आनन्दका कोई पत्र नहीं आया। इधर रमापर एक संकट और आ पड़ा। दिवाकर ढिठाईके साथ उसके पीछे पड़ गया। कुछ दिनोंतक तो उसे अवसर न मिलनेके कारण इशारे-बाजीसे ही काम लेता रहा किन्तु एक दिन उसका मुँह भी खुल गया।

रमा कई लड़कियोंके साथ एक पड़ोसीके घर गयी थी। दिवाकर-की उसपर नजर पड़ गयी। उस समय दरवाजेपर कोई नहीं था। बैठकमें जाकर देखा तो वहाँ भी सन्नाटा छाया हुआ था। झट बाहर आया और एक पाँच वर्षके लड़केसे कहा,—रमा भीतर है, उससे जाकर कहो कि तुम्हारे भैया बाहर खड़े बुला रहे हैं, बहुत जल्दी

काम है। सुनकर चली आओ। जल्दी जाओ। मैं तुम्हें बढ़ियासा खिलौना दूँगा।

यह कहकर दिवाकर बैठकमें चला गया। वह लड़का वैसे चाहे भूल भी जाता, किन्तु जिस बातपर उसे खिलौना मिलनेवाला है, भला उसे कैसे भूल सकता था। बाल-स्वभावानुसार वह चिग्घाड़ मारता हुआ सरपट लगाकर झटसे आँगनमें गया और रमाको खोज कहा,—बुआ, तुम्हें चाचाजी बुला रहे हैं। जल्दी जाओ, बाहर खड़े हैं।

रमा कुछ पूछना ही चाहती थी कि तबतक वह लड़का खिलौना लेनेके लिए दिवाकरकी खोजमें भाग गया। बाहर आकर जब उसने खिलौना देनेवालेको नहीं पाया, तब उसके घर चला गया।

मायाधर अपना कागज-पत्र रमाको ही रखनेके लिए देते थे। यह रमाके बड़े भाई थे। उक्त सन्देशा सुनकर पहले तो रमाने यह समझा कि यदि उन्हें आवश्यकता होती तो उन्होंने किसीको भेजकर बुलाया होता, स्वयं कभी न आते; किन्तु फिर सोचा, शायद वह खुद ही आये हों, अन्तमें उसने यही स्थिर किया कि चलकर देख लेना चाहिए, कहीं दूर तो जाना नहीं है।

यही सोचकर रमा अपनी सहेलियोंसे यह कहती हुई बाहर आयी कि,—अभी आती हूँ। बाहर आनेपर उसने किसीको न पाया। फिर घरमें लौटना ही चाहती थी कि बैठकके भीतरसे आवाज आयी,—यहाँ आ रमा।

प्रणय

पक्की और ऊँची इमारतमें आवाज़ बुलन्द हो जाती है, उसका पहचानना कठिन हो जाता है। इसीसे रमा भी धोखेमें आ गयी और उस आवाज़को पहचान न सकी। सीधे बैठकमें चली गयी। वहाँ केवल दिवाकरको देखकर उससे बिना कुछ पूछे वापस लौटने-हीको थी, तबतक दिवाकरने कहा,—यदि तुम्हें इस तरहसे दूर रहना था तो पत्र लिखवाकर बुलानेकी क्या ज़रूरत थी? मैंने तो पहले तुमसे कुछ कहा भी न था। बोलो, सच है या नहीं?

रमा चौखटसे बाहर हो चुकी थी। यदि और समय होता तो वह इतनीसी बातको सहेजकर चली जाती। किन्तु इस समय वह ऐसा न कर सकी। उसने दिवाकरसे बात करनेमें अपना कुछ लाभ देखा। यद्यपि उसका हृदय लोहारकी भाथीकी भाँति धुक्-धुक् करने लगा, तथापि वह रुक गयी और क्रुद्धा भुजंगनाकी भाँति मुड़कर बोली,—किसने पत्र लिखा था?

दिवाकरने कहा,—वाह! ऐसा पूछ रही हो यार मानो तुम्हें कुछ मालूम ही नहीं है। इतना न बनो, मैं अबोध-बच्चा नहीं हूँ कि तुम जो कुछ कहोगी वही मान लूँगा।

'यार' शब्द रमाको तीरकी तरह लगा। त्योरियाँ चढ़ाकर बोली,—साफ साफ क्यों नहीं बतलाते कि किसने पत्र लिखा था। पहेलियाँ क्या बुझाते हो।

दिवाकरने कहा,—रामपुरसे तुमने पत्र लिखवाकर मुझे नहीं बुलवाया था, और आनेके लिए अनुरोध नहीं किया था? छिः!

प्रणय

मैं तो उस दिन तुम्हारे लिए चोरकी तरह तुम्हारे कमरेमें बैठा रहा और तुमने बात भी नहीं की।

रमाने चकपकाकर इधर-उधर देखा कि कोई आता तो नहीं है। बाद पूछा,—किस दिन?

दिवाकरने कहा,—कथावाले दिन और किस दिन! अब आओ भीतर बातोंमें ही समय न बिताओ।

रमा और कुछ भी न पूछ सकी। आवेशमें रहनेके कारण वह गिरनेसे बच गयी। झट तेजीसे चल पड़ी। दिवाकर पीछेसे "सुनो-सुनो" पुकारने लगा। अन्तमें पकड़नेके लिए दौड़ पड़ा, किन्तु विफल हुआ। रमा घरमें चली गयी। ओफ! बड़ी गलती हुई। यदि दिवाकर यह जानता कि रमा उसे इस प्रकार झाँसा-पुत्ता देकर निकल जायगी, तो वह अपने काबूमें आये-हुए शिकारको यों ही न निकल जाने देता। इतनी बातें करनेकी जरूरत ही क्या थी? मगर अब यह सोचनेमें क्या धरा है। अब आज तो रमा आँखोंमें धूल झोंककर निकल गयी; साथ ही यह भी कहती गयी कि—पाजी, यदि तू अब मुझसे बातें करनेकी धृष्टता करेगा तो तेरे लिए अच्छा न होगा। जा, आज मैं क्षमा करती हूँ।

यदि उस समय कोई आदमी कुछ फासलेपर भी होता तो रमाकी ऊपरकी बातको अच्छी तरहसे सुन लेता। क्योंकि ऊपरकी बात कहते समय रमा अपनेको भूल गयी थी, और इसीसे ऊँचे स्वरमें कह बैठी थी।

प्रणय

भीतर आकर रमा बैठ तो गयी, पर उसके हृदयकी धड़कन बन्द नहीं हुई। रह-रहकर उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वह नीच पीछेसे आकर उसे घसीटना चाहता है। इसी धोखेमें वह अचानक चौंककर पीछे ताक भी लिया करती थी। उसने बहुतेरी चेष्टाएँ कीं कि इस भावको कोई लक्ष्य न कर सके, फिर भी उसका तमतमाया हुआ चेहरा देखकर स्त्रियोंने लक्ष्य कर लिया। एकने कहा भी,—तू क्षोभमें क्यों है रमा?

इसके उत्तरमें रमाने इतना ही कहा,—कुछ तो नहीं।

फिर किसीने कुछ नहीं पूछा। सोचा, भाईने कुछ कहा होगा।

अपने घर आनेपर रमा गहरी चिन्तामें डूब गयी। सोचने लगी,—यह मैंने क्या सुना? क्या कथावाले दिन मेरे साथ कोई षड्यंत्र रचा गया था? अवश्य ही यही बात है। हाय भगवान, अब क्या होगा? उस षड्यंत्रका पता कैसे लगेगा? पापी दिवाकरसे पूछना भी तो ठीक नहीं। मैंने तो किसीसे नहीं बुलवाया था, फिर वह ऐसा क्यों कहता था? उस दिन बहन (प्रभा) भी तो मुझसे प्रसन्न थी। क्या उन्होंने ही तो मिलकर कोई काम नहीं किया? नीतिकारोंने कहा भी है कि हँसकर मिलनेवाले शत्रुसे और भी सतर्क हो जाना चाहिए। तो क्या वह मेरे साथ शत्रुता रखती हैं? कदापि नहीं! मैंने उनका कौनसा अहित किया है? वह तो मुझे बहुत कुछ बुरा-भला कह जाती थीं, किन्तु मैंने तो

आजकल कभी उनकी बातोंको उलटा भी नहीं। प्राणनाथ! तुम्हारे रहते मेरा यह अपमान? क्या तुम भी इसपर विश्वास कर बैठे हो? तब तुम स्पष्ट क्यों नहीं कहते? तुमने तो पत्रोंका जवाबतक देना बन्द कर दिया है। यदि तुम अपने हृदयका सन्देह या निश्चय स्पष्टरूपसे कहते, तो कमसे-कम मैं अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेकी चेष्टा करती। पर तुम्हारे ढंगोंसे यह प्रतीत होता है कि तुम मुझे यह भी अवसर नहीं देना चाहते कि मैं अपनी ओरसे सफाई दे सकूँ। पातकी कीचकके भयसे सैरन्ध्रीकी जो दशा हुई थी, वह तुमसे छिपी नहीं है नाथ! यदि तुम मेरे हृदयको टटोलकर देखते तो समझ सकते कि मेरे हृदयमें कितनी वेदना है। सैरन्ध्रीने विराट-महिषीके पैरों पड़कर अभयदान माँगा था। मुझे तो वह भी सहारा नहीं! तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हारे सिवा और मैं किससे अभयदान माँगूँ? मुझे कौन अभय करेगा? स्वामिन्! कह तो नहीं सकती, लेकिन तुम्हीं सोचो कि यदि सैरन्ध्रीकी उस स्थितिमें उसके पति उसपर अविश्वास करते तो उसकी क्या दशा होती? कीचकका संहार कौन करता?

इन्हीं बातोंको सोचकर रमा चिन्तित रहने लगी। उसके शरीरकी कान्ति क्रमशः अस्त होने लगी। किन्तु इस बातकी चर्चा उसने किसीसे नहीं की। यदि वह दिवाकी नीचताको अपने पिताके कानोंतक किसी तरह पहुँचा देती, तो अवश्य ही उसका छुटकारा हो जाता। क्योंकि सदायतनजी बड़े प्रभावशाली मनुष्य थे। वह

प्रणय

आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी थे। दिवाकरको वह तुरन्त ही पकड़वा मँगाते, और ऐसा पिटवाते कि उसे जिन्दगीभरके लिए याद हो जाता। सम्भव था, कोई इससे भी कड़ा दंड देते। वह जितने दयालु थे, अपराधियोंके लिए कहीं उससे भी अधिक कठोर थे। रमाको पिताका स्वभाव मालूम था। पहले तो उसने यह समाचार पिताके पास पहुँचानेका विचार किया, पश्चात् दिवाकरकी स्त्रीका स्मरण करके रुक गयी। सोचा बाबूजी न-जाने कौनसा दण्ड देंगे। उसकी स्त्रीको दुःख होगा। यही सोचकर कोमल-स्वभावा नारी-हृदय सिहर गया। किन्तु इसका परिणाम उसके लिए अच्छा न हुआ।

ऊपरकी घटनाके बाद कई दिनोंतक तो दिवा रमाके पिताके भय-से चोरकी तरह काँपता रहा। बाद जब उसने निश्चय कर लिया कि रमाने यह हाल अपने पितासे नहीं कहा, तब फिर उसका साहस बढ़ गया। सोचने लगा,—उस दिनकी बात रमाको बुरी नहीं लगी। यदि उसे मेरा कहना अनुचित जँचा होता तो अवश्य ही अपने पितासे कह देती। अच्छा, तब वह बुलानेसे आयी क्यों नहीं? ऊँः! यह तो स्त्रियोंके नखरे हैं। युवतियाँ क्या सहजहीमें हाथ आती हैं? भोलाकी लड़कीके पीछे क्या कम दाँव-पेंच खेलने पड़े थे? युवती स्त्रियोंको,—खासकर ऐसी स्त्रियोंको जिनके पति बाहर रहते हैं, ऐसी बातें कभी भी बुरी नहीं लगतीं—चाहे वे कितनी ही साध्वी क्यों न हों। आँखोंसे सैकड़ों बात संकेत करनेपर वह नहीं बोली, इतनी बातें हो जानेपर भी उसने किसीसे चर्चा नहीं की,

अब क्या चाहिए ! यदि वह राजी न होती तो रामपुरमें मेरे लिए रोती क्यों ? और फिर मेरी सुन्दरतापर ऐसी कौनसी स्त्री है जो मुग्ध न हो जाय ! (कुछ ठहरकर) समझमें आ गया। जान पड़ता है, उसने पत्र नहीं लिखवाया था। इसीसे जीजीने भी पत्रकी चर्चा करनेके लिए मना कर दिया था। किन्तु इससे क्या ? रमा मुझे चाहती है, यह निश्चय है। विश्वास है कि बहुत शीघ्र वह मेरी हो जायगी।

नराधम ! त्याग दे अपनी इस आशाको। उस देवीकी दया ही तेरे लिए शाप होगी ! मत कर अपनी सुन्दरताका घमण्ड। तू तो ज्ञानदत्तके पैरोंके तलवेकी समानता करनेवाला भी नहीं है,—यदि तू ठीक इसके विपरीत होता, तब भी तेरे विश्व-विमोहन सौन्दर्यको देवी रमा तुच्छसे भी तुच्छ समझती। वह तो उस दिन तुझसे बोलती भी न; पर क्या करे तेरी हरकतोंने ही उसे साहसी बना दिया था; दूसरा कारण यह भी था कि तेरे साथ बातें करके वह देवी अपना कुछ मतलब निकालना चाहती थी। तू नहीं समझ सका, उसने अपना काम निकाल लिया—रे अन्धा !



अठारहवाँ परिच्छेद

रविवारके दिन थोड़े ग्राम काम न रहनेके कारण आनन्दने गौरी बाबूके घर टेलीफोन किया। उस समय ग्यारह बज चुके थे। उत्तर मिला, गौरी बाबू नीचेकी बैठकमें काशी बाबूके साथ बातें कर रहे हैं। पूछा,—कहीं जानेवाले तो नहीं हैं? उत्तर मिला,—नहीं।

कपड़े पहनकर आनन्द उनके निवास पर पहुँचे। दरवाजेपर पहुँचते ही, काशी बाबूने कहा,—आइये, पधारिये आइये, अभी आपहीके लिए गाड़ी भेजनेकी बात हो रही थी।

"अभी तो मैं आ गया" यह कहते हुए आनन्द एक तकियाके सहारे लेट गये। गौरी बाबूने पानकी तश्तरी खिसकाते हुए कहा,—लो पान खाओ

आनन्दने नौकरसे एक गिलास ठंडा जल माँगकर पिया, पश्चात् उनके साथ पानके बीड़े भी खाये। पूछा,—आज कहाँ चलोगे?

गौरी बाबूने कहा,—नया खेल (फिल्म) देखने। एक बाक्स रिजर्व करा लिया है। वहीं त्रिमूर्ति चलेगी।

आनन्दने कहा,—तुम व्यर्थ रुपया फूँकते हो गौरी बाबू, यह बात अच्छी नहीं। कल थियेटरके मैनेजरने टिकट भेजनेके लिए फोन किया था, किन्तु मैंने मना कर दिया। यदि चलना था तो कहते, मैं मँगवा लेता।

प्रणय

गौरी बाबूने कहा,—खैर इसके लिए कोई बात नहीं है जी ! यह अपव्यय नहीं कहलाता।

ज्ञानदत्तने कहा,—क्यों, यह अपव्यय नहीं है? भई वाह, तुम्हारी शब्द-परिभाषा ही भिन्न रहती है।

काशी बाबूने कहा,—क्यों जनाब, आप तो सम्पादक बनकर चलते, और हमलोग क्या बनते ?

गौरी बाबूने कहा,—अच्छा बकवाद छोड़ो, कोई कामकी बातें करो।

ज्ञानदत्तने कहा,—हाँ और क्या, जल्दी बनाओ मुहर्रमी सुरत ! राम, राम !

सबलोग ठहाका लगाकर हँस पड़े। बाद काशी बाबूने कहा,—हाँ, कहिये गौरी बाबू, कौनसी बात करना चाहते थे? मुझे आपकी और पण्डितजीकी बातोंमें बड़ा आनन्द आता है।

"अच्छा ये बनानेकी बातें अपने पेटमें रहने दीजिये," यह कह गौरी बाबूने गम्भीरताके साथ कहा,—आजकल हिन्दी-साहित्य-में नये-नये छोकरोंने इतनी तेजीसे सरपट लगाना शुरू कर दिया है कि देखकर आश्चर्य्य होता है।

ज्ञानदत्तने कहा,—हमलोग भी तो नये छोकरोंमें ही हैं।

गौरी बाबूने कहा,—किन्तु उनकी अपेक्षा पुराने हैं।

ज्ञानदत्तने कहा,—मौलिक पुस्तकें नहीं निकल रही हैं, यह बड़े दुःखकी बात है।

प्रणय

गौरी बाबूने कहा,—निकलती क्यों नहीं हैं, यह कहो कि कम निकल रही हैं। कुछ लोगोंने ऐसे विचित्र-विचित्र नामकी पुस्तकें लिख मारीं कि उनकी धूम मच गयी।

ज्ञानदत्तने कहा,—अवश्य ही कुछ छोटे छोटे सामाजिक उपन्यास ऐसे निकले हैं और निकल रहे हैं, किन्तु इन उपन्यासोंसे समाजका बहुत बड़ा अहित हो रहा है और भविष्यमें उनसे समाजका बहुतही हृदयद्रावक अनिष्ट होगा।

काशी—सो कैसे ?

ज्ञान—बात यह है कि आजकलके नवयुवक गन्दे उपन्यासोंकी ओर मुँहके बल टूट पड़े हैं। उनकी इस रुचिको देखकर लोभके वशीभूत हो कुछ मौलिक उपन्यास-लेखक घटना-वैचित्र्य-पूर्ण सामाजिक उपन्यास लिखनेमें लग गये हैं। ऐसे उपन्यासोंकी बिक्री भी खूब धड़ल्लेसे हो रही है। किन्तु मेरी समझमें घटना वैचित्र्य ही उपन्यासका सर्वस्व नहीं है। उसमें नैतिक शिक्षाका सन्निवेश होना विशेष प्रयोजनीय है। इसके अलावा एक बात और है। वह यह कि, उपन्यास लेखकको चरित्र-चित्रण करनेमें स्वाभाविकताकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। आजकल लोगोंने उसका अर्थ ही बदल दिया है। समझते हैं कि समाजका नग्न चित्र चित्रित करना ही लेखन-कौशल है। मैं यह नहीं कहता कि नग्न चित्र खींचना ही नहीं चाहिए। मेरा तो यह कहना है कि समाजका नग्न चित्र खींचा जाय, किन्तु मर्यादाके

भीतर, अधिक अश्लीलताका दोष आ जानेसे तो साहित्यका गौरव ही नष्ट हो जाता है। इसमें......

गौरी बाबूने बात काटकर कहा,—मान लीजिये कि समाजका कोई चित्र अधिक अश्लील है। अब यदि उपन्यास-लेखक उसे ज्योंका-त्यों चित्रित न करे, तो वह अस्वाभाविक हो जायगा। ऐसी दशामें लेखक उसको चित्रित करनेके लिए बाध्य है।

ज्ञानदत्तने कहा,—मेरे कहनेका मतलब यह है कि साहित्यमें ऐसी अश्लील बातोंको नहीं आने देना चाहिए, जिन्हें देखकर संसारके लोग अभी या भविष्यमें हमारे समाजकी दिल्लगी उड़ावें और उसे हेय दृष्टिसे देखें। समाजके गौरवकी रक्षा करनेकी ओर ध्यान रखना तथा यह देखना कि भविष्यमें अमुक बातका अमुक प्रभाव पड़ेगा—नितान्त आवश्यक है। अधिक अश्लील चित्रोंसे समाजका गौरव नष्ट होता है और लाभके बदले हानि ही अधिक होती है। मानव-हृदयका स्वाभाविक झुकाव पतनकी ओर होता है। इसलिए ऐसे चित्रोंसे जनता कोई लाभ नहीं उठाती और अनायास ही उसमें कुरुचि आ घुसती है। देखिये न, विदेशियोंने हमारे भारतको नीचा दिखानेके लिए कितना प्रयत्न किया; हमारे इतिहास और साहित्यको कुचलनेमें उन्होंने कुछ भी उठा नहीं रक्खा; किन्तु हमारा प्राचीन साहित्य इतना गौरवान्वित है कि उनकी दाल न गल सकी। यदि हमारे प्राचीन साहित्यमें समाजके अधिक अश्लीलता-पूर्ण नग्न चित्र खींचे गये होते, तो आज विदेशियोंको बहुत

कुछ कहनेका अवसर मिलता और हम लोग कभी भी उनके सामने ऐंठकर खड़े न रह सकते। इस समय भी हमारा पीछा करनेसे विदेशी बाज नहीं आ रहे हैं। मिस मेयोकी मदर इंडिया अभी ही तो प्रकाशित हुई है। इसीसे मैं ऐसे चित्रोंका चित्रित करना पसन्द नहीं करता, जिनसे लोग यह कहें कि बीसवीं सदीमें तुम्हारा भारत ऐसा था। तात्पर्य यह कि लेखकको जनतामें सुरुचि-पूर्ण भाव फैलानेका ही प्रयत्न करना चाहिए। यदि समाजके किसी नग्न चित्रसे जनतामें कुरुचि उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो तो उस चित्रको न व्यक्त करना ही अच्छा है; और यदि व्यक्त किये बिना काम न चले, तो ऐसे ढंगसे करना उचित है जिससे जनतामें शिक्षाके साथ सुरुचि उत्पन्न हो, इसीमें लेखककी खूबी भी है। केवल नग्न चित्र खींचकर ही रखा तथा यदि पाठकोंका हित न होकर अहित ही अधिक हुआ? इसमें बुद्धिसे काम लेनेकी जरूरत है। कुशल-लेखकको ही इसमें कलम उठानी चाहिए।

गौरी—तो क्या तुम्हारे कहनेका यह मतलब है कि समाजका नग्न चित्र बिलकुल खींचा ही न जाय?

ज्ञान—नहीं, मैं यह कदापि नहीं कहता। क्योंकि ऐसा कहनेसे तो चरित्र-चित्रणका अस्तित्व ही मिट जायगा। मेरी बातको जरा ध्यानसे समझो। बात यह है कि समाजके नग्न-चित्रका अर्थ यह नहीं है कि उसकी कुत्सित बातोंका दिग्दर्शन करा दिया जाय। लेखकको यह समझना चाहिए कि समाजके जिस चरित्रका

चित्रण करनेसे जनताका लाभ होगा। जिस प्रकार इतिहास-लेखकके लिए यह जानना आवश्यक है कि, अमुक बादशाह अमुक सनमें पैदा हुआ, फलाँ सनमें गद्दीपर बैठा और अमुक-अमुक कार्य करके स्वर्गवासी हुआ, आदि बातोंका मार्मिक भाषामें उल्लेख करना कोई चीज़ नहीं है,—बल्कि किस कार्यका भविष्यपर क्या प्रभाव पड़ेगा, किस कार्यसे इतिहास-पाठकोंको लाभ होगा आदि बातोंपर दृष्टि रखकर इतिहास लिखना ही उच्चकोटिके इतिहासज्ञ लेखकोंका काम है; उन्हें यह भी अटकल लगानी चाहिए कि यदि इतिहासकी अमुक घटना अमुक रूपमें घटती तो उसका क्या परिणाम हुआ होता; इस बातको इङ्गलैंडके सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक सरजान सीलीने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "एक्सपैन्शन आफ इङ्गलैंड" में बड़ी विद्वत्ताके साथ दिखलाया है; ठीक ऐसा ही सामाजिक उपन्यास-लेखकका भी कर्त्तव्य है। यदि कोई उपन्यासकार यह लिखनेमें कागज-स्याही बर्बाद करे कि अमुक पात्र इतने बजे पाखाने जाता था, स्नान करता था, तो यद्यपि इसमें कोई अस्वाभाविकता न होगी,—तथापि इसे पढ़नेमें जनताका समय नष्ट होनेके सिवा और कोई फल न होगा; किन्तु यही बात यदि इस तरह दर्सायी जाय कि उसके इस नियम-पूर्वक स्नान और शौचका अमुक फल हुआ, तो जनताका अवश्य ही उपकार होगा। कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि केवल स्वाभाविक-स्वाभाविककी दुहाई देना उचित नहीं है,—आवश्यकता है, लेखकोंको अपना कर्त्तव्य

प्रणय

समझने और तदनुसार कार्य करनेकी। शब्दोंका फेरफार, मुहाविरा बड़ा बेढब होता है। यदि कोई मनुष्य अपनी माँको 'ए बापकी मेहरी' कहकर पुकारे तो क्या यह पुकारना भावार्थकी दृष्टिसे ठीक होते हुए भी अमर्यादित नहीं है? अवश्य है, क्योंकि जो माधुर्य माँ शब्दमें है, वह बापकी मेहरीमें कहाँ? ठीक इसी प्रकार चरित्रका चित्रण करना भी समझिए। उच्च कोटिका लेखक वही है, जो समाजके भद्देसे भद्दे चरित्रका चित्रण करे, पर ऐसे शब्दोंमें, जिनमें वह नग्न होकर पाठकोंको [illegible]। किंतु जो लेखक ऐसा न करके कुत्सित प्रकार चित्रित करता है—सभ्यतासे काम नहीं लेता, वह तो समाजमें व्यभिचार फैलाता है।

इतनेमें कहीं घड़ीमें 'टन-टन' की आवाज आयी। गोरे बाबूने कहा [illegible]—तीन बज गये, अब थोड़ीदेरमें निवृत्त होना चाहिए, क्योंकि चार बजे अभिनय शुरू हो जायगा।

गोरे बाबू और कमलाप्रसाद दोनों आदमी थोड़ीदेरमें छुट्टी पा जलपान करने लगे। ठीक साढ़े तीन बजे गाड़ी आकर दरवाजेपर खड़ी थी। साईसने आकर कहा,—गाड़ी तैयार है हुजूर।

सबलोग गाड़ीपर सवार हो थियेटर देखने गये। वहाँ बड़ी भीड़ थी। शोर-गुल इतना हो रहा था कि कानके पर्दे फटे जाते थे। दर्शक-मात्रके दिलमें आगे बैठनेकी चाह इस कोलाहलका मूल कारण था। इन दोनों मित्रोंको इस झगड़ेमें पड़नेकी कोई

जरूरत नहीं थी, क्योंकि इन लोगोंकी तीन सीटोंके बदले पाँच सीटका पूरा बाक्स रिजर्व था। पहली घंटी होनेपर तीनों मित्र जाकर अपने स्थानपर बैठ गये। नया अभिनय होनेके कारण रंगमंच खूब सजा हुआ था। दर्शकशाला खचाखच भरी थी। इतनेमें दूसरी घंटी बजी, फिर तीसरी घंटी बजकर ठीक समयपर पर्दा उठ गया। दर्शक-मंडलीमें सन्नाटा छा गया। ज्ञानदत्त और गौरी बाबू सीनकी बनावटकी प्रशंसा करने लगे। तबतक बगलके बाक्समें खटखुटकी आवाज हुई। मित्र त्रयकी दृष्टि उधर जा पड़ी। देखा, चार व्यक्ति आकर सहूलियतके साथ बैठनेका उपक्रम कर रहे हैं। उनमें दो पुरुष हैं और दो स्त्रियाँ। तीनका मुख तो दिखलायी पड़ा और चौथा मुख दिखलायी नहीं पड़ा, क्योंकि उसका पृष्ठ-भाग इन लोगोंकी नजरोंके सामने था।

फिर किसीने उधर नहीं देखा। धीरे-धीरे नाटकका पहला अंक समाप्त हो गया। धक्कामुक्की शुरू हो गयी। ये तीनों आदमी अपने स्थानपर बैठे बातें करने लगे। अबकी दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य-की चर्चा छिड़ी।

गौरीने कहा—तुम यार नाटकोंको हेय दृष्टिसे क्यों देखते हो, समझमें नहीं आता।

ज्ञान—यार हो तुम सचमुचमें बड़े विचित्र! भला यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि दृश्य-काव्यको मैं हेय दृष्टिसे देखता हूँ? नाटक, साहित्यका एक महत्वपूर्ण प्रधान अङ्ग है, इसे कौन नहीं

मानता ? जिस नाट्यकलाका प्रचार स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने किया, उसे मैं हेय दृष्टिसे कैसे देख सकता हूँ ? मेरा कहना तो सिर्फ इतना ही है कि हिन्दीमें अभी नाटकोंका अभाव है; बल्कि यों कहना चाहिये कि नाटक नामसे परिचित होने योग्य हिन्दीमें कोई नाटककी पुस्तक है ही नहीं।

गौरी बाबूने कहा,—तो क्या भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रकी रचनाएँ भी ऐसी ही हैं ? यदि हाँ, तो फिर कहाँ सर्वगुण-सम्पन्न नाट्यकला है भी या नहीं ?

ज्ञान—फ्रान्स, जर्मन आदि देशोंमें नाट्य-कला उत्कर्षको पहुँच गयी है। हमारे प्राचीन साहित्यमें भी नाट्य-कलाका स्थान सर्वोच्च है। हमारे भारतके प्राचीन साहित्य संस्कृतमें मुद्राराक्षस, विक्रमोर्वशी, मृच्छकटिक, शकुन्तला आदि नाटकोंकी रचना तथा उनका अभिनय सौन्दर्य-कलाकी अपूर्व सृष्टि है। मैं तो ऐसे ही नाटकोंको पसन्द करता हूँ।

गौरी—किन्तु अब वैसे नाटक आदरकी दृष्टिसे नहीं देखे जा सकते। कारण यह कि जनताकी रुचि बदल गयी है।

ज्ञान—इसे मैं भी मानता हूँ; किन्तु जनताकी रुचि बदल जानेसे उक्त नाटकोंकी श्रेष्ठता लुप्त नहीं हो सकती। उन नाटकोंके टक्करके नाटक संसारमें नयी रुचिके अनुकूल रचे जायँगे या नहीं, मुझे सन्देह है।

प्रणय

गौरी—क्या तुम यह कहना चाहते हो कि हिन्दीमें नाटक हैं ही नहीं ?

ज्ञान—वास्तवमें जहाँतक मैंने देखा है, नाटकोंके यथार्थ गुणोंसे सम्पन्न हिन्दीमें कोई भी नाटक नहीं है। मैं तो यह भी कहनेमें संकोच न करूँगा कि चाहे भारतेन्दुजीके गद्य लेखों और कविताओंकी उत्कृष्टताके विषयमें मत-द्वैध न हो, किन्तु अन्यान्य नाटककारोंसे बहुत बढ़े-चढ़े रहनेपर भी उनके नाटक प्रथम श्रेणीके नहीं कहे जा सकते।

काशी—अच्छा आप नाटकमें किन किन बातोंका रहना आवश्यक समझते हैं ?

गौरी बाबूने कहा,—नहीं नहीं, (फिर कुछ सोचकर) अच्छा हाँ, ठीक है काशी बाबूका प्रश्न। पर यह समझमें नहीं आता कि पहलेकी सब रचनाएं पद्यात्मक ही क्यों हैं।

ज्ञान—मेरे विचारसे नाटकमें तीन बातें प्रधान हैं जिनके बिना नाटक सौन्दर्योत्पादक नहीं हो सकता। सबसे पहली बात है भाषा। स्वाभाविकताकी रक्षा करनेके लिए गद्यको ही प्रधानता देनी चाहिए, क्योंकि मनुष्य साधारणतया गद्यमें ही बातें करता है। किन्तु जहाँ-तक नाटक देखनेमें आये हैं, वे सब अधिकांश छन्दोबद्ध भाषामें लिखे गये हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि, सभी जातियोंके साहित्यका प्रारम्भ काव्यसे ही हुआ है। प्राचीनकालमें ग्रन्थकारोंकी प्रवृत्ति कविताकी ओर विशेष प्रतीत होती है। भारतमें तो

निश्चय ही यही बात है। कारण यह है कि भाव-प्राचुर्यके कारण बोलीमें तात्कालिक परिवर्तन उपस्थित होता है। राग, द्वेष, क्रोध अत्यधिक हर्ष तथा शोककी अवस्थामें मनुष्यकी भाषा स्वाभाविक भाषासे भिन्न प्रकारकी हो जाया करती है। मनुष्य जब क्रोध, हर्ष, शोकमें बढ़कर अपना वक्तव्य प्रकट करता है, तब उसकी भाषामें एक प्रकारका ओज, चढ़ाव-उतार देखनेमें आता है—जो कवितासे कुछ-कुछ मिलता-जुलता प्रतीत होता है। प्राचीन कविता-प्रिय लेखकोंने इसी पार्थक्यका परित्याग करके सादृश्यको ही ग्रहण किया है। ज्ञात पड़ता है, उनको यह विभिन्नता नहीं जँची।

काशी बाबूने गौरी बाबूकी ओर देखकर कहा,—पं० ज्ञानदत्तजीके इस विचारसे मैं भी सहमत हूँ। मेरा भी यही अनुमान है कि इस प्रकार कुछ दिनोंतक रहनेके बाद नाटकीय भाषामें अमित्राक्षर छन्दोंके व्यवहारमें परिवर्तन हुआ। हम मित्राक्षर छन्दों तथा गद्यकी मध्यवर्तिनी भाषाको अमित्राक्षर छन्दकी भाषा मान सकते हैं; जिसमें एक ओर तो हमें कविताका ओज इत्यादि और दूसरी ओर गद्यकी स्वाधीनता तथा निरंकुशता भी देखनेमें आती है।

गौरी—मेरा तो यह अनुमान है कि प्राचीन समयमें लोग श्रुति-मधुरताका अधिक आदर करते थे; चूँकि पद्यमें माधुर्य-गुण विशेष आ जाता है, अतः प्राचीन नाटकोंकी रचना पद्यमें होना स्वाभाविक है।

प्रणय

ज्ञानदत्त—आपका कहना भी मैं मानता हूँ। एक कारण यह भी हो सकता है।

गौरी—अच्छा हाँ, एक बात तो हुई भाषा-सम्बन्धी; अब बाकी दो प्रधान बातें कौन-कौनसी हैं।

ज्ञानदत्त—दूसरी बात है—कथानक; जिसे घटनाकी पूर्त्ति तथा अविच्छिन्नता भी कह सकते हैं। उत्तम नाटककारको चाहिए कि वह नाटकभरमें एक भी दृश्य व्यर्थ न लिखे। इसके लिए सभी दृश्योंका सहायक होना आवश्यक होता है। दुःखकी बात है कि आजकलके नाटकोंमें इस बातकी बहुत ही न्यूनता है।

गौरी—सो तो ठीक है। इसे........

इतना कहते ही किसीने पुकारा,—गौरी बाबू!

आवाज सुनकर गौरी बाबू चुप हो गये; पीछेके बाक्सकी ओर ताका। तबतक फिर आवाज हुई,—आप तो बहुत पहले आ गये थे।

गौरी बाबू उठ खड़े हुए और झुककर प्रणाम किया। राजा साहिबने आशीर्वाद देते हुए कुशल-क्षेम पूछी और कहा,—आप तो कभी दिखलायी ही नहीं पड़ते। कार्यका भार अधिक आ गया न?

गौरी बाबूने संकोचके साथ सिर झुका लिया। तबतक पं० ज्ञानदत्त और काशी बाबू उठकर बाहर जाने लगे। बाक्सके सामने खड़े होकर ज्ञानदत्तने गौरी बाबूसे कहा,—अच्छा, आप बातें कीजिये, हमलोग अभी आते हैं।

यह कहकर ज्ञानदत्त उत्तरकी प्रतीक्षामें खड़े न रहते। किन्तु

एक ओरपर दृष्टि पड़ जानेसे उत्तर लेनेके बहाने जरा रुक गये। देखा, वह युवती थी, चकित हरिणीकी भाँति उनकी ओर ताक रही थी; किन्तु टकटकी लगाकर नहीं, कनखियोंसे—सो भी जब-तब—लोगोंकी नजरें बचाकर।

गौरी बाबू कुछ कहना ही चाहते थे कि राजा साहिब पूछ बैठे,—आपलोगोंकी प्रशंसा?

गौरी बाबूने कहा,—आपका शुभ नाम पण्डित ज्ञानदत्तजी है। इस समय हिन्दी संसारमें आपकी…… …

राजा साहिबने बात काटकर कहते हुए कहा,—अच्छा! प० ज्ञानदत्त आप ही हैं? बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका दर्शन मिला। आपकी कृतियोंसे तो मैं भलीभाँति परिचित था, परन्तु वैयक्तिक साक्षात्कार नहीं हुआ था। हर्षकी बात है कि आज वह भी हो गया।

यह कहते हुए राजा साहिबने ज्ञानदत्तजीसे हाथ मिलाया। ज्ञानदत्तजीने कृतज्ञताका भाव दिखलाकर कहा,—गौरी बाबूको धन्यवाद है कि इन्होंने आज आपके साथ परिचय कराया।

इतनेमें घंटी बजी। ये लोग बाहर नहीं जा सके, फिर अपनी जगहपर आकर बैठ गये। आते समय उस युवतीने फिर बड़े संकोचके साथ ज्ञानदत्तकी ओर दृष्टि-निक्षेप किया। ज्ञानदत्त भी उत्तर देनेसे नहीं चूके। राजा साहिबने यह कहकर इनलोगोंको विदा करनेमें देर नहीं की कि,—बैठिये, फिर बातें होंगी।

प्रणय

पाठकगण समझ गये होंगे कि यह युवती कौन है। इनलोगोंके आ बैठनेपर उसने अपने पिता राजा साहिबसे पूछा,—यह कौन हैं बाबूजी ?

राजा साहिबने कहा—यह वही हैं जिनके लेखोंकी तुम बहुत प्रशंसा किया करती हो बेटी।

वैभव और उच्चतासे भी स्नेहकी वृद्धि होती है। युवती राजकुमारीकी श्रद्धा ज्ञानदत्तके प्रति और भी बढ़ गयी। उसके प्रश्नोंकी झड़ी इस समय न टूटती, किन्तु न-जाने क्यों वह और कुछ न पूछ सकी। जान पड़ता है कि उसने यही समझकर विशेष कुछ न पूछा कि यह भी तो नव-परिचित हैं। अथवा नाटक शुरू हो गया था, इसलिए भी हो सकता है कि वह न पूछ सकी हो। किन्तु यह बात सम्भव नहीं। क्योंकि ज्ञानदत्तके सम्बन्धमें अधिक जानकारी प्राप्त करनेमें उसे जो आनन्द आता, उसका शतांश आनन्द नाटक देखनेमें नहीं आ सकता था। सबसे बढ़कर बात यह जँचती है कि यदि वह ज्ञानदत्तसे परिचित न होती तो उनके सम्बन्धमें अवश्य पूछती। यद्यपि वह उनके स्थूल शरीरसे परिचित नहीं है, किन्तु हृदयसे बहुत कुछ परिचित है। इसलिए राजो ज्ञानदत्तकी अपरिचिता होते हुए भी परिचिता है। और फिर, राजोमें क्या इतनी भी बुद्धि नहीं है ? वह एक पराये युवकके सम्बन्धमें अपने पितासे अधिक पूछती ही कैसे ? वह अपने मनमें क्या सोचते ? ऊपरकी बात पूछना क्या राजोके लिए साधारण

लज्जाकी बात है ? वह तो ज्ञानदत्तके सामने मुँह ढँक लेती, किन्तु क्या करे उसके पिताको इतना पर्दा करना पसन्द ही नहीं था। यद्यपि राजा साहिबको यह बात भी पसन्द नहीं थी कि स्त्रियाँ स्वतन्त्रता-पूर्वक सड़कोंपर फिरें। किन्तु वह अपने घरकी स्त्रियोंको स्वाभाविक रीतिसे बनावटी पर्दा न रखनेका उपदेश देते थे। बहुओंके लिए तो कम, पर राजोके लिए खासकर उनकी ऐसी ही शिक्षा थी।

रातके साढ़े आठ बजे नाटक समाप्त हो गया। सब लोग उठ खड़े हुए। राजा साहिबने पूछा,—क्या आप गौरी बाबूके मकानके पास ही रहते हैं या और कहीं ?

ज्ञानदत्तके बोलनेके पहले ही गौरी बाबू बोल उठे,—यह तो आपके मकानके ठीक सामने रहते हैं।

राजो जरा बगल हटकर खड़ी थी; किन्तु उसके कान इधर ही लगे हुए थे। उसकी इच्छा थी कि यदि इनको भी बाबूजी अपनी मोटरपर ले चलते तो बड़ा अच्छा होता। लेकिन कहूँ कैसे ? मन-ही-मन अपने आराध्यदेवसे प्रार्थना करने लगी।

राजा साहिबने कहा,—तब तो बड़ा अच्छा सुयोग है। मैं आशा करता हूँ कि अब आपसे कभी-कभी भेंट होती रहेगी।

ज्ञानदत्तने कहा,—अवश्य।

राजा साहिबने गौरी बाबूसे फिर पूछा,—और (काशी बाबूकी ओर संकेत करके) आपका परिचय नहीं मिला।

प्रणय

गौरी बाबूने कहा,—आप मेरठके जिला-जज थे। असहयोगमें आपने उस पदका त्याग कर दिया। आपका शुभ नाम बाबू काशी प्रसाद खंडेलवाल है। देशसेवाकी धुनमें हर समय मस्त रहा करते हैं।

राजा साहिबने उनसे भी हाथ मिलाया। बाद सबलोग सड़कपर पहुँच गये। विदाईके समय राजा साहिबने गौरी बाबूसे कहा,—न हो, पंडितजी मेरी मोटरपर बैठ जायँ। क्योंकि हमलोगोंको तो एक ही जगह जाना है।

गौरी बाबूने कहा,—जी नहीं; आप चार आदमी हैं कष्ट होगा। मुझे उसी तरफसे जाना है, जरूरी काम है। पंडितजीको वैसे ही छोड़ता जाऊँगा।

राजा साहिबने 'अच्छा' के सिवा कुछ नहीं कहा। सबलोग रवाना हो गये। दुःख है कि राजोकी इच्छा पूर्ण न हुई। ज्ञानदत्तने कुछ नहीं कहा। क्या उनकी इच्छा राजा साहिबकी मोटरपर बैठनेकी नहीं थी? यदि थी, तो उन्होंने कुछ कहा क्यों नहीं? भला राजो तो स्त्री थी, स्त्रियोंका लज्जा-संकोच ही भूषण है; परन्तु ज्ञानदत्त तो पुरुष थे, उन्हें कहनेमें क्या लज्जा थी?

आज ज्ञानदत्तको मालूम हुआ कि गौरी बाबू, राजा साहिबके परिचित हैं। गाड़ीमें बैठ जानेके बाद पूछा,—क्यों गौरी बाबू, राजा साहिबसे तुम्हारा कितने दिनोंका परिचय है।

गौरी बाबूने कहा,—बाबूजीके समयका ही।

प्रणय

ज्ञानदत्त—मगर मैंने तुम्हें इनके यहाँ कभी आते-जाते नहीं देखा।

गौरी—निष्प्रयोजन ऐसे लोगोंके यहाँ जाना ठीक नहीं होता। बाबूजीकी मृत्युके बाद तो राजा साहिब मेरे यहाँ आये थे। उस दिन एक काममें मैं भी उनके साथ ही उनके मकानपर पहुँचा था। (ज़रा सोचकर) ओ, ठीक है, उस समय तुम इस मकानमें नहीं रहते थे।

ज्ञानदत्त—सामने लोग क्या उनके घरके थे?

गौरी—हाँ। एक उनका छोटा लड़का था और जो स्त्री उनके सामने बैठी थी वह उनकी कन्या राजो थी। दूसरी स्त्रीको मैं नहीं पहचान सका। लेकिन मैं समझता हूँ, वह स्त्री राजा साहिबके घरकी नहीं थी।

ज्ञानदत्त—सम्भव है, वह भी राजा साहिबकी कन्या ही हो।

गौरी—राजा साहिबके सिर्फ एक लड़की वही राजो है। इस साल वह मैट्रिक पास हुई है।

ज्ञानदत्त—स्त्रियोंको पढ़ाने-लिखानेका शौक राजा साहिबको अधिक है क्या?

गौरी—बहुत। राजा साहिबके ख्यालात बड़े अच्छे हैं। यही है कि सब काम परोक्ष रूपसे करना चाहते हैं। सार्वजनिक संस्थाओंकी पूरी सहायता किया करते हैं, किन्तु गुप्त रीतिसे।

प्रणय

राजोके विवाहके उपलक्ष्यमें एक लाख रुपया सार्वजनिक कामोंमें देंगे, यह बात हमलोगोंसे हार चुके हैं।

ज्ञानदत्त—क्या अभीतक लड़कीका विवाह नहीं किया है?

गौरी—नहीं। बीस वर्षसे पहले लड़कीका विवाह करना उन्हें पसंद नहीं है। किन्तु इसका विवाह तो बीससे पहले ही—इसी सालमें करेंगे। बातचीत हो रही है। हो क्या रही है, एक तरहसे ठीक ही समझिये। अच्छा हाँ, अब इसकी चर्चा छोड़ो, जो बात अधूरी रह गयी, है, उसे कहो।

ज्ञानदत्त—कौनसी बात? क्या वही नाटक-सम्बन्धी? अब तो समय बहुत कम है, फिर कभी बातें होंगी।

काशी—अभी तो ८-९ ही बजे हैं, चलिये बातें करते हुए मैदानकी तरफसे घूम आया जाय।

काशी बाबूकी बातसे सबलोग सहमत हो गये। जब गाड़ी मैदानकी ओर चल पड़ी, तब ज्ञानदत्तने कहना शुरू किया,—हाँ, जो मैं कथानकके सम्बन्धमें कह रहा था, सो बात यह है कि हिन्दीके अधिकांश नाटकोंमें यह देखनेमें आता है कि एक दृश्यका दूसरे दृश्यके साथ इतना कम सम्बन्ध होता है कि यह समझमें ही नहीं आता कि ग्रन्थकारने इसे क्यों लिखा।

गौरी—हाँ यार यह बात तो जरूर है। इसके अलावा आजकलके नाटकोंमें कोई-कोई दृश्य व्यर्थ ही इतना लम्बा और कोई-कोई

चरित्र-चित्रण व्यर्थ ही इतना बढ़ा दिया जाता है कि धैर्य-च्युति हो जाती है।

आनन्दने कहा,—यही तो; चतुर नाटककारका काम तो यह है कि वह प्रत्येक भावको अत्यन्त संक्षेपमें भर दे—परिस्फुट कर दे; और वह पाठकों, श्रोताओं या दर्शकोंका चित्त आदिसे अन्ततक समान भावसे खींच सके; साथ ही नाटकके बीच-बीचमें आपेक्षिक विश्रामके लिए ऐसे दृश्योंकी अवतारणा करनी चाहिए जिनके द्वारा भाव-ग्राहिका शक्तिपर प्रयोजनसे अधिक दबाव न पड़े। किस भावका विश्लेषण कहाँतक ठीक है, यह नाटककारको जानना चाहिए। तीसरी बात है—चरित्रांकण; किसी देश या समाजका नाटक उस देश या समाजका सच्चा चित्र होता है इसलिए कहा जा सकता है कि नाटक संसारका सच्चा चित्र है। अतः जिस प्रकार संसारमें अनेक तरहके मनुष्य होते हैं, उसी तरह नाटकोंमें भी सब पात्रोंका चरित्र भिन्न-भिन्न तरहका होना जरूरी है। चरित्र-चित्रणमें स्वाभाविकताकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। देखिये, अभी जो नाटक देखा गया है, उसमें राजा अपने दरबारियोंसे बातें करता-करता कविता कहने लगा! यह कितनी अस्वाभाविक बात है! राजा तो पुत्र-शोकसे व्याकुल हो रहा था और रानी छाती पीट-पीटकर गजब ढाती हुई शोक-प्रदर्शन कर रही थी; इतनेहीमें विदूषक आया और कफनेकी गठरी उठाकर राजाके मस्तकपर रखकर नाचने लगा।

दर्शक-मण्डलीने जोरोंका ठहाका लगाया, खूब तालियाँ बजीं, "खूब," "एक्सलेंट," "कैपिटेल" आदि हर्ष-सूचक ध्वनियाँ हुई। आप ही बतलाइये कि उस समय कितना दुःख हुआ?

गौरी—आपका कहना तो बहुत यथार्थ है, पर भाई असल बात तो यह है कि जनताकी रुचि बदल गयी है। हमारे यहाँकी दर्शक-मंडली हास्य-रसकी भूखी है। जहाँ किसी गम्भीर विषयकी अवतारणा हुई कि उसे नींद आने लग जाती है। इसलिए यदि थियेट्रिकल कम्पनियाँ ऐसा न करें तो भूखों मर जायँ।

ज्ञानदत्त—मैं पेशेवाली कम्पनियोंके विषयमें कुछ भी नहीं कहना चाहता और न कही रहा हूँ। मैं ऐसे अभिनेताओंके अभिनयोंके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर कर रहा हूँ, जो इसकी बदौलत रोटी नहीं खाते, बल्कि समाज-संस्कारके लिए सुरुचि-पूर्ण नाट्य-कलाका प्रचार करना चाहते हैं, या यों कहिये कि जो लोग शिक्षोन्नतिके लिए अपना समय तथा धन इस काममें लगाते हैं।

गौरी—यह भी कैसे हो सकता है? सोचनेकी बात है, नाट्य-संस्थाएँ चन्देपर चला करती हैं। यदि सदस्योंकी रुचिके अनुकूल नाटक न खेले जायँ तो संस्था ही टूट जाय।

ज्ञान—किन्तु समाजका सुधार करनेवाले लोग अपनेको 'हाँमें हाँ भरनेवाला' नहीं बनाते। उन्हें उद्दण्डता-पूर्वक पवित्र और निस्वार्थ हृदयसे जनताकी परवाह न करके सुधारका बीड़ा उठाना पड़ता है। जो वैद्य रोगीके नाराज होनेके भयसे उसे कड़वी दवा

नहीं देगा, वह क्या चिकित्सा करेगा ? इस समयकी जनतामें मान-सिक दुर्बलता बहुत है । कुरुचि-पूर्ण घटनाओं-परिपूर्ण और अति-रसात्मक अभिनयोंके देखते उसकी रुचि विकृत हो गयी है अवश्य, पर शिक्षित समाजको इसका सुधार करना चाहिए । बस, मैं यही कहता हूँ कि आजकलके अभिनय मुझे पसन्द नहीं आते । किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि मैं नाटकोंको हेय दृष्टिसे देखता हूँ । मैं तो यह चाहता हूँ कि नाटकोंमें अनुराग रहे, क्योंकि ऐसे नाटकोंका जन्म होनेसे कुछ ही दिनोंमें जनताकी रुचि स्वयं ही परिमार्जित हो जायगी और अभिनेताओंको यश प्राप्त होगा ।

काशी—आपके विचार बड़े ही अच्छे हैं । वास्तवमें नाटकमें धर्मोंका मजाक बेतरह खटकता है । मजाकको नाटकका एक सामान्य अंश होनेमें कोई आपत्ति नहीं, पर यह क्या कि स्थान-स्थानपर मजाक ? मेरी तो यह राय है कि नाटकमें उचित स्थानपर थोड़ा मजाक अवश्य रहे, पर वह भी शिक्षापूर्ण और जनताको हँसानेके साथ-साथ शिक्षित करनेवाला हो ।

इतनेमें गाड़ी मैदानका चक्कर लगाती हुई पं० ज्ञानदत्तके मकान-के सामने आकर खड़ी हो गयी । ज्ञानदत्त उतर पड़े । गौरी बाबूने सबेरे बिदापुर चलनेके लिए तैयार रहनेको कहा और बिना कुछ उत्तर पाये ही वह रवाना हो गये ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

"अभीतक तुम चुप बैठे हो? यार हो तुम बड़े अकर्मण्य।" यह बात गौरी बाबूने कमरेमें प्रवेश करते ही कही।

ज्ञानदत्तने कहा,—तुम व्यर्थ हठ करते हो, मुझे वहाँ न ले चलो।

गौरी—तुम बहुत ही भूल कर रहे हो। सांसारिक कुचक्रोंसे घबराकर दूर हटते जाना, अपनेको पतित करना है।

ज्ञान—क्या तुम यह कहना चाहते हो कि नरकका कीड़ा नरकमें ही पड़ा रहे?

गौरी—नहीं। मैं यह चाहता हूँ कि नरकमें रहकर कीड़ेको अधीर नहीं होना चाहिए, बल्कि वीरता-पूर्वक अपने कष्टोंके निवारणका यत्न करना चाहिए। परमात्मा जो कुछ दिखावें और करें, सबमें शान्त होकर आनन्दित रहना चाहिए।

ज्ञान—किन्तु मैं इस प्रकार आनन्दित होना नहीं चाहता। 'बधसे भला त्याग।'

गौरी—'किन्तु त्यागसे पहले इसका विचार कर लेना आवश्यक होता है कि वह वस्तु बध्य अथवा त्याज्य है या नहीं।

ज्ञान—जो बात आँखों देखी जाय, उसपर विचार करनेकी

कोई जरूरत नहीं। खून करनेवालेको प्रत्यक्ष देखकर भी उस खूनी-पर यह विचार करने बैठना कि उसने खून किया या नहीं, सर्वथा अनुचित है।

गौरी—खून करनेवालेको देखनेपर भी हमको विचार करना ही पड़ता है कि हत्याका उद्देश्य क्या था और यहाँ तो वह बात ही नहीं। मैं आपसे पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि बुद्धिकी सहायता बिना केवल मानसिक वृत्तियाँ अन्धी हैं। मन और इन्द्रियोंको बुद्धिके अधीन रखनेमें ही कल्याण है। बुद्धिद्वारा प्रत्येक कार्यके भले-बुरेका विचार करके किसी कामका करना या न करना ही जीवनका प्रशस्त मार्ग है। किसी कामको बिना सोचे-विचारे करना ठीक नहीं।

ज्ञान—मैंने अच्छी तरह सोच-समझ लिया है गौरी बाबू, उसका त्याग करनेमें ही हित है।

गौरी—तुम बड़े कठोर हृदयके मनुष्य हो।

ज्ञान—ऐसा न कहो। उसका त्याग करनेमें मुझे कितनी यंत्रणा हो रही है, यह मैं ही जानता हूँ।

गौरी—अच्छा, जो तुम्हारे जीमें आवे, वही करो; किन्तु वहाँ चलना पड़ेगा।

ज्ञान—चलनेसे मेरा कष्ट और भी बढ़ जायगा।

गौरी—बढ़ने दो। आज मुझे यह बात अच्छी तरह मालूम

हो गयी कि तुम्हारे हृदयने किसी दूसरी वस्तुका आश्रय ले लिया है, इसीसे तुम इतने विमुख हो रहे हो।

ज्ञान—सो क्या ?

गौरी बाबूने ज्ञानदत्ताका हाथ पकड़कर तैयार होनेका संकेत करते हुए कहा,—अब उठो, 'सो क्या' का उत्तर मैं न दूँगा।

ज्ञान—तो फिर कौन देगा ?

गौरी—इसका उत्तर समय देगा।

ज्ञान—क्या इस विषयमें मेरे विचार तुम्हें पसन्द नहीं हैं ?

गौरी—हैं, पर उसके प्रति इतने शीघ्र सशंकित प्रमाणके आधार-पर तुम्हारे हृदयका कुछ निश्चय कर लेना, मुझे खल रहा है। खासकर ऐसी अवस्थामें जब कि स्वयं कह चुके हो कि उसके हाथका लिखा हुआ वह पत्र नहीं था !

ज्ञानदत्त थोड़ी देरतक चुप रहे। बाद उठे। कपड़ा-लत्ता ठीक करने लगे। जान पड़ता है कि गौरी बाबूकी अन्तिम बात काम कर गयी। सम्भव है कि उनके हृदयने रमाकी अन्तिम-परीक्षा लेना स्थिर कर लिया हो।

गौरी बाबू यह कहकर चले गये कि 'तुम तैयार रहो, मैं घर जाता हूँ। भोजन करके अभी आता हूँ। काशी बाबू आते होंगे, बिठा रखना।'

ज्ञानदत्त अपना सामान ठीक करनेमें लगे थे। राजा साहिबके नौकरने आकर कहा,—राजा साहिब आपसे भेंट करना चाहते हैं। आपको कब फुरसत मिलेगी ?

प्रणय

ज्ञानदत्तने कहा,—चलो, अभी आते हैं।

'बहुत अच्छा' कहकर नौकर चला गया। पन्द्रह-बीस मिनटके बाद ही पं० ज्ञानदत्तजी भी मोटरपर चढ़कर राजा साहिबके मकान-पर पहुँचे। इन्हें देखते ही राजा साहिब अभ्यर्थना करनेके लिये उठकर खड़े हो गये और बड़े आदरके साथ एक कुर्सीपर बिठाया। कहा,—आपको बड़ा कष्ट हुआ, क्षमा कीजियेगा।

ज्ञानदत्तने कहा,—व्यर्थकी बातोंसे मुझे लज्जित न करें। इसमें कष्टकी कौनसी बात है? कहिये क्या आज्ञा है?

राजा—बात यह है कि रानीने हिन्दू-संगठन और शुद्धिपर एक लेख लिखा है। पत्रमें प्रकाशित करानेकी उनकी अभिलाषा है। कई बार कह चुकी, मैं सदा हीलाहवाली करता रहा कि कहीं ऐसा न हो कि आप उसे प्रकाशित न करें। इसीसे मैंने अब-तक नहीं भेजा। क्योंकि यदि वह लेख भेजा जाता और पत्रमें स्थान न पाता तो उनका उत्साह भङ्ग हो जाता। कल आपके जाते ही उन्होंने मोटरपर चर्चा की। आज फिर तड़के आकर कह गयी, इसीसे......

ज्ञानदत्त जी वहींसे बोल उठे,—यह हर्षकी बात है, कौनसा लेख है,—देखूँ।

राजा साहिबने नौकरसे लेख मँगवाकर पं० ज्ञानदत्तको दिया। उन्होंने उसे आद्योपान्त पढ़ा। यद्यपि उसमें न तो कोई गाम्भीर्य था और न कोई नवीनता थी, तथापि ज्ञानदत्तको वह लेख बहुत

पसन्द आया। शायद यही सोचकर कि, स्त्री-जातिका इतना उत्साह सराहनीय है। जो भी हो उस लेखके गुण-दोषको जानते हुए भी ज्ञानदत्तने कहा,—अच्छा मैं आर्डर किये देता हूँ, परसोंके अंकमें यह लेख प्रकाशित हो जायगा। लेख अच्छा है।

राजो दीवारके सहारे आड़में खड़ी सुन रही थी। 'लेख अच्छा है, सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। राजोके हृदयके हर्षका अनुमान वे ही लगा सकते हैं जो पहले-पहल कोई लेख लिखकर सफल हुए होंगे। परसोंके समाचार-पत्रमें राजोका नाम छपा रहेगा, भला और क्या चाहिए? किन्तु वह ज्ञानदत्तकी कृपासे छपेगा, इस कृतज्ञताको राजो कभी न भूलेगी। इतनेसे उपकारके लिए वह ज्ञानदत्तके हाथ बिक गयी। यदि ज्ञानदत्तको वह हृदय-स्थित न कर चुकी होती तो तुरन्त ही कमरेमें चली जाती। किन्तु न-जानें क्यों वह ज्ञानदत्तके सामने न जा सकी। जानेके लिए पैर आगे बढ़ाकर फिर उसने पीछे खींच लिया। श्रद्धेयके सामने भी श्रद्धालुको जानेमें संकोच होता है, यह बात राजोने प्रमाणित कर दी।

राजा साहिब कुछ कहना ही चाहते थे कि उनकी दृष्टि राजोके बढ़े हुए पैरपर पड़ी। उन्होंने तुरन्त ही पहचान लिया। समझ गये कि वह आना चाहती है, किन्तु उससे आया नहीं जाता। बोले,—आ बेटी।

ज्ञानदत्तकी दृष्टि दरवाजेपर पड़ी। राजो शर्माजी चालसे

किञ्चित् सिर झुकाये चली आ रही थी। ज्ञानदत्तने दृष्टि समेट ली। राजो आकर एक किनारे कुर्सीपर बैठ गयी। राजा साहिबने कहा,—पं० ज्ञानदत्तजी तेरे लेखकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। ले, परसों तेरी इच्छा पूरी हो जायगी।

राजोने सिर झुकाये हुए ही हाथ जोड़कर एक बार दृष्टि ऊंची करके ज्ञानदत्तकी ओर देखते हुए पितासे कहा,—यह आपकी कृपा है।

ज्ञानदत्त कुछ कहना चाहते थे, किन्तु न तो उनका साहस ही हुआ और न उन्हें कोई उपयुक्त शब्द ही मिला। इसलिये मानस-कोषमें इतनी उद्विग्नतासे शब्दान्वेषण करने लगे कि उनका कलेजा धकधकाने लग गया।

इतनेमें राजा साहिबने कहा,—अच्छा हिन्दू-संगठन और शुद्धिके सम्बन्धमें आपके क्या विचार हैं?

राजा साहिबने उक्त बात कहकर वह पन्ना ही उलट दिया, जहाँ ज्ञानदत्तको राजोकी बातके प्रत्युत्तरमें कहनेके लिए शब्द मिलता। अब तो उस पंजका मिलना ही असम्भव है। स्त्री-जातिकी विजय हो गयी; उसने अपनी महत्ता दिखला दी; पं० ज्ञानदत्त मुँह ताकते रह गये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो राजा साहिबने अपनी गुणवती लजीली कन्याका पक्ष लिया। कुचले हुए सर्पकी भाँति झल्लाकर उनका हृदय दूसरी ओर मुड़ा। किन्तु उस झल्लाहटमें विषकी ज्वाला न थी, वरं पश्चात्तापका आकर्षण था; दूसरेके

डँसे जानेकी सम्भावना न थी, बल्कि उसकी फुंकार अपनेको ही पीड़ा पहुँचानेवाली थी।

पिताने प्रश्न किया। शान्त-स्वभावा राजो उत्तर सुननेके लिए आशाभरी दृष्टिसे पंडित ज्ञानदत्तकी ओर निहारने लगी। उसे यह देखना है कि इस विषयमें ज्ञानदत्तके और उसके विचार एक ही हैं या विभिन्न। ज्ञानदत्तने गम्भीर भावसे कहा,—हिन्दू-संगठनका होना बहुत जरूरी है; इससे हमारा भविष्य समुज्वल होगा। इसमें मेरा वही विचार है, जो नेतालोग समाचार पत्रोंमें तथा व्याख्यानोंमें समय समयपर प्रकट कर चुके हैं और कर रहे हैं। किन्तु शुद्धिके सम्बन्धमें मेरे विचार कुछ भिन्न हैं। जबतक हिन्दुओंमें पूर्ण संगठन न हो जाय, उनमें जातीयताका भाव पैदा न हो जाय, वे अपना दायित्व न समझने लग जायँ, तबतक शुद्धि करना ठीक नहीं। इस समय शुद्धिसे लाभकी अपेक्षा हानि अधिक हो रही है। शुद्धिका काम तो जोरोंपर चल रहा है, किन्तु शुद्ध किये हुए लोगोंके लिए समाजमें उचित व्यवस्था नहीं। उन्हें उचित सम्मान देनेमें हिन्दू-समाज हिचक रहा है। सोचनेकी बात है कि, जो मनुष्य कुछ दिनोंतक दूसरे समाजमें बराबरीका दर्जा ग्रहण कर चुका है, और उसे उस समाजमें कोई अपमानित करनेवाला या हेय-दृष्टिसे देखनेवाला नहीं है, वह शुद्ध होकर हिन्दू-समाजमें आनेपर निरादृत होकर क्यों रहेगा? वह तो हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्मकी उच्चताको भलीभाँति समझते हुए भी

फिर पर-धर्मानुयायियोंसे जा मिलेगा। क्योंकि कोई मनुष्य जातीय अपमान नहीं सहन कर सकता। आजकल बहुधा यही बात हो रही है, इस समय कितने ही लोग शुद्ध होकर हिन्दू हो रहे हैं, किन्तु हिन्दुओंमें उचित स्थान न पानेपर वे उसे त्यागकर दूसरे धर्ममें चले जा रहे हैं। इससे बहुत बड़ी हानि हो रही है। ऐसे लोग हिन्दू-धर्मके कट्टर शत्रु बन जाते हैं। इसलिए मेरा विचार है कि शुद्धिका आन्दोलन बड़ी गम्भीरताके साथ चलानेमें लाभ है। पहले हमें अपने समाजमें रहना और उदारता लानेकी आवश्यकता है; बच्चे-बच्चेको धर्मका सच्चा रूप समझाना चाहिए। अभी हमारा समाज धर्मका अर्थ ही नहीं जानता। इससे अधिकांश मनुष्य धर्मको अपनी बपौती समझते हैं। ऐसे लोगोंको यह मालूम ही नहीं कि धर्म बिलकुल स्वतंत्र वस्तु है। धर्म किसी व्यक्ति-विशेष या समाज-विशेषकी पैतृक सम्पत्ति नहीं; जिस धर्मको जो मनुष्य मानता है, वही उसका धर्म है—चाहे उसका जन्म संसारके किसी भी पर-धर्मानुयायीके घर-बारमें क्यों न हुआ हो। धर्म वही उच्च है, जो उदारता-पूर्वक संसारके प्रत्येक श्रद्धालु मनुष्यको अपने गुणोंसे मोहित कर ले।

इसलिए शुद्धि भी ऐसे ही लोगोंकी होनी चाहिए, जो हिन्दू धर्मकी उच्चताको भलीभाँति समझ लें। इसमें शीघ्रता करनेकी आवश्यकता नहीं। क्योंकि हिन्दू-धर्मको इसकी आवश्यकता नहीं। कारण यह कि इस धर्ममें किसी तरहकी पोल नहीं। किन्तु अन्य

धर्मोंमें बहुत कुछ पोल है—संकीर्णता है; अतः वे यदि ऐसा करें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। हिन्दूधर्मका दरवाजा प्रत्येक श्रद्धालुके लिए सम-भावसे खुला हुआ है। इसका भीतरी और बाहरी रूप एकसा है। इसकी व्यापकता, गम्भीरता और उच्चतापर ऐसा कौन समझदार मनुष्य है जो मुग्ध नहीं हो सकता? इसके सिद्धान्त अकाट्य हैं।

इतना कहते ही घड़ीकी ओर दृष्टि गयी। पं० ज्ञानदत्त चौंककर बोले,—ओफ़, समय बहुत हो गया। मुझे इसी ट्रेनसे बनारस जाना है, गौरी बाबू प्रतीक्षा करते होंगे। अच्छा अब आज्ञा दीजिये, इस विषयमें तो मेरे विचार जो कुछ हैं वे समाचार-पत्रसे आपको मालूम ही होते रहेंगे।

यह कहकर ज्ञानदत्त उठनेका उपक्रम करने लगे। राजासाहिबने पूछा,—क्या बनारस किसी जरूरी कामसे जा रहे हैं? संगठन और शुद्धिकी बात अधूरी रह गयी; आपके विचार तो प्रकट हो गये, किन्तु इस विषयमें मैं अपना एक भी सन्देह प्रकट न कर सका। खैर, फिर कभी बातें होंगी।

एक ही सिलसिलेमें इतनी बातें कह गये कि ज्ञानदत्तको उत्तर देते-देते रुक जाना पड़ा। राजा साहिब भी अपनी भूल समझ गये। बोले,—हाँ, वहाँ कोई अपना काम है?

ज्ञान—जी नहीं, वहाँ एक सभा होनेवाली है।

राजोसे न रहा गया। झट पूछ बैठी, कबतक आइयेगा?

प्रणय

आवेशमें उसके मुखसे ऊपरका प्रश्न निकलते ही वह मन-ही-मन सहम गयी। सच है, दिलका भाव छिपाये नहीं छिपता।

उसके प्रश्नमें संयोग-सूचक उत्तर पाते ही कितनी उत्कण्ठापूर्ण उत्सुकता थी, कितनी वेदना थी, यह और भावुक-हृदय पाठकों ज्ञानदत्तसे छिपी न रही। कहा,—चार पाँच दिनके भीतर ही लौट आऊँगा।

राजो और कुछ न पूछ सकी। सोचने लगी,—चार-पाँच दिनतक दर्शन नहीं मिलेंगे। पुरुष-जातिका विश्वास ही क्या? सम्भव है, महीनों लग जायँ।

राजा साहिब कुछ पूछनेहीवाले थे कि ज्ञानदत्त उठकर खड़े हो गये और नम्रतापूर्वक बोल उठे,—अब आज्ञा दीजिये, नहीं तो गाड़ी न मिलेगी।

राजो भी नीचा सिर किये उठकर खड़ी हो गयी। 'अच्छी बात है, आनेपर दर्शन दीजियेगा', कहते हुए राजा साहिब भी उठकर खड़े हुए और प्रणाम किया। राजोने भी दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। ज्ञानदत्तने आशीर्वाद देनेके बहानेसे एक बार आँख भरकर राजोको देखते हुए वहाँसे प्रस्थान किया।

वह चले गये। अब कई दिनोंतक उनकी सूरत दिखायी न पड़ेगी, यह सोचकर राजोका चेहरा बहुत उदास हो गया। रह-रहकर उसके दिलमें यही बात पैदा होने लगी कि अब न-जाने कब उनसे भेंट होगी। यदि ज्ञानदत्त उसके कोई लगते होते, तो अवश्य ही वह

अपने दिलका भाव घरवालोंसे प्रकट करती। किन्तु ऐसा न होनेके कारण लाचार हो वह उठकर ऊपर चली गयी, किसीसे कुछ नहीं कहा।

दिनभर राजोको कोई काम अच्छा नहीं लगा। भोजन तो उसे विषसे भी अधिक विरक्त प्रतीत हुआ। न तो पुस्तक पढ़नेमें ही उसका जी लगा और न किसी दूसरे काममें ही। उसको इस अस्थिरतामें ही रजनीके अभिसार करनेका पथ छोड़कर सन्ध्या धूसर दिगन्तकी ओर चली गयी। आसमानमें तारे चमक उठे। रातमें उसे नींद भी अच्छी तरह नहीं आयी। वह कई बार सोयेमें चिहुक उठी, झपकी लगते ही ज्ञानदत्तकी याद आजाती और वह अल्पकालके लिए बेचैन हो जाती थी। उसकी बेचैनीका मूल कारण क्या था, इसका निर्णय विज्ञ पाठक-पाठिकाएँ स्वयं ही करें।



बीसवाँ परिच्छेद

जिस प्रकार क्रोधका अन्तिम परिणाम सर्वनाश है, उसी प्रकार चिन्ताका फल मृत्यु या निर्बलता है। चिन्तिता रमा अब बहुत कुछ निडर हो गयी। दिवाकर इस कदर उसके पीछे पड़ गया कि एक दिन तो वह आत्म-हत्या करनेमें तुल गयी।

रातका समय था। मूसलधार वृष्टि हो रही थी। रमाकी माँ अपने मैके गयी थी, इसलिए वह कमरेमें अकेली सोयी थी। आज रातके समय पति-विरहातुरा रमा नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें निमग्न जाग रही थी। आज यदि उसके सिरपर कोई होता तो, दिवाकरकी ऐसी हिम्मत कभी न पड़ती। वह अपनी व्यथा किससे कहे? संसारमें कौन सुनेगा? स्वामी तो पत्रका उत्तरतक नहीं देते। बड़ी देरके बाद उसने बत्ती बुझायी और निद्रा देवीका आवाहन करने लगी। लगभग एक बजे रातको उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई,—सो गयी।

इधर दिवाकर रमाकी नींदकी बाट जोह रहा था। आज कई दिनोंसे रमाको न देख पानेके कारण वह अपनी नीच वासना-की पूर्तिके लिए एक दाईसे मिला और उसे दो रुपये देकर कहा,—आज तू मुझे किसी हिकमतसे रमाके घरमें पहुँचा दे, मैं तुझे पाँच रुपये इनाम और दूँगा।

प्रणय

दाईने पहले तो मंजूर नहीं किया, बाद लालचमें आकर कहा,—'दस रुपये दो तो मैं भीतर पहुँचा दूं।'

दिवाकरने स्वीकार कर लिया। दाईने दस बजे रातको घुड़साल-के पास मिलनेके लिए कहा।

ठीक समयपर दिवाकर वहाँ पहुँच गया। आधे घंटेके बाद दाई आ गयी। दिवाकरने कहा,—मैं बहुत देरसे खड़ा हूँ।

दाईने कहा—हाँ। किन्तु वह अभी जाग रही हैं। पहले तो कोई पोथी पढ़ रही थीं, पर अब शान्त लेटी हैं। मैं समझती हूँ, अब बहुत जल्द सो जायँगी।

दिवाकर—वह चिट्ठी दे दी? उसने कुछ कहा भी?

दिवाकरने ज्ञानदत्तके नामसे एक पत्र लिखकर दिया था, जिसमें आज रातको गुप्त रीतिसे मिलनेकी बात लिखी थी। रमाको कई कारणोंसे पत्रपर विश्वास नहीं हुआ। चाहे उसने दिवाकरपर सन्देह न भी किया हो, पर इतना तो वह अवश्य समझ गयी कि ये उनके अक्षर नहीं हैं। दाईके सम्बन्धमें उसने यही सोचा कि यह बेचारी क्या जाने, किसीने दिया होगा, इसने लेकर मुझे दे दिया। फिर भी पूछा,—यह पत्र तुझे किसने दिया? दाईने कहा,—मैं उस आदमीको नहीं पहचानती रानी।

दिवाकरने पूछा,—अच्छा, तू जाकर देख आ, वह सो गयी या नहीं।

दाईने कहा,—आप साथ ही चलें। क्योंकि मुमकिन है कि

प्रणय

वह उठकर दरवाजा बन्द कर ले। आज सोते समय कहती थी, कि मैं जाती हूँ, देखना किवाड़ बन्द करके ताला लगा देना और उसकी चाभी मुझे दे देना। इसलिए यदि वह ताला बन्द कर देगा तो मेरा कोई वश न चलेगा। इससे कहती हूँ कि तुम भी चलो। मैं एक कोठरीमें तुम्हें छिपा दूँगी यदि वह अपने हाथसे भी ताला बन्द करने आवेगा तो तुम्हें देख न सकेगी।

दिवाकरने ऐसा ही किया। भीतर जाते ही दाईको बात याद हुई दरवाजेकी आवाज होते ही रमा चौंक बैठी,—कौन ?

दाईने धड़कते हुए हृदयसे कहा,—मैं हूँ। दरवाजा बन्द कर रही हूँ।

यदि कोई पत्र न मिला होता तो रमा इतनी चौकन्नी न रहती। झट उठी और बत्ती लेकर आँगनमें पहुँची। प्रकाश देखते ही दाईका प्राण सूख गया। यदि रमा चार कदम और बढ़ी होती तो सारा भेद खुल जाता।

तबतक दाई चाभी लेकर आ गयी। रमा उसे लेकर अपने कमरे-में चली गयी। दाई दिवाकरको कोठरीमें करके दरवाजा लगाकर अपने सोनेकी जगह पहुँची ही थी कि रमा बत्ती हाथमें लिए फिर निकली और आकर ताला खटखटाकर देख आयी।

दिवाकरकी कार्य-सिद्धि रमाकी निद्रितावस्थामें होनेवाली थी, इसलिए वह कोठरीसे निकलकर रमाका कमरा झाँक लिया करता था। यह घर उसका अपरिचित नहीं था। जरा भी खटका होनेपर

इधर-उधर छिप जाता था और भ्रम सिद्ध होनेपर फिर कोठरीमें जा बैठता था।

रमाके सो जानेपर दिवाकर चुपकेसे उसके कमरेमें घुस गया। थोड़ी देरतक शान्त खड़ा रमाके सोनेकी आहट लेता रहा। जब उसे यह निश्चय हो गया कि वह बेखबर सो गयी है, तब उसने भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिया।

उस समय दिवाकर फूला नहीं समाता था। कुछ ही मिनटकी देर है, जब उसकी अभिलाषा पूरी हो जायगी। फिर तो सदाके लिए कण्टक दूर हो जायगा। धीरेसे उसने रमाका शरीर-स्पर्श किया। रमा हिलीतक नहीं। उसने आँचर पकड़कर आहिस्तेसे थोड़ा हटा दिया। फिर भी रमाको खबर न हुई। उसने एक दियासलाई घिसकर प्रकाश किया। देखा कमल-नेत्र सम्पुट मारे हुए हैं। वस्त्र हट जानेके कारण कलशवत् स्तनका कुछ भाग अपनी अनुपम छटा दिखाकर मनको जबर्दस्ती चुराये लेता था। दिवाकरकी काम-वासना चरम सीमापर पहुँच गयी। वह मदान्ध हो गया, अतः प्रकाशदेव भी मुख छिपाकर भाग गये। अब अधिक देरतक वह अपनेको न रोक सका। रमापर बलात्कार करनेके लिए—उसका सतीत्व नष्ट करनेके लिए—अधमनारकी और निर्लज्ज दिवाकर चारपाईपर बैठ गया।

मँचमँचाहटसे रमाकी नींद कुछ खुलसी गयी। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह जाग गयी। दिवाकर सन्नाटा खींचकर सोचने लगा,—अब जागनेसे ही क्या होगा। छातीसे लगा

लेना चाहिए। फिर सोचा, यदि इतनेपर भी इसने पहलेकी भाँति मेरी बात न मानी तो सारा किया-कराया काम चौपट हो जायगा। इसलिए इसे सो जाने देना ही ठीक है। किसी तरह सतीत्व नष्ट करनेके बाद ही इसे मालूम होने देना उचित है। तब तो अधिकसे अधिक यही न होगा कि झुँझलायेगी। मैं उस झुँझलाहटका आनन्द लूटूँगा। हमेशाके लिए रास्ता साफ हो जायगा। जिन्दगी-भर यह सुन्दरी मेरी चेरी बनकर रहेगी। जो कहूँगा, वही करेगी। किसी भी कामके लिए नाहीं न कर सकेगी। यदि करेगी भी तो आजकी रातका स्मरण कराके मना लूँगा।

यही विचार करके वह कुछ देरतक मस्त रहा। रमा फिर सो गयी। राक्षसने देवीके पैर छुए। शायद देवीने समझा कोई भक्त होगा, चरणामृत लेना चाहता होगा। राक्षसने कठोरता दिखलायी, देवीके सतीत्व-भ्रमने उसे सतर्क कर दिया। राक्षसने बल-पूर्वक काम लेना चाहा; देवीके तेजने धक्का देकर उस पातकीको तारे गिना दिया; राक्षसकी लांछन-पूर्ण कृतिने उसके मुखपर अन्धकारकी कालिमा पोत दी थी। देवी पहचान न सकी। उसे प्रकाशकी शरण लेनी पड़ी। राक्षसने फिर झपटकर देवीको पकड़ना चाहा; देवीने ऐसा कसके झटका दिया कि वह धड़ामसे दूर जा गिरा।

सच है! मानसिक वृत्तियोंके पतनसे मनुष्यका बल-पौरुष धूलमें मिल जाता है, और इनके उन्नतोन्मुख होनेसे संसारकी सारी शक्तियाँ स्वयं दौड़ आती हैं। यदि ऐसा न होता तो दिवाकर-

को एक सुकुमारी अबला इस प्रकार न पछाड़ सकती; किन्तु तेजके सामने तम क्योंकर टिक सकता है?

चोरकी शक्ति आधी होती है। दिवाकर अधिक साहस न कर सका। सँभलकर उठा और झटसे दरवाजा खोलकर भागा। बाहर जाकर ताला बन्द पाया। कोठरीमें जा छिपा। यदि उसमें तनिक भी बुद्धि होती तो आजकी घटनासे वह शिक्षा ग्रहण कर लेता कि किसी साध्वी रमणीका सर्वस्व अपहरण करना साधारण काम नहीं।

इधर रमाका शरीर थरथर काँप रहा था। उसे अपना कर्त्तव्य-पथ दिखायी ही न पड़ता था। कभी तो वह अपनी भूल स्वीकार करती थी कि ऐसे समयमें हल्ला मचाना चाहिए था, वह नीच पकड़ा गया होता तो अच्छा था और कभी यह सोचती थी कि उसका भाग जाना अच्छा ही हुआ; सम्भव था, पकड़ा जानेपर वह कोई झूठा कलंक मुझपर भी लगाता। उसे इस बातकी सुध ही न थी कि बाहरके दरवाजेमें ताला बन्द है, दुष्टात्मा घरमें छिपा बैठा है। बहुत कुछ सोचनेके बाद उसने अपने जीवनका अन्त कर डालना निश्चय किया। यत्न सोचने लगी। सामने लटकती हुई तलवारपर दृष्टि पड़ी। उठी, और तलवारको खींचना ही चाहती थी कि किसीके आनेकी आहट मिली। तुरन्त ही रुक गयी। विचार-दिशाने पलटा खाया। सोचा,—आत्महत्यासे बढ़कर संसारमें कोई पाप नहीं। वही महान पाप मैं करने जा रही थी। किस लिए?

एक अधमके भयसे। कितनी लज्जा-जनक बात है! क्या मैं अपने धर्मकी रक्षा भी नहीं कर सकती? प्राचीन देवियोंके गौरवका तनिक भी प्रभाव मेरे हृदयपर नहीं पड़ा? संसारमें मैं क्या नहीं कर सकती। ऐसा कभी न करूँगी। नीच दिवाकरसे ईश्वर मेरी रक्षा करेंगे। आज भी तो परमात्माने ही मुझे जगाकर बचाया है!

इतनेमें उसका छोटा भाई विजय आँखें मलता हुआ आया और उद्विग्न स्वरमें बोला,—बहुत जल्दीसे चाभी दो, सब लोग आ गये। मैंने इतना सहेजा था, पर किसीने मुझे नहीं जगाया।

रमाने कुछ नहीं कहा। तकियेके नीचेसे चाभी उठाकर भाईको दे दी। विजय दौड़ता हुआ गया और दरवाजा खुला छोड़कर ही चला गया।

दिवाकरके लिए अचानक ही सुयोग प्राप्त हुआ। अबतक वह गहरी चिन्तामें पड़ा हुआ था। यदि सबेरे लोग देखेंगे तो क्या गति होगी? आज रमा जरूर सबसे कह देगी। अब कुशल नहीं। यूँ कह दिया जायगा कि रमाके बुलानेसे आया था। यदि वह न चाहती तो मैं भीतर कैसे आता? किन्तु जब देखा कि विजय दरवाजा खुला छोड़कर ही चला गया, तब धीरेसे उठा और छिपकर अपने घर चला गया। उसके सिरका भार बहुत कुछ हलका हो गया—अचानक।

जयजयकारकी ध्वनिसे रमाका ध्यान भंग हुआ। पहले तो वह चौंक पड़ी कि यह आवाज कहाँसे आ रही है। बाद उसे स्मरण

हुआ कि आज ही साढ़े तीन बजेकी गाड़ीसे नेतालोग आनेवाले थे। जान पड़ता है कि वे आ गये। घड़ीमें देखा तो साढ़े चार बज गये थे। 'जय-ध्वनि' उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी। घरकी सब स्त्रियाँ उठ गयीं। भावजोंने रमाको भी जगा दिया। अब वह ध्वनि दरवाजेपर सुनायी पड़ने लगी। मालूम हुआ कि गाँवके बहुतसे लोग साथमें हैं।

सब स्त्रियाँ देखनेके लिए ऊपर खिड़कीके पास जाने लगीं। रमाको भी जबर्दस्ती साथ लेती गयीं। देखा, हजारों आदमी साथमें हैं। गैसकी बत्ती जल रही है। तीन युवक हाथीपर बैठे हैं। पीलवान हाथीको बिठानेका उपक्रम कर रहा है। पं० सदायतनजी नीचे खड़े हैं। नौकर कुर्सियाँ निकालनेमें लगे हैं। आकाश बिलकुल स्वच्छ हो गया है।

तीनों युवक हाथीसे उतर पड़े। सदायतनजीने बड़े सम्मानसे सब लोगोंको यथायोग्य स्थानपर बिठाया। रमाकी दृष्टि भी उधर जा पड़ी। न-जानें क्यों उसका सारा दुःख दूर हो गया, फिर भी आँखोंसे आँसू गिरने लगा।

थोड़ी ही देरमें बिलकुल उजाला हो गया। सबलोग नित्य-कर्ममें लग गये। स्त्रियाँ भी नीचे चली आयीं। किन्तु रमा वहीं बैठी रह गयी। एक बार फिर अच्छी तरहसे देख लेनेकी उसकी इच्छा थी। साध पूरी करके वह भी नीचे उतर आयी। यदि जलपानकी चीजें तैयार करनेका भार उसपर न होता, घरमें माँ मौजूद होती तो

कदाचित् वह नीचे उतरती ही न। किन्तु दायित्वने उसे वहाँ नहीं रहने दिया। फिर भी वह यह सोचकर नीचे आ गयी कि अवसर मिलनेपर फिर आकर देख जाऊँगी।

मकानके आधे भागकी छतपर सभा-भवन बनाया गया था। आठ बजे सभाका कार्य प्रारम्भ हो जायगा, अतः सबलोग जल्दीमें पड़े थे। झटपट स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त होकर सबलोग जलपान करने बैठे। रमा सब चीजें भाइयोंको देकर एक बार फिर ऊपर जाकर देख आयी। इस बार भी वह अधिक न ठहर सकी। भय था, कोई बुलाले न; संकोच था, लोग क्या कहेंगे।

जलपान कर चुकनेके बाद पं० सदायतन तथा और भी कई प्रमुख व्यक्तियोंके साथ नानी महाशय सभामें गये। निश्चित समयपर सभाका कार्य प्रारम्भ हो गया। प्रस्ताव तथा अनुमोदन-समर्थनके बाद पं० सदायतनजीने सभापतिका आसन ग्रहण किया। मंगलाचरण हुआ, दो-चार छोटे-मोटे व्याख्यान हुए। बाद पं० ज्ञानदत्तजीका भाषण हुआ। इनकी वक्तृता सुनकर जनता मुग्ध हो गयी।

यह देखकर बनारस, मिर्जापुर तथा इलाहाबादसे आये हुए कुछ बंगाली तथा मद्रासी सज्जन जो कि अच्छी तरहसे हिन्दी नहीं जानते थे, कह उठे कि,—खास-खास बातें अंग्रेजीमें कह दी जायँ—ताकि हमलोग भी समझ सकें।

पण्डित ज्ञानदत्तने अपने पढ़े-लिखे भाइयोंकी प्रार्थना विशेष रूपसे स्वीकार की और एक घंटेतक हिन्दीमें व्याख्यान दे चुकने-

के बाद भी आधे घंटेतक अंग्रेजीमें बोले। उनकी लच्छेदार अंग्रेजी भाषा सुनकर पंडित सदायतनजी पुलकित हो उठे। क्यों न हो! जनता जिसके व्याख्यानकी प्रशंसा कर रही है, विद्वानलोग कह रहे हैं—जैसा रूप है, वैसा ही गुण भी है, वह मनुष्य उनका जामाता है; इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है? अभीतक तो उन्होंने पहचाना भी न था। क्योंकि एक तो आज तीन-चार वर्षके बाद उन्होंने पंडित ज्ञानदत्तको देख पाया है, दूसरे उनकी दृष्टिमें तो ज्ञानदत्त एक अत्यन्त साधारण तथा अल्प शिक्षित लड़का है; उन्हें क्या मालूम कि ज्ञानदत्तने इतनी उन्नति कर ली? किन्तु जब उन्हें खड़ा होकर यह कहना पड़ा कि "इसके बाद पं० ज्ञानदत्तजीका ओजस्वी भाषण होगा, आपलोग ध्यानसे सुनें" तब उन्हें यह नाम कुछ परिचितसा जान पड़ा। कुछ क्या, पूर्ण परिचित। रूप भी परिचित प्रतीत हुआ। काशी बाबूसे पूछने-पर सन्देह निवृत हो गया। इसके लिए उन्हें काशी बाबूके सामने बहुत ही लज्जित होना पड़ा। फिर तो वह इतने व्यग्र हो उठे कि कब ज्ञानूका अभिभाषण समाप्त हो और बातें करनेकी लालसा पूर्ण हो। मारे हर्षके उन्होंने अपने बड़े लड़केको बुलाकर तुरन्त ही यह सुसम्वाद सुनाया। उसने कहा,—मैं तो अच्छी तरह पहचान रहा था बाबूजी! किन्तु जब आपने कुछ नहीं कहा, तब मुझे भी सन्देह हो गया कि सम्भव है यह कोई दूसरे सज्जन हों—क्या एक शक्लके दो आदमी नहीं होते?

प्रणय

मनुष्य-स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। नालायक लड़केको लोग अपना पुत्र कहनेमें अपमान समझते हैं और किसी योग्य तथा प्रतिष्ठित पुरुषको जोड़-जाड़कर अपना नाती बना लेनेमें गौरव। जिस ज्ञानदत्तकी चर्चा करनेमें भी इस परिवारके लोग अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे, उसीकी चर्चा आज वे बड़े हर्षसे करने लगे। यहाँतक चर्चा बढ़ायी गयी कि दस-पाँच मिनटके भीतर ही श्रोता-मंडलीके बच्चे-बच्चेको यह बात मालूम हो गयी कि व्याख्याता महाशय पं० सदायतनजीके दामाद हैं। यदि कोई समीपस्थ मनुष्य कानके पास झुककर पूछता तो पं० सदायतन बड़े गर्वसे सिर हिलाकर सूचित करते कि, हाँ, यह मेरे दामाद ही हैं।

सभामें काशी बाबूकी 'स्कीम' पढ़ी गयी। पं० ज्ञानदत्तके व्याख्यानसे प्रभावान्वित किसानों तथा जमींदारोंने बड़े उत्साहसे उसे स्वीकार किया। पाँच आदमियोंकी एक कमेटी बना दी गयी। उसके स्थायी सभापतिका पद पं० सदायतनजीको शिरोधार्य करना पड़ा। लगभग बारह बजेके अध्यक्ष तथा आगत सज्जनोंको धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई। पं० ज्ञानदत्त, गौरी बाबू तथा काशी बाबूको साथ लेकर सदायतनजी अपने घर आये। साथमें बहुतसे गण्यमान्य सज्जनोंकी भीड़ थी। आज सबके हृदयमें नया उत्साह है नयी उमंग है।

भोजनके समय पं० ज्ञानदत्तको साथ लेकर सदायतनजी स्वयं चौकेमें बैठे। यह बात बिलकुल नयी थी। सदायतनजी किसी

रिस्तेदारके साथ भोजन करने नहीं जाते थे; किन्तु ज्ञानदत्तको आज यह सौभाग्य स्वाभाविक ही प्राप्त हुआ। अब रमाका आदर बहुत बढ़ गया। जो भावजें पहले रमाके सामने गुमान करती थीं, वे लज्जित हो गयीं। पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ भी रमाके भाग्यकी सराहना करने लगीं। किन्तु इतना सम्मान प्राप्त करनेपर भी रमाने किसी बातका घमड नहीं किया—बल्कि अपनी नम्रता और विनय-शीलता-से सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। स्वामीकी इतनी प्रशंसा सुनकर अब उसका हृदय पति-सम्मिलनके लिए इतना क्षुभित हो उठा कि उसके हृदयसे रातकी घटनाका दुःख ही दूर हो गया। पहले खिड़कीसे देखनेपर उसके दिलमें जो उत्कंठा उत्पन्न हुई थी, उससे अब भिन्न हो गयी। पहले मिलन-क्षोभमें ग्लानिका उद्गार था, अब कौतूहलका उमड़ता हुआ प्रवाह; पहले वह पत्रोत्तर न देनेके लिए स्वामीको उलाहना देती, रोती, अपने ऊपर बीती हुई बातोंको बिलख-बिलखकर सुनाती, अब वह पत्रोत्तर देनेके लिए समय न मिलनेपर समवेदना प्रकट करेगी, हास्य-युक्त केलि-कलह करेगी, और करेगी बीती हुई बातोंकी मार्मिक भाषामें गम्भीरता-पूर्ण स्पष्ट समालोचना।

इधर ज्ञानदत्त भी रमासे मिलकर सारा भेद सुननेके लिए उत्सुक थे। यदि घरपर होते तो सम्भवतः रमाकी याद भी न करते; किन्तु यह तो उनका घर नहीं। रमा क्या साधारण पिताकी पुत्री है? उनका इतना आदर रमाके ही कारण तो हो रहा है। यदि रमा उनसे

न ब्याही गयी होती तो इस घरमें ऐसा सत्कार-सम्मान क्योंकर होता? अतः स्वामी इस उपकारका भार ज्ञानदत्तको दबा बैठा। सोचा,—किसके आशीर्वादसे प्राप्त इस समाचारके रहस्यका अनुसन्धान लगाना चाहिए। देखना है, क्या क्या उत्तर देती है।

इस प्रकार प्रतीक्षामें पूरे दो दिन बीत गये। स्त्रियाँ ज्ञानदत्तको घरमें बुलानेके लिए अवसर ढूँढती रह गयीं, सफल न हुईं। ज्ञानदत्तको एक मिनटके लिए भी अवकाश न मिला। नये कार्यकी व्यवस्था करनेमें ही रातके एक-दो बज जाते। उसके बाद भी उनके पास बाहरी आदमियोंका समूह जुटा रहता। थोड़े आदमी वहीं सो जाते थे। इतने आदमियोंमें एक-न-एक आदमी रातभर जागता ही रहता था। तीसरे दिन ज्ञानदत्त भी अपने साथियोंके साथ कलकत्ता जानेको तैयार हुए। घरकी स्त्रियोंने पं० सत्यायतनजीके पास सन्देशा कहला भेजा कि आज वे किसी प्रकार भी न जाने न पावें।

ऐसा ही हुआ भी। बहुत अनुरोध और अनुनय-विनय करनेपर भी ज्ञानदत्तको छुट्टी नहीं मिली। गोपी बाबू और काशी बाबूको भी रह जाना पड़ा। सन्ध्याके समय घूम फिरकर आनेके बाद भोजन करके सबलोग सो गये। पं० ज्ञानदत्त एकान्तमें जाकर समाचार-पत्रके लिए लेख लिखने लगे। कई दिनोंकी झंझटके कारण, तथा नींद पूरी न होनेके सबबसे आज सबलोग बहुत जल्द गहरी नींदमें निमग्न हो गये। पं० ज्ञानदत्तने ऊँघ-ऊँघकर किसी प्रकार अग्रलेख समाप्त किया। अब और लिखना उनकी

शक्तिसे बाहर था। निद्रादेवीने आक्रमण कर दिया। आक्रमण ही नहीं किया—अधिकार भी जमा लिया। वह सोनेके लिए उठकर जाना ही चाहते थे कि एक नौकरने आकर बड़े अदबके साथ कहा,—सरकारको घरमें बुला रही हैं।

इतना सुनते ही ज्ञानदत्तको नींद उचट गयी। सोचने लगे,—क्या करना चाहिए। उससे भेंट करना ठीक नहीं। आँखों-देखी बातकी परीक्षा क्या ली जायगी? फिर न-जानें क्या सोचकर वह उठे और सुनहली रिष्टवाच कलाईमें बाँधते हुए बोले,—ठहरो चलता हूँ।

यह कहकर वह कमीज गलेमें डालकर बटन लगाते हुए स्लीपर चटकाते चल पड़े। आँगनमें पहुँचनेपर नौकर सीढ़ी-की ओर संकेत करके बोला,—ऊपर चले जाइये सरकार, वहीं बहूजी वगैरह हैं।

यह कहकर नौकर मकानके बाहर निकल आया। ज्ञानदत्त ऊपर गये। उस समय उनकी ठीक वही दशा थी जो किसी बड़ी सभामें पहले-पहल व्याख्यान देनेके लिए प्लेटफार्मपर जाते समय नये व्याख्याताकी हुआ करती है। ऊपर पहुँचते ही सरहजोंने आवभगत की और एक कमरेमें ले जाकर बिठाया। एकने कहा,—जीजाजी तो ऐसे बदल गये कि मैं पहचान ही न सकी।

ज्ञानदत्तने सहमते हुए नीचा सिर किये कहा,—यह मेरा दुर्भाग्य है कि आपलोग मुझे इतना भूल गयीं।

बड़ी सरहज—क्यों न हो! यह तो नहीं कहते कि बिना दर्शन दिये ही भागे जाते थे।

ज्ञान—क्या करता; दो दिनतक ड्योढ़ीपर पड़े रहनेपर भी तो पुकार नहीं हुई।

मझली सरहज बोलनेमें बड़ी प्रवीणा थी। उसने घूँघटके भीतर मुस्कराकर कहा,—तो क्या हमलोग भी 'नरना' हैं कि बाहर पुकारती फिरें?

ज्ञान—नहीं जी, आपलोग तो नौकरोंसे बुला भेजती हैं, जिसमें किसीको मालूम भी न हो।

बड़ी—क्यों जीजाजी, क्या वह सचमुच ही लोगोंको पुकारती फिरती है?

ज्ञान—भाई और भतीजेको पुकारनेमें लज्जा ही क्या है?

इसी प्रकार थोड़ी देरतक ज्ञानदत्त "श्वशुरपुर-निवासं स्वर्ग-तुल्यं नराणाम्" का अनुभव करते रहे। पश्चात् बड़ी सरहजने ज्ञानदत्तके हाथमें अँगूठी पहनायी और एक गिन्नी देकर प्रणाम किया। शेष पाँच सरहजोंने भी एक-एक अशर्फी देकर प्रणाम किये।

यह रसम पूरी हो जानेके बाद ज्ञानदत्तको बैठनेके लिए कहकर सब स्त्रियाँ वहाँसे खिसक गयीं। वे सरहजें दूसरे घरमें जाकर रमाके साथ खींचातानी करने लगीं। वह संकोचके कारण ज्ञानदत्तके

पास जानेके लिए राजी ही न होती थी। अन्ततः रमाकी विजय हुई। सब स्त्रियोंको हार माननी पड़ी।

पड़ोसकी एक युवती जो कि पदमें ज्ञानदत्तकी साली लगती थी, बोली,— इस तरहसे काम न चलेगा। तुमलोग यहाँसे हट जाओ, मैं सब काम अभी ठीक किये देती हूँ।

सब स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ हो गयीं। वह ज्ञानदत्तके पास जाकर बोली,—चलिये, उस कमरेमें बैठिये, यहाँ आपको कष्ट है। राम-राम, बातोंकी धुनमें इसकी सुध ही नहीं रही।

ज्ञानदत्तने कहा,—कष्ट कुछ नहीं है, अच्छा तो है।

वह मुस्कराकर तिरछी निगाहोंसे प्रेमकी सूचना देती हुई बोली,—मैं यहाँ रहने ही न दूँगी।

ज्ञानदत्तने हँसकर कहा,—यदि इतनी बड़ी दृढ़ प्रतिज्ञा है, तो चलिये वहीं चलता हूँ मुझे वहाँ चलनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

तदनन्तर वह स्त्री ज्ञानदत्तको ले जाकर उसी कमरेमें कर आयी, जहाँ रमा थी। उनके भीतर जाते ही उसने तुरन्त बाहरसे किवाड़ लगा दिये।

यह कमरा धनी गृहकी सूचना दे रहा था। ज्ञानदत्त पलँगपर बैठ गये। रमा उनके पैरों पड़ी। संकोच भावसे बोली,—धन्य भाग्य कि आपके दर्शन मिले। कहिये, कुशलसे तो थे?

ज्ञानदत्तने कहा—हूँ।

उदासीनता-पूर्ण 'हूँ' सुनकर रमाके हृदयपर गहरी चोट लगी।

उसकी सारी आशाएँ हवा हो गयीं। आगे वह कुछ भी न बोल सकी। बड़ी कठिनाईसे केवल पानका डब्बा दे सकी, सो भी अपने नेत्रमें रहकर नहीं। बड़ी देरतक निस्तब्धता छायी रही। उसे आशा थी कि स्वामी कुछ पूछेंगे, हँसायेंगे, प्यार करेंगे, पर वैसा कुछ भी न हुआ। वह तो 'हूँ' के अतिरिक्त एक शब्द भी नहीं बोले। रमा भी मान किये बैठी रही। सोचने लगी,—जब वह कुछ बोलते ही नहीं हैं तो मैं क्यों बोलूँ? यह भी तो नहीं पूछा कि तुमपर क्या-क्या बीती। एक बार आँख उठाकर मेरी ओर देखते भी तो नहीं हैं। तने बैठे हैं। देखती हूँ, इस प्रकार कबतक ऐंठे रहते हैं। बातें होनेपर इन्हें अपनी भूल स्वयं ही मालूम हो जायगी।

रमा अपने विचारकी तरंगोंमें डूबी हुई थी, ज्ञानदत्त उठे और दरवाजा खोलकर बाहर चले आये। उसने उन्हें कमरेसे बाहर निकलते समय देखा था; किन्तु वह यह निश्चय न कर सकी कि रुष्ट होकर वह जा रहे हैं। सोचा,—पीकदान तो यहीं है, यदि बाहर जाकर ही थूकना चाहते हैं, तो जाने दो, मैं न बोलूँगी। किन्तु जब वह नहीं आये, तब उसे अपनी भूल मालूम हो गयी। उठी, और बाहर निकलकर देख आयी; कहीं दिखायी न पड़े। बाद पलंगपर आकर लेट गयी,—व्याकुल हो उठी। हाय, कुछ पूछ भी न सकी, वह चले गये। अब उनका दर्शन दुर्लभ हो गया। वह समय उनसे मान करनेका नहीं था। अब वह अधिक देरतक अपनेको सँभाल न सकी। सिसकने लगी। थोड़ी देरके बाद वह

प्रणय

सोचकर उठी कि,—चलकर तन्न-तन्नकरके उन्हें खोजूँगी। जहाँ सोये होंगे, वहीं पकड़ूँगी। पैरों पड़कर क्षमा-भिक्षा माँगूँगी, रोऊँगी, कलपूँगी,—गिड़गिड़ाऊँगी। उन्हें पिघलना ही पड़ेगा। मैंने अपराध ही कौनसा किया है कि वह न पिघलेंगे? यदि वह क्षमा न करेंगे तो मैं भी उनका दामन न छोड़ूँगी। इसमें कोई क्या करेगा? यही न, यदि कोई देखेगा तो हँसेगा, मुझे निर्लज्जा कहेगा। बला से! जिसके जो जीमें आवे, कहे! मैं अपने सर्वस्वको छोड़-कर सलज्जा बनना नहीं चाहती।

रमा उन्मादिनीकी भाँति झपटकर दरवाजेपर गयी। किवाड़ खोलकर बाहर निकली। जो रमा आजसे पहले कभी आँगनमें भी सन्नाटी रातमें नहीं आयी थी, वही आज निर्भीकता पूर्वक बाहर बरामदेमें आकर खड़ी हो गयी। उसके हृदयमें भयका अंकुर ही उत्पन्न नहीं हुआ। किन्तु आगे पैर न बढ़ा सकी। रातका पिछला पहर था, नौकर-चाकर जाग गये थे। बहुत जोर लगाया, पर आगे बढ़नेका साहस न हुआ। लाचार होकर फिर अपने कमरेमें वापस चली आयी। हाय! हाथमें आयी हुई वस्तुको अपनेसे खो बैठी। कल सबेरे ही वह चले जायँगे। भेंट होनेकी कोई उम्मीद दिखलायी नहीं पड़ती—प्रभो!

तड़के ही स्टेशन जानेकी तैयारी होने लगी। सदायतनजीने कहा,—अब यहाँतक आये हो, तब घंटे-दो-घंटेके लिए घर भी हो आते बेटा। हमारे समधी साहब सुनेंगे तो दुःखी होंगे न?

प्रणय

आनन्दनने नम्रता-पूर्वक कहा,—जी हाँ, विचार तो मेरा भी ऐसा ही था, किन्तु लाचारी है। आपको तो ज्ञात ही है कि दैनिक पत्रके सम्पादनमें कितना झंझट रहता है। किसी बातका दायित्व बुरा होता है।

सदा—अच्छा, जैसा उचित समझो वैसा करो, मुझे कोई आपत्ति नहीं। (गौरी बाबूकी ओर मुड़कर) अहोभाग्य कि आपका भी पदार्पण हुआ। मैं आशा करता हूँ कि आप इसे प्रथम और अन्तिम आगमन न करेंगे।

गौरी बाबूने कहा,—इस जीवनमें ऐसा होनेकी सम्भावना नहीं है। वयोवृद्ध होकर आपने इतनी शुश्रूषा की, इसे आजीवन मैं नहीं भूल सकता। लेकिन यही सन्तोष है कि माँ-बापकीसी सेवा दूसरा कौन कर सकता है और उनकी सेवामें बच्चोंको लज्जा ही किस बातकी।

सदा—यह समझना आपका बड़प्पन है; मैं तो किसी योग्य नहीं हूँ। अब तो ईश्वरसे यही निवेदन है कि आपलोगोंके सौंपे हुए कार्यको मैं किसी तरह कर सकूँ।

काशी—वाह! यह अच्छी कही। अभी हमलोग तो आपके लड़के हैं। सौंपेंगे आप या हमलोग?

इतनेमें हाथीपर हौदा कसकर महावत आ गया। सदानन्दजी जामाताकी यथेष्ट विदाई की और स्वयं भी स्टेशनतक पहुँचानेवाले

थे, किन्तु इसे अनुचित समझकर ज्ञानदत्त तथा उनके साथियोंने मना किया।

जब तीनों आदमी हाथीपर सवार हो गये, तब ज्ञानदत्तके बड़े साले भी जा बैठे। हाथी चिग्घाड़ मारकर झूमता हुआ स्टेशनकी ओर चल पड़ा। एक-एककर बहुतसे लोग हाथीके पीछे हो लिये।

गौरी बाबूने कहा,—मुझे हाथीकी सवारीपर डर लगता है।

ज्ञानदत्तके साले साहबने कहा,—जी हाँ, यह कोई आरामकी सवारी तो है नहीं। सड़क न होनेके कारण लाचार होकर हाथीकी सवारी करनी ही पड़ती है। यह सवारी मुझे भी पसन्द नहीं आती।

इस प्रकार बातें करते हुए सबलोग स्टेशन पहुँचे और निश्चित समयपर ट्रेन आ गयी। फर्स्टक्लासमें सवार होकर वे निर्दिष्ट स्थानके लिए रवाना हो गये। मायाधर दुखी हृदयसे घर लौट आये।



प्रणय

इक्कीसवाँ परिच्छेद

विद्यापुरमें ग्रामोपकारी-सभाका कार्य बड़े उत्साहके साथ होने लगा। पं० सदानन्दजीने अपनी विद्या-बुद्धिसे आवश्यक नये कानून और व्यवसायका प्रबन्ध करके लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया। समूचा गाँव उनका अनुरक्त दास बन गया। यहाँतक कि ब्याहादिके समय भी लोग उन्हें अपने घरका मालिक समझकर उनसे अनुमति लेने लगे। जिस प्रकार वह कार्य करनेके लिए कहते, जितना खर्च करनेके लिए कहते, वैसा ही लोग कार्य करते और उतना ही खर्च करते। वर्ष डेढ़ वर्षके भीतर गाँवका इतना सुधार हो गया कि भूखा-नंगा मनुष्य तो ढूँढ़नेपर भी न मिलता। किसीको खाने-खर्चेकी तंगी नहीं रह गयी। सबलोग दिनभर अपने घरका काम-काज करते और फुरसतके समय कारखानोंमें जाकर चहल-पहलके साथ पैसा कमाते। स्त्रियाँ जहाँ पहले दिनभर गपाष्टक करनेमें लगी रहतीं, कलह करतीं, वहाँ अब रमाके पास बैठकर अच्छी-अच्छी बातें सुनने लगीं, सीने-पिरोने एवं बेल-बूटेका काम सीखने लगीं, तथा पढ़ने-लिखने लगीं।

ज्ञानदत्तके जानेके बाद कुछ दिनोंतक तो रमा बहुत दुखी रही, किसी काममें उसका दिल लगता ही न था; यहाँतक कि जहाँ पहले कभी पढ़नेसे उसका जी ऊबता ही न था, वहाँ

प्रणय

अब इस घटनाके बाद उससे पुस्तकोंकी ओर ताका भी न जाता था। किन्तु जब उसने स्त्रियोंके सुधारका भार अपने ऊपर उठा लिया, तब उसका झुकाव दूसरी ओर हो गया। सच है! भले-बुरे कार्यका प्रभाव मानसपर पड़े बिना नहीं रहता। अब वह अपने स्वामीके सम्बन्धमें सोचने लगी—वह जहाँ रहें तहाँ आनन्दसे रहें, ईश्वर उन्हें समुन्नत बनावें और ऐसी बुद्धि दें कि वह मुझ निरपराधिनीको निरपराध समझने लग जायँ। ऐसा विचार होते ही उसे अपना कर्त्तव्य-पथ स्पष्ट दिखलायी पड़ा। स्त्री-समाज-सुधारका उसने बीड़ा उठा लिया। पर्देकी प्रथासे भी उसे हार्दिक घृणा हो गयी। मानो यहाँसे उसके जीवनका दूसरा युग प्रारम्भ हो गया। वह गाँवकी लड़कियोंको अपने पास बुलाकर पढ़ाने लगी। बाहर-भीतर निकलनेवाली स्त्रियोंको निश्चित समयपर धर्म-कथा सुनाने तथा घर-घरमें जाकर बहुओंको शिक्षा देने लगी। उसके दिलमें नीच-ऊँचका विचार ही नहीं रह गया। कुछ ही दिनोंके बाद उसने दो घंटेका समय शूद्रोंके लिए भी देना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दो वर्षमें ही केवल चमारोंको छोड़कर और किसी जातिका एक बच्चा भी अशिक्षित नहीं रह गया।

ईश्वरकी दयासे उसके सारे अपवादोंकी तो समाप्ति हो ही गयी, साथ ही उसके मार्गका कंटक भी दूर हो गया। रात-वाली घटनाके ठीक पन्द्रह दिनके बाद ही हैजेकी बीमारीमें दिवाकर-

की मृत्यु हो गयी। इतने अल्प समयके भीतर ही रमामें आश्चर्य-जनक परिवर्तन हो गया। एक अपवाद कुछ लोगोंमें और था; वह यह कि आनन्दके जानेके एक महीना बाद उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हुआ। बहुतोंने यह कहा कि जारज-पुत्र है। किन्तु जब बालक साल भरका हो गया और शक्ल सूरत ठीक आनन्दसे मिलने लगी, एवं रमाकी निःस्वार्थ लोक-सेवासे लोग वशीभूत हो गये, तब लोगोंका यह उपहास भी दूर हो गया,—यद्यपि रामपुरके लोगोंमें वह भ्रम ज्यों-का-त्यों बना रहा। वहाँके लोगोंका भ्रममें रहना किसी अंशमें ठीक भी था। क्योंकि पति-गृहसे केवल दो मासका गर्भ लेकर रमा यहाँ आयी थी। बारहवें महीनेमें वह अपने पिता-गृहमें सन्तानवती हुई। स्त्रियाँ बहुधा नौ महीनेका ही हिसाब जोड़ती हैं। ऐसी दशामें वहाँके लोगोंका वैसा समझना स्वाभाविक ही था। यदि कोई बाहरसे आकर बच्चेको देखता और रमाके पवित्र आचरणका अध्ययन करता तो उसकी समझमें आ जाता कि रमा दुराचारिणी है अथवा सदाचारिणी देवी है—नारी जगत्की शोभा बढ़ानेवाली है। किन्तु यहाँके लोगोंको इसकी क्या पड़ी थी कि वे इतनी छानबीन करते?

रमा दुराचारिणी है, बस इतना कहकर वे सन्तुष्ट थे। उनका कर्त्तव्य तो इतनेहीमें पूर्ण हो जाता था; अब यह काम तो रमाका है कि वह जिस तरह भी हो अपने निष्कलंक चरित्रको प्रमाणित करे या न करे।

प्रणय

अब रमाका ध्यान चमारिनोंकी ओर आकर्षित हुआ। एक दिन वह सन्ध्याके समय अपने भाई तथा चार-छः अन्यान्य स्त्रियोंको साथ लेकर चमरौटीमें गयी। वहाँ एक घरमें ओझाई हो रही थी। रमा वहाँ चली गयी। देखा, दो ओझे नयकवा, चनैनी, पचड़ा आदि गाकर अपने देवताको बुलानेके लिए झूम रहे हैं और सामने एक युवती चमारिन घूँघट काढ़े बैठी है। घरकी दो-तीन बूढ़ी स्त्रियाँ भी उसी घरमें एक ओर खड़ी हैं। मिट्टीके तेलकी बत्ती जल रही है।

उस समय काफी अन्धेरा हो चुका था। रमाको तथा उसके साथियोंको घरके भीतरके लोगोंमेंसे किसीने नहीं देखा। रमा आँगन-में खड़ी होकर उन सबको देखने लगी। अचानक एक ओझेने बड़े जोरसे हुंकार मारकर बत्ती बुझा दी। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसने जान-बूझकर बत्ती नहीं बुझायी—अपने पीरके आवेशमें बुझायी है। गनगनाती हुई आवाजमें बोला,—जल्दीसे पाँच बाती कै दीया जराउ नाहीं तौ हम जाथई।

जो चमारिनें घरमें खड़ी थीं वे उद्विग्न होकर बत्तीकी ओर दौड़ीं। समझा, यदि शीघ्र बत्ती नहीं जलायी जायगी तो देवता चले जायँगे। एकने कहा,—नाहीं महराज, जा जिन। हम लेई आवथई पाँच बाती कै दीया। हाथ जोड़थई देवता जा जिनि।

यह सब देखकर रमाको बड़ा कौतूहल हुआ। आगेकी लीला

प्रणय

[illegible] रमाने अपने भाईसे कहा,—तुम्हारे जेबमें कितना रुपया है भैया ?

भाईने कहा,—हाँ, है तो। क्यों, क्या करोगी ?

रमाने [illegible] कहा,—[illegible] [illegible] हो कि वे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] दूसरे दिन फिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible]। क्या दृश्य दिखलायी पड़ा, यह कैसे [illegible] जाय। हाँ, इतना अवश्य [illegible] जा सकता है कि रमाको तथा उसके साथियोंको [illegible] [illegible] ऐसा [illegible] चित्र दिखलायी पड़ा, जिसे [illegible] [illegible] बहुत बड़ी लज्जा उत्पन्न हो सकती है। यही कारण है कि इस समय उनमें किसीसे [illegible] और [illegible] नहीं गया। रमा भी मारे शर्मके गड़ गयी। उसपर कौनसा भूत सवार था कि उसने अपने भाईसे बड़ी लज्जाके लिए कहा ? हे पृथ्वी माता, तुम फट पड़ो ! रमा तुम्हारे पेटमें सदाके लिए घुस जाना चाहती है। अब वह भाईको मुख दिखलाना पसन्द नहीं करती। उसके हृदयकी वही गति हुई जो किसी महान अपराधीका हुआ करती है।

पाठक[illegible] समझ गये होंगे कि वह कौनसा दृश्य था। यदि न समझे हों तो और भी सुन लें। वह ऐसा दृश्य था, जिसके सामने बिजलीका प्रकाश भी लज्जित होकर बादलोंमें जा छिपा। वह ऐसा दृश्य था, जिसके कारण होनहार युवकोंका यौवन मिट्टीमें मिल जाता

है! वह ऐसा दृश्य था, जो स्त्री-पुरुषके लोक-परलोक, विद्या-बुद्धि, बल-पौरुषका नाश कर डालता है। और भी सुनोगे? वह ऐसा दृश्य था, जिसे कहनेमें, सुननेमें, लिखनेमें लज्जा आती है। वह ऐसा दृश्य था, जिसके समान संसारमें दूसरा कोई कुदृश्य है हो नहीं। ओझे इतने बड़े नीच और पाखंडी होते हैं, यह बात रमा और मायाधरको आज भलीभाँति मालूम हो गयी।

अब दर्शकोंकी समझमें आ गया कि जलती हुई बत्ती इसलिए बुझायी गयी थी, जिसमें घरके भीतर अन्धेरा हो जाय; देवताने पाँच बत्तीका दीपक केवल इसी लिए माँगा था, जिसमें बत्ती लानेमें देर लगे, घरके भीतरके लोग उसका जुगाड़ करनेमें लग जायँ और ओझोंकी मनोभिलाषा आसानीसे पूरी हो जाय। यदि रमा अपने भाईको साथ लेकर वहाँ न गयी होती तो कदाचित् वह वहाँसे न हटती और उचित यत्न करके तब घर लौटती। अथवा उसके भाई ही यदि अकेले होते तो वह भी ऐसा ही करते। किन्तु दोनोंके साथ रहनेसे दोनोंको एक दूसरेका इतना अधिक संकोच मालूम हुआ कि अविलम्ब सबलोग बाहर चले आये।

सम्भ्रान्त -कुलोत्पन्ना, सदाचारिणी, विदुषी, समाज-सेविका तथा आत्याभिमानिनी रमाका हृदय समाजकी मूर्खतासे नारी-जातिपर होनेवाले अत्याचारोंको प्रत्यक्ष देखकर विदीर्ण हो गया। सोचने लगी,—ओफ्! इस तरह न-जानें कितनी कुल-वधुएँ धर्म-भ्रष्ट हो जाती होंगी। कितनी तो यह भी न जानने पाती होंगी कि

प्रणाय

इसमें भी कोई धर्म-प्रपञ्च है; वे तो यह समझती होंगी कि देवताकी ऐसी ही मर्जी हुई होगी, इसमें कोई भी पाप नहीं है। हे प्रभो! वह दिन कब आयेगा जब नारी-जातिमें ज्ञान होगा—उनकी अज्ञानता दूर करेंगे—कर्तव्य पथ दिखलायेंगे—ढोंगियोंको समझनेकी शक्ति होगी?

इतनेमें मायाभगतने तीव्र स्वरमें चमारोंसे कहा,—दोनों ओझोंको लेकर तुमलोग अभी दरवाजेपर आओ।

उस समय उनका चेहरा तमतमाया हुआ था। अन्धेरा होनेके कारण चेहरेका भाव तो चमारोंको कुछ भी नहीं मालूम हुआ, किन्तु ध्वनिसे मन सभोंने इतना अवश्य लक्ष्य कर लिया कि जरूर कोई दंड मिलेगा।

यह कहकर मायाभगत घर लौटे। वह बैठे भी न थे कि दोनों ओझोंको लेकर चमारोंका जत्था आ पहुँचा। उस समयतक सदावरतलाल-जी हवा खाकर नहीं लौटे थे। मायाभगतने डंडसे दोनों ओझोंकी खूब खबर ली। कहा,—यह भी एक ओझाई है। बोल, फिर ओझाई करके किसीकी बहू-बेटीका धर्म नष्ट करेगा?

मारके आगे भूत भागता है। ओझे न तो अपनेको निर्दोष कहनेकी चेष्टा कर सके और न आश्चर्य ही प्रकट कर सके कि इन्हें यह बात क्योंकर मालूम हुई। हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए बोले,—अब ऐसा कभी न करब सरकार।

प्रणय

'नहीं अभी करेगा, यह कहकर उन्होंने फिर चार-चार बेंत दोनोंको जड़ दिये।

ओझे छटपटाकर जमीनपर गिर पड़े। चमारलोग डरके मारे चार कदम पीछे हट गये। उनलोगोंकी समझमें न आया कि मामला क्या है।

मायाधरने एक चमारको लक्ष्य करके कहा,—क्यों रे भुलइया, आजकल तूने इसी कामका अड्डा खोला है? अगर आजसे फिर कभी किसीके यहाँ ओझाई हुई तो मैं उसकी खाल खींच लूँगा।

भुलइया कुछ भी न समझ सका। उसने केवल इतना ही समझा कि सरकार ओझाईको नापसन्द करते हैं। इसीसे मायाधरकी यह कड़ाई उसे अनुचित भी मालूम हुई। किन्तु कुछ कहनेका साहस न कर सका।

धीरे-धीरे यह समाचार सरकारी कर्मचारियोंतक पहुँच गया। जिला-कलेक्टरसे लेकर दारोगातक सब ताक लगाये बैठे थे। अवसर पाते ही दारोगा तहकीकात करने पहुँचे। गाँवके बाहर चमारोंको बुलाया। कहा,—तुमलोग घबराओ मत, जैसा हम कहें वैसा इजहार दो। सदायतनके घरवालोंकी आदत छूट जायगी। उनके घरवालोंकी दुर्गति देखकर फिर कोई जमींदार तुमलोगोंकी ओर कड़ी नजरसे देखेगा भी नहीं—मारना पीटना तो दूर रहा।

कुबेरने कहा,—हम समझे रहै न पाउब सरकार!

प्रणय

दारोगाने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा,—क्यों मुकरता है? अच्छा, साला, इतना हठी है तो मैं तुझे जेलखानेमें बिठा दूँगा—हरामीका पिल्ला! जानता नहीं कि सरकारी राज्यमें शेर और बकरीको एक घाटपर, पानी पिलाया जाता है? किसकी हिम्मत है जो सरकारी हुक्मको आँख दिखा सके और सजा न पाए?

कुँवर—सरकार मालिक हैं, जबन चाहें तबन करें।

"फिर मुकरता जाता है,—साला!"—यह कहकर दारोगाने उसे कसके दो झापड़ लगाया।

एक सिपाही—अरे कुँवर, जो दारोगाजी कहें, वह क्यों नहीं करता। व्यर्थ ही क्यों मार खाता है! सच है, लातके देवता बातसे नहीं मानते। तुमलोग सब कुछ लिखाकर करोगे, पर पिटाई और फजीहत पा जानेके बाद।

कुँवर सिसकता हुआ बोला,—हजूर घरमें रहे न पाऊँ। दोहाई सरकारकी।

दारोगा—"इसके लिए फिकर न कर। मैं तेरे लिए दूसरी जगह घर बनवा दूँगा।" फिर क्या था, सब चमार राजी हो गये। इस प्रकार चमारोंको उभाड़कर पं॰ सदानन्द और उनकी पुत्री रमापर मामला चला दिया गया। पहले तो चमारोंकी हिम्मत ही नहीं पड़ती थी, किन्तु जब दारोगाने उन सभोंको एक जमींदारसे थोड़ी जमीन जागीरके तौरपर दिलवाकर वहीं बसा दिया, तब वे सब निडर हो गये। सोचा, अब यहाँ सदानन्द कुछ नहीं कर सकते।

प्रणय

इधर अंग्रेज कलेक्टरने पं० सदायतनको बुलाकर धमकाते हुए कहा,—तुम्हारे कामोंसे जाहिर होता है कि बिदापुरमें तुम अपनी सल्तनत कायम करना चाहते हो। खूनके मुकदमे भी तुम हजम कर जाते हो। इस लिए तुम्हारी स्पेशल मैजिस्ट्रेटी छीन ली गयी। अगर इतनेपर भी तुम कायदेसे न रहोगे, तो वह सजा दी जायगी, जिसकी तुमने कभी कल्पना भी न की होगी।

पं० सदायतनने बड़े शान्त और गम्भीर भावसे कहा,—मैं तो स्पेशल मैजिस्ट्रेटी छोड़नेहीवाला था। आपने बिना प्रार्थना किये ही मेरे ऊपरसे यह भार उतार दिया, इसके लिए मैं आपका विशेष कृतज्ञ हूँ। रही सल्तनत स्थापित करनेकी बात, सो बिलकुल झूठ है आपलोगोंकी संगतिसे अब मैं ऐसा मूर्ख नहीं रह गया हूँ कि इतनी शक्ति-सम्पन्ना गवर्नमेण्टके विरुद्ध राज्य स्थापित करनेकी चेष्टा करूँ। हाँ, यह अवश्य है कि ग्रामवासीके नाते मैं बिदापुरके लोगोंको सुखी रखनेके लिए प्रयत्न किया करता हूँ। यदि इसके लिए आप रंज हों तो यह मेरे लिए बड़े दुःखकी बात है।

पंडितजीकी निर्भीकता कलेक्टरके लिए असह्य हो गयी। तड़पकर बोला,—बस! चले जाओ यहाँसे। मैं सब समझ गया। चन्द दिनोंके भीतर तुम्हारी शेखी धूलमें मिलाकर छोड़ूँगा। इतनी बड़ी हिम्मत!

पंडितजीने निश्चिन्त भावसे उठकर चल दिया। उनपर

प्रणय

कर्तव्यकी धमकीका जरा भी असर नहीं पड़ा। आपत्तियोंसे घबराना कायरोंका काम है। कर्तव्यच्युत होना कापुरुषता है।

बाईसवाँ परिच्छेद

विद्यापुरसे वापस आकर पं० ज्ञानदत्त कुछ दिनोंतक एक दिनके लिए भी कभी बाहर नहीं गये। और कहींको दिलमें उत्कट इच्छा उत्पन्न होनेपर भी वह कहीं न जा सके। रमाका स्मरण आते ही उनका दिल धड़क जाता था। क्योंकि इस दफे विद्यापुर जाते समय चार-पाँच दिनमें लौटनेके लिए कह गये थे। अपने कथनानुसार वह ठीक पाँचवें दिन विद्यापुरसे चल भी पड़े थे। किन्तु रास्तेमें देर लग गयी। कारण यह था कि रमासे भेंट होनेपर उन्होंने जो नादानी की थी, उसके पश्चात्तापसे उनका शरीर शिथिल हो गया। दुःख है कि उस नादानीका ज्ञान उन्हें इतने दिनोंके बाद भी अबतक नहीं हुआ। रमा जिस प्रसन्नताके साथ मिली, वही उनके लिए खटकनेकी बात हो गयी थी। उन्होंने सोचा था कि मेरी असमर्थता उससे छिपी न होगी। पत्रोत्तर न पानेसे वह बहुत खिन्न हुई होगी, इसलिए पहुँचते ही विलाप करेगी, सिसक-सिसककर रोयेगी।

प्रणय

किन्तु रमाने बिलकुल विपरीत आचरण किया। ज्ञानदत्तने समझ लिया कि यह अवश्य कुलटा है। इसके दिलमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है। जब मनुष्यका किसी दूसरेसे स्नेह हो जाता है, तब उसका यही हाल होता है। इसीसे रमाका हाव-भाव देखते ही उनके सारे शरीरका रक्त खौल उठा। उसके पूछनेपर क्रोधको सँभालते हुए बोले,—'हूँ'। बाद जब रमा चुप हो गयी, तब तो उनका क्रोध और भी बढ़ गया। यहाँतक कि उठकर चले आये। उन्होंने शेष रात्रि करवटें बदलकर बितायी और भोर होते ही स्टेशनकी राह ली।

क्रोधकी मात्रा कम होनेपर नाना प्रकारके विचारोंकी लहरें उनके हृदयमें उत्पन्न होने लगीं। सोचा,—अपने क्रोधको दबाकर अन्तिम बार उसके मुखसे अपराध स्वीकार कराना चाहिए था। यदि वह स्पष्ट रूपसे स्वीकार न भी करती तो क्या। किसी प्रकार वह अपनेको निर्दोष भी तो प्रमाणित न कर सकती। बस, इतनेही-का तो काम था। कहना था कि भोलेपनमें भी इतनी प्रवंचकता भरी रहती है, सोनेके घड़ेमें भी इतना कड़वा विष भरा रहता है, यह बात अब मालूम हो गयी।

यदि रमाके प्रति ज्ञानदत्तके हृदयमें साधारण प्रेम होता तो इतना निश्चय हो जानेपर अवश्य ही वह अपने हृदयमें रमाको आजन्मके लिए त्याग देनेका दृढ़ संकल्प करके इस संकट और चिन्तासे मुक्त हो जाते। किन्तु रमाके असाधारण सम्बन्धने इतने

प्रणय

पर भी हालत [illegible] नहीं [illegible]। मन ही मन कहा—स्वार्थी रमा, तुझे यह कुपाठ किसने पढ़ाया? [illegible] संस्कार अगाध प्रेम रखती था, फिर यह क्या किया? तू मुझसे भी छल करती थी? जरा अपना और मेरा हृदय तो देख। तेरा हृदय इतना कपट पूर्ण है और हृदय इतना पवित्र और उज्ज्वल प्रमाण मिलनेपर भी न जाने क्यों मेरे कपटपूर्ण हृदय विश्वास नहीं होता—मैं तुझे अवश्य नहीं भुला सका विश्वासघातिनी! यह तूने क्या किया?

चिन्ता-व्यथा और रातभर जागना इतना बढ़ गया कि गाड़ीमें गौरी बाबूके विशेष अनुरोधसे थोड़ासा जल पीते ही उन्हें कै हो गयी। शरीरसे पसीना छूटने लगा, बेहोशी आ गयी। तृषा बहुत बढ़ गयी। परन्तु पानी भी न पचता था। दो घूँट पानी पाते ही उलटी हो जाती थी। क्रमशः रोग बढ़ता हुआ मालूम होने लगा। गौरी बाबूके बुलानेपर भी वह नहीं बोले मालूम हुआ, चेतना जाती रही। गौरी बाबू और काशी बाबूकी समझ-हीमें न आया कि इतने शीघ्र इनकी यह दशा क्यों हो गयी।

गाड़ी पटना जंक्शनपर खड़ी हो गयी। गौरी बाबूने कहा,—मैं समझता हूँ कि यहीं उतर जाना चाहिए।

काशी बाबूने कहा,—यही अच्छा है। गाड़ीमें इनका रोग और भी बढ़ जायगा। यहाँ किसी अच्छे डाक्टरको दिखलाकर शीघ्र इलाज कराना चाहिए। किन्तु उतरा कहाँ जायगा?

प्रणय

गौरी—मेरे एक मित्र यहाँ रहते हैं, उन्हींके यहाँ रहनेमें सुविधा होगी। हैं तो और भी कई प्रतिष्ठित परिचयी, किन्तु उनलोगोंके यहाँ चलनेसे शंकरको दुःख होगा। सोचेगा, गरीब समझकर नहीं आये।

काशी—यदि उतरना हो तो देर करना ठीक नहीं।

इसके बाद कुलीसे सामान उतरवाकर नौकरोंके हवाले कर दिया और दोनों आदमी ज्ञानदत्तको ले चलनेका यत्न सोचने लगे। तबतक एक नौकरने कहा,—मुसाफिरखानेमें एक नन्हीसी खटिया पड़ी है बाबूजी, हुकुम होय तौ उसे ले आवैं।

गौरी—हाँ हाँ, जल्दी जाओ।

नौकर चारपाई माँग लाया। मामूली बिस्तरा लगाकर ज्ञानदत्तको लिटाया जाने लगा। तबतक ज्ञानदत्तकी तन्द्रा टूट गयी। खिन्न स्वरमें बोले,—कहाँ चल रहे हो गौरी बाबू ?

गौरी—पटना।

ज्ञान—क्यों ?

काशी—तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए यहीं उतर जाना ठीक समझा गया।

ज्ञान—नहीं नहीं, ऐसा न करो। अब मेरी तबीयत अच्छी है।

गौरी—अच्छी बात है। किसी दूसरी ट्रेनसे चल देंगे।

ज्ञानदत्तने कुछ नहीं कहा। सबलोग शंकरके यहाँ जा पहुँचे। शहरके बाहरी हिस्सेमें मित्रका छोटासा कच्चा घर, टूटा-फूटा थोड़ासा

प्रणय

चन्दननगर ही लक्ष्मीवान गौरी बाबूकी महत्ता और रमणीक बगीचों-में रहकर आनन्ददायक प्रतीत हुआ। उन्हें देखकर शंकर निहाल हो गया। स्वयं जाकर एक अच्छे डाक्टरको बुला लाया। दवा-दारू हुई। आनन्द जो अच्छे तो हो ही रहे थे, अब बिल्कुल चंगे हो गये। किन्तु दवासे नहीं, डाक्टरके आगमनके कारण, अपने आप ही।

सन्ध्याका समय था। गौरी बाबू बाहर चबूतरेपर खड़े थे। आनन्द भी पास ही एक दूसरी चारपाईपर बैठे थे। शंकरने आकर कहा—मैं एक घंटेकी छुट्टी चाहता हूँ।

गौरी—हाँ हाँ, जाओ, हम लोगोंके लिए अपने कामका हर्ज न करो। क्या कोई जरूरी काम है?

शंकर—इस वक्त घरमें आटा नहीं है। दो महीनेसे नौकरी छूट गयी है, इसलिए खर्चकी तंगी है। जाकर एक जगहसे कुछ रुपये लाऊँगा।

शंकरके मुखसे प्रसन्नता-पूर्ण रूपकी बात सुनकर गौरी बाबू बड़े प्रसन्न हुए। मैत्री हो तो ऐसी! हृदय हो तो ऐसा हो! भीतर बाहर समान! मानापमान बराबर!! मित्रसे छिपाव कैसा? घरकी परिस्थिति बतलानेमें लज्जा किस बातकी? गौरी बाबूने कहा,—तो इसके लिए बाहर जानेकी क्या जरूरत है? मेरे पास रुपये हैं ले लो।

शंकरने सहायताके लिए अपनी परिस्थितिका दिग्दर्शन नहीं कराया था और न तो वह उनसे कुछ लेना ही चाहता था। पर स्नेही कभी-कभी रुचि-विरुद्ध कार्य भी करा बैठता है और उसे शिरोधार्य

करना ही पड़ता है। यही कारण है कि उसे विवश होकर गौरी बाबूसे रुपया लेना ही पड़ा। यह देखकर ज्ञानदत्तने गौरी बाबूके हृदयकी भावुकता और उच्चताको अच्छी तरहसे पहचान लिया।

इस प्रकार तीसरे दिन शंकरके बच्चोंको मिठाई खानेके बहाने मित्रकी कुछ सहायता करके गौरी बाबू कलकत्ता आये। शंकरसे यह कहते आये कि यहाँका प्रबन्ध करके तुम हमारे यहाँ चले आओ, अन्यत्र नौकरी करनेकी आवश्यकता नहीं है।

यही देर लगनेका असली कारण था। तबतक यहाँ राजो व्याकुल हो गयी थी। यदि ज्ञानदत्तके आनेमें दो-चार दिनकी देर और लगती तो राजो सोचके कारण अधमरीसी हो जाती। ज्ञानदत्त उसकी सूरत देखते ही यह बात जान गये। यही कारण है कि उसके बाद अबतक वह कहीं नहीं गये। एकाध बार जानेकी चर्चा करनेपर राजोने कहा भी,—आप चार दिनके लिए जाते हैं, और पखवारा लगाते हैं।

इस वाक्यका असली अर्थ समझकर ज्ञानदत्त रुक जाते; राजोको पीड़ा पहुँचाना, उसकी रुचिके विरुद्ध कोई काम करना इनकी शक्तिसे बाहर था। अब राजा साहिब भी इन्हें बहुत चाहने लगे। घंटे-दो-घंटेकी बैठक राजा साहिबके यहाँ प्रतिदिन होने लगी। एक दिनका भी नागा होना राजा साहिबको बहुत खलता। साहित्य, इतिहास, अर्थनीति, राजनीति, धर्मनीति, समाजनीति, भूगोल, खगोल, भूमिति शास्त्र, गणित आदिकी व्याख्या और आलोचना-

प्रणय

कथायोजना राजा साहिबको बहुत प्यारी लगती थी,—खासकर पं० ज्ञानदत्तके मुखसे। इधर ज्ञानदत्तको भी सुनानेमें बड़ा मजा आता था,—कथानकमें राजा साहिबको। हाँ, गानोंके न रहनेपर अवश्य ही इनको कुछ कहने सुननेकी इच्छा नहीं होती थी। किन्तु गानोंकी अनुपस्थिति ही बहुत कम होती थी। वह तो हर समय नाथके साथमें बैठी रहती थी। कमरेमें इनका पदार्पण होनेसे पहले ही वह वहाँ आ जाती थी।

क्रमशः घनिष्ठता इतनी अधिक बढ़ गयी कि बस था। अब बहुधा राजा साहिबके ही यहाँ ज्ञानदत्त भोजन करने लगे। राजा साहिबके न रहनेपर भी उनका धड़ल्लेसे बैठकमें पैठ बैठकर लड़कोंको सुन्दर उपदेश देने लगे। राजा साहिब भी इसमें किसी प्रकारका विघ्न न देते थे, बल्कि लड़कोंकी ज्ञान-गरिमाकी वृद्धि होती देखकर वह मन-ही-मन प्रसन्न होते थे। यद्यपि राजा साहिब बड़े ही नीतिज्ञ और व्यवहार-कुशल आदमी थे, तथापि ज्ञानदत्तके आचरणपर उनको इतना अधिक विश्वास बढ़ गया था कि इसमें वह किसी तरहकी हानि नहीं समझते थे। वास्तवमें ज्ञानदत्तका आचरण था भी ऐसा ही।

नित्यकी भाँति आज भी ज्ञानदत्त अपने सब कामोंसे निवृत्त होकर सन्ध्याके समय लगभग साढ़े सात बजे राजा साहिबकी बैठकमें पहुँचे। आज राजा साहिब लड़कोंको साथ लेकर अपने एक मित्रकी गार्डनपार्टीमें सम्मिलित होने गये थे। घरमें रानी

और उसकी माँके अतिरिक्त कोई नहीं था। नौकरोंसे मालूम हुआ कि आज राजा साहिब ग्यारह-बारह बजेसे पहले न आवेंगे। ज्ञानदत्तदने लौट आनेका इरादा किया। तबतक राजो आ गयी। बोली,—बैठिये पंडितजी, खड़े क्यों हैं।

कोकिल-कण्ठाकी मधुर ध्वनिने फन्दा डाल दिया। ज्ञानदत्तका मन अटक गया। 'जी हाँ बैठता हूँ' कहकर बैठ गये। आज कमरेमें अकेले राजोके साथ बैठनेमें उन्हें बड़ा ही संकोच मालूम हुआ,—अनुचित जान पड़ा। एकान्तमें राजोके साथ बैठनेका पहले कई बार अवसर पड़ चुका था और घंटों बैठे भी थे; किन्तु आज न-जानें क्यों उनके हृदयने अनौचित्यका अनुभव किया। जान पड़ता है यह अन्तरात्माकी शुद्ध प्रेरणा थी जो उनके उपस्थित मानसिक दौर्बल्य अथवा गति-विधिको देखकर ही उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। फिर भी राजोको छोड़कर वह जा नहीं सके,—न तो जाना उनके वशकी बात ही थी। वैसे तो इकट्ठा होते ही बातोंकी झड़ी लग जाती थी, किन्तु आज बहुत देरतक किसी-के मुखसे कोई शब्द ही न निकला।

बड़ी देरके बाद ज्ञानदत्तने स्तब्धता भंग की,—कुछ बात-चीत करियेगा कि यों ही चुपचाप बैठना होगा?

राजकुमारीने ससंकोच भावसे मुस्कुराहटके साथ भर आँख ज्ञानदत्तको देखकर निगाहें नीची करलीं। बोली,—क्या बातचीतका ठेका मुझे ही दिया गया है?

प्रणय

रानीकी इस बातको सुनकर आनन्दने एक अपूर्व जिज्ञासापूर्ण गुदगुदीका अनुभव किया। उसके लिए आपनमें यह बिलकुल नयी और अनहोनी बात थी। अत्यन्त हास्य-विनिर्मित मधुर स्वर में कहा,—मुझे तो ऐसा विश्वास, इसका पता ही नहीं। क्या आप बतला सकती हैं कि क्या है?

रानीने आनन्दकी ओर देखा। इस समय उसकी आँखें स्वाभाविक ही किञ्चित् सिकुड़ी हुई होंगी, कारण अन्तर्मुखी थी। उसके इस भावमें रसिकता टपकी पड़ती थी। आनन्दने उसका आस्वादन किया। फिर वह रस प्रच्छन्न हो गया; दूसरे भावने अधिकार जमाया। रानीने निगाहें फेर लीं। कहा,—जब कोई वस्तु वैयक्तिक सम्पत्ति हो जाती है, तब न तो वह किसीके माँगनेकी जरूरत पड़ती है और न उसपर दूसरेका आधिपत्य ही हो सकता है।

आनन्द—किन्तु इस बातमें आंशिक सत्यता है। यथार्थतः तो मनुष्य अपनी ही वस्तुपर अधिकार नहीं जमा सकता,—वैयक्तिक वस्तु पर अधिकार जमाना तो दूरकी बात है।

रानी सहम गयी, बोली नहीं। किन्तु उसकी इस सहममें एक विश्व-दुर्लभ पदार्थ था, जिसके आनन्दमें वह निमग्न हो गयी। यदि ऐसा न होता तो क्या जो रानी, आनन्दके स्वाभाविक प्रश्नोंका उत्तर देनेमें भी संकुचित हो जाया करती थी, वह आज इस प्रकार उपोद्घात दीजिये वाले करती? अच्छा, यदि यही बात है तो फिर वह आगे बोली क्यों नहीं? जान पड़ता है, उसका आनन्द

पूर्णत्वको पहुँच गया, इसीसे वह कुछ नहीं बोली। उसने शर्मीले भावसे मूक रहकर जो उत्तर दिया, उसपर ज्ञानदत्तकी जबान बन्द हो गयी। क्या शाब्दिक उत्तरमें यह विशेषता हो सकती थी—ज्ञानदत्तको कायल होना पड़ता?

ओफ्! नारी-जातिमें कितनी शक्ति है! जिस बातको पुरुष, बलके प्रयोगसे भी नहीं कर पाता, नारी उसे बिना कोई अंग हिलाये ही कर दिखाती है। राजोने यह दिखला दिया कि पुरुषके शरीरमें ताकत भले ही अधिक हो, पर नारीकी शक्ति उससे बलवती होती है। राजोके इस शक्ति-पूर्ण कौशलमें न तो अध्यात्मका पाखंड था, और न कविकी सौम्य कल्पनाका जोर।

ज्ञानदत्त और राजकुमारीके प्रेमका रूप बदल गया। पहले-पहलके आकर्षणको यद्यपि प्रेमके नामसे ही सम्बोधित किया गया है, तथापि यहाँ यह कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि वह प्रेम न होकर श्रद्धा थी। वही श्रद्धा आज प्रेमके रूपमें परिवर्तित हो गयी। यद्यपि यह परिवर्त्तन इधर कुछ दिनोंसे हो रहा था, किन्तु उनका लक्ष्यमें आना असम्भव था। अब उसने इतनी द्रुत-गतिसे कदम बढ़ाया कि यह परिवर्त्तन दोनोंको भलीभाँति मालूम हो गया। पहले दोनों एक दूसरेके केवल दर्शनके उपासक थे, अब वे उसके अतिरिक्त कुछ आगे बढ़े। पहले दोनों भावुक थे, अब भावमग्न हो गये। पहले ज्ञानदत्त सौन्दर्यके उपासक थे; राजो भी उसीकी उपासिका थी। अब वह रूपके सेवक हो गये, अतः राजो

प्रणय

भी [illegible] अधिकारी बन गया। किन्तु इससे भी यह सिद्ध होता है, कि प्राचीन साहित्यकारोंने [illegible] ऐसा किया। नहीं; इस प्रकार [illegible] विचार करना होगा कि दोनोंको [illegible] सफाइ करके [illegible] — दोनों भी साथ-ही-साथ चल रही थीं।

यद्यपि सौन्दर्य और रूप दोनों [illegible] प्रचलित भाषामें एक ही अर्थ है, क्योंकि 'रूप' कहनेसे लोग सुन्दरका बोध करते हैं—तथापि यह मानना पड़ेगा कि दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। सौन्दर्य, [illegible] है, —रूप [illegible] पानेवाला है! [illegible]! [illegible] सन्दर्शना है। सौन्दर्यमें सब गुणोंका समावेश हो जाता है। सौन्दर्य केवल सुन्दर रूप ही नहीं है! इसमें प्रायः सब गुणोंका भी समावेश रहता है। सौन्दर्य, व्यापक है! अदृश्य है! अगम्य है! निःस्वार्थ है!! और रूप, केवल रूप है या यह भी कह सकते हैं कि केवल सुन्दर है। यह मर्त्यलोक-निवासी है! स्थायी है! बाह्य चक्षुका विषय है! सौन्दर्य, मोहक है किन्तु मादकता और मदान्धतापूर्ण नहीं! रूप मोहक है, किन्तु मादकता और मदान्धतापूर्ण। सौन्दर्यको देखकर हृदय निर्मल होता है और रूपको देखकर कलुषित। सौन्दर्यमें अमृत है, रूपमें विष। सौन्दर्य वह है, जिसका दर्शन करते ही हृदयमें भक्ति उत्पन्न हो, पूजा करनेके लिए हृदय लालायित हो उठे। रूप वह है जिसके देखनेसे सम्भोगकी इच्छा उत्पन्न हो, विकृतोत्कंठा जागृत हो जाय।

प्रणय

किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं। रूपको सौन्दर्य्यसे पृथक् करना—छोटा ठहराना, अन्याय है। वास्तवमें दोनों एक हैं। दृष्टि-भेदसे श्रद्धेय और सम्भोग्य बन जाते हैं। सौन्दर्य्य या रूप! तू विश्व-प्रिय है। स्वर्गमें भी आदरणीय तू ही है! नहीं तो तिलोत्तमा, रम्भा, उर्वशी, मेनका आदिका आदर कभी न होता,—उनकी गुणावलियोंसे ग्रंथोंके पन्ने न रँगे जाते! तू अलभ्य है, सदा पवित्र है! इसीसे तो तेरे कृपा-कटाक्षपर बड़े-बड़े ऋषि महर्षि समाधि छोड़कर अपनी तपस्याका फल तेरे पैरोंपर अर्पण कर देते हैं। तू एक है, उपासक-भेदसे तेरा अनन्त रूप दिखायी पड़ता है। साक्षात् ब्रह्म तू ही है। मोक्षदाता भी तू ही है। नर्कमें घुसड़नेवाला भी तू ही है। तू जलसे अधिक कोमल है और बज्रसे भी अधिक कठोर है। तेरी मूर्ति निराकार है, साधार रहती है; किन्तु है वह इतनी मनोहारिणी कि विश्व-यौवन हाथ पसारकर तेरे मिलनकी सदा ही भीख माँगता रहता है। सूर और तुलसीके हृदयको बनानेवाला तू ही है। ईश्वरके ईश्वरत्वका मूल कारण तू ही है। यदि ईश्वरमें सौन्दर्य्य न होता, उनके गुणोंपर लोग मुग्ध न होते, तो उन्हें कौन पूछता? काली-कलूटी कोकिलकी कंठ-ध्वनि क्यों मुग्धकारिणी होती? निराकार ब्रह्मका भी लक्ष्य करानेवाला तू ही है। तू व्यापक है। तेरा राज्य स्वर्गलोकमें है, अतः कितने ही लोगोंको स्वर्गमें निर्विघ्न स्थान देता है; और तेरा राज्य मर्त्यलोकमें भी है, अतः कितने ही पामरोंको तू उन्मादी बनाकर चारों ओर भटकाता भी रहता है।

प्रणय

उपासनाका अन्तिम परिणाम ही एकाकार होना है। जब उपासक अपने उपास्यमें उपासनाद्वारा लीन हो जाता है, तब उसकी उपासना बन्द हो जाती है। ज्ञानदत्त और राजोके प्रेमकी भी यही दशा है। इन दोनोंमें एक विशेषता यह भी है कि दोनों ही एक दूसरेके उपासक भी हैं और उपास्य भी। जिस प्रकार कितने ही उपासक मुक्ति नहीं चाहते, उसी प्रकार यह युगलमूर्ति भी मुक्त होनेसे दूर रहना चाहती है। दोनोंकी अन्तर्मिलनसे तृप्ति न हुई, बाह्य-मिलनकी शुद्ध वासना भी उदीयमान हो उठी। युवक-युवती-स्नेहकी चरम सीमा भी यही है। युवक-युवती-प्रेमकी स्वाभाविक गति यहाँ पहुँचे विना विश्राम नहीं लेती। इसमें ज्ञानदत्त और राजोको कलंकित करना सृष्टि-नियमानभिज्ञताका द्योतक है।

नौकरने आकर रानी बाबूके आनेका हाल कहा। ज्ञानदत्त राजोसे आज्ञा लेकर चले गये।



तेईसवाँ परिच्छेद

कई वर्ष बीत गये। राजोका व्याह नहीं हुआ—कोई योग्य सम्बन्ध ही न मिला। जहाँ बातचीत हुई थी, वहाँ राजा साहिबका दिल नहीं जमा। क्योंकि उस लड़केमें कुछ कोर-कसर थी। लड़का अच्छा पढ़ा-लिखा नहीं था। राजा साहिब चिन्तित रहने लगे। राजो मन-ही-मन प्रसन्न हुई। उसने अपना यह निश्चय पिताके पास पहुँचा भी दिया कि, मैं व्याह न करूँगी। राजा साहिबने समझा, मुझे दुखी देखकर वह ऐसा कह रही है। इसलिए उन्होंने लड़कीकी बातपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

स्त्री-समाजमें राजोकी अब अच्छी ख्याति हो गयी। ज्ञानदत्तके प्रभावसे कुछ ही दिनोंमें वह गहनातिगहन विषयोंपर इतना अच्छा लेख लिखने लगी कि बड़े-बड़े लिक्खाड़ोंके छक्के छूट गये। कभी-कभी तो सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी वही लिखती थी, और पं० ज्ञानदत्त उसे बड़े चावसे छापते थे। राजा साहिब भी इसके लिए ज्ञानदत्तके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने लगे। कहते,—आपहीकी दयासे हमारी राजो इतनी उन्नति कर सकी है। यह हमारा सौभाग्य है कि गौरी बाबूके द्वारा आपसे परिचय हो गया।

ज्ञानदत्त और राजोके आन्तरिक प्रेमका रहस्य राजा साहिबके कई नौकरोंको कुछ-कुछ मालूम था। किन्तु वे आपसमें भी इसको

चर्चा कभी न करते थे। कारण यह था कि राजो अपनी स्वाभाविक दान-शीलता और परोपकार-तत्परतामें सबको दबाये रहती थी। यह बात नहीं है कि वह अपनी शानको छिपानेके लिए ऐसा करती थी, क्योंकि उसे तो यह मालूम ही न था कि इस प्रेम-सम्बन्धको कोई आदमी जानता है या नहीं,—बल्कि यह सब तो उसका स्वाभाविक गुण था। यदि कोई नौकर बीमार पड़ जाता, तो दयामयी राजो दिनभरमें दो-तीन बार जाकर उसे देखती, दवा-दर्पनका प्रबन्ध करती। कभी-कभी तो वह अपने हाथसे ही पानी लाकर पिलाया करती थी।

प्रेम तो चरम सीमापर पहले ही पहुँच चुका था। धीरे-धीरे नये सम्बन्धका प्रकृत संकोच भी दूर हो गया। फिर भी आन्तरिक अभिलाषाके अनुसार कार्य करने या उसे प्रकट करनेका साहस किसीमें भी उत्पन्न नहीं हुआ था। जाड़ेका दिन था। कांग्रेसका समय निकट होनेके कारण विशेषांकोंकी धूम थी, अतः दो दिनसे पं० ज्ञानदत्त राजा साहिबके घर नहीं आ सके; अपने कमरेसे ही प्रेयसी राजोका अतृप्त आँखोंसे दर्शन कर लेते थे। इधर राजो भी कोई काम न रहनेके कारण आज तो बड़े ही अपने शयनागारमें चली गयी। नींद आनेपर उसने विलक्षण स्वप्न देखा। मालूम हुआ ज्ञानदत्त उसकी पलँगके पास खड़े प्रेम-भिक्षा माँग रहे हैं। वह स्त्री-धर्मानुसार कहिये या उन्हें खिझानेके लिए कहिये, कह रही है,—'ना'! वह आलिंगन करना चाहते हैं, राजो तरह दे जाती है। बड़ी देरतक

यही कांड होता रहा। अन्तमें निराश होकर ज्ञानदत्त जाने लगे। राजो इसे सहन न कर सकी। उन्हें पकड़नेके लिए लपकी।

इतनेहीमें नींद खुल गयी। देखा, कहीं कुछ नहीं। अपनेको कोसने लगी,—हाय, मैं क्यों उठ गयी? पड़ी रहती तो रंगमें भंग न होता। सोकर चेष्टा करने लगी कि वह फिर स्वप्नमें दिखलायी पड़ें। आवें, अबकी मान न करूँगी। किन्तु सफलता न मिली। नींद ही नहीं आयी, सबेरा हो गया। नित्यकर्मसे निवृत्त होकर जलपान करने बैठी। अच्छा न लगा। शाल ओढ़कर कुर्सीपर बैठ गयी और एक पुस्तक पढ़नेका विचार करने लगी। उसमें भी दिल न लगा। टहलने लगी,—किताब हाथमें लिये ही; तबतक दाई एक बोझ अखबार लेकर आयी और सामनेकी टेबुलपर रखकर चली गयी। राजोने पुस्तक रख दी और समाचार-पत्रोंको उलटने लगी। एक जगह चार-पाँच पंक्तियोंका समाचार छपा था। उसीमें विष था। राजो अपने नेत्रोंद्वारा उसे पान कर गयी। नशा हो गया, आँखोंसे आँसू गिरने लगे। जो राजो कुल अखबारोंको उलट पुलटकर अच्छी तरहसे देखे बिना, जरूरी काम आनेपर भी कभी नहीं उठती थीं, किसीसे बात भी नहीं करती थी, वह आज न-जानें क्यों अवाक् हो गयी। आगे किसी अखबारको छुआ-तक नहीं। पाठक घबराते होंगे कि वह कौनसा समाचार था जिसे पढ़कर राजोकी यह दशा हो गयी? अतः उसका उल्लेख कर देना विशेष प्रयोजनीय है। वह समाचार इस प्रकार था:—

प्रणय

"श्रद्धेय पं० मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें होनेवाली अमृतसरकी कांग्रेसमें 'सम्मिलित होनेके' लिए भारतके प्रसिद्ध सम्पादक पं० ज्ञानदत्तजी आगामी बुधवारको पंजाब-मेलसे प्रस्थान करेंगे। और भी कई प्रतिष्ठित सज्जन उन्हींके साथ जानेवाले हैं, जिनके नाम कलके अंकमें प्रकाशित किये जायँगे।"

यह वियोगात्मक समाचार पढ़कर राजोका हृदय अधीर हो उठा। सम्भवतः यह स्वप्नमें दिखानेका फल है। उठकर बार-बार बरामदेमें जाती, परन्तु ज्ञानदत्तके कमरेका दरवाजा बन्द पाकर फिर अपने स्थानपर आकर बैठ जाती। इतनेपर भी जब सन्तोष न होता, तब आदमी भेजती कि 'जाकर देखो पंडितजी हैं या नहीं। यदि हों तो एकबार दर्शन देनेके लिए कहो। नौकर आकर कोरा जवाब देता,—'नहीं हैं। कहीं गये हैं।'

इस प्रकार चिन्ता-पूर्ण प्रतीक्षा करनेमें समूचा दिन बीत गया। रातके दस बज गये। सन्नाटा समझकर राजा साहिब सोने चले गये। राजो अबतक अपने पिताके उसी प्राइवेट रूम-में बैठी रही। निराश होकर वह भी अपने कमरेमें चली गयी। सामने दृष्टि डालते ही देखा,—उनके कमरेका दरवाजा खुला है, बिजली बत्तीके तीक्ष्ण प्रकाशमें वह कपड़े उतार रहे हैं। मालूम हुआ, वह अभी-अभी बाहरसे चले आ रहे हैं। भेंट करनेका यत्न सोचने लगी। तबतक उनकी दृष्टि इस ओर घूमी। हाव-

से संकेत किया,—अभी आया। राजो मूर्तिवत् अपने स्थानपर खड़ी देखती रही। वह दुशाला ओढ़े सड़कपर दिखायी पड़े। राजो दरवाजा लगाकर अपने कमरेमें खड़ी हो गयी। समझा, नीचे कोई नहीं है, इसलिए वह यहीं आवेंगे।

ज्ञानदत्तने सदर फाटकपर आकर देखा, पहरेवाले हाथमें बन्दूक लिये ऊँघ रहे हैं। कई आदमी इधर-उधर ओढ़ना ओढ़-कर सर्दीके मारे नाकसे घुटना लगाये 'घर्र-घों' कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर उन्होंने किसीसे कुछ नहीं पूछा और सीधे ऊपर चले आये। राजोके कमरेमें प्रवेश करते ही कहा,—आजकल इतना काम बढ़ गया है कि दम मारनेकी भी फुरसत नहीं। कुशल हुई कि आप दिखलायी पड़ीं, नहीं तो ऐसी नींद आ रही......

इतनेमें उनकी दृष्टि राजोके चेहरेपर पड़ी। विस्मित हुए और ऊपरकी बात कहते-कहते रुक गये। राजोके कपोलोंपर बड़े-बड़े मोतीके दाने लुढ़के हुए थे और लुढ़क रहे थे आश्चर्यान्वित होकर बोले,—यह क्या! आप रो क्यों रही हैं? क्या बात है?

राजोका शब्द-रहित रुदन और भी तीव्र हो उठा। उसने अश्रु-मोचन करते हुए मुख फेर लिया। ज्ञानदत्त क्षण कालतक स्तब्ध होकर अपने स्थानपर खड़े रहे। बाद आगे बढ़े और उसके मुखके सामने जाकर बोले,—बतलाइये न?

राजो अपने पैरके अँगूठेसे संगमरमरकी फर्शको खुरचती हुई

नीचे ताकने लगी। कुछ नहीं बोली। शायद बोल ही न सकी।

ज्ञानदत्त कुछ भी न समझ सके। किन्तु वह यह जाननेसे भी वंचित न रहे कि वह रुदन उन्हींके लिए हो रहा है। उनका भी गला भर आया। थोड़ी देरतक चुप रहे। फिर पूछा,—मैं इसी तरह खड़ा रहूँ? आप न बतलाएँगी?

राजोने भरे कण्ठसे सिसकियाँ लेते हुए कहा,—बैठते क्यों नहीं?

आँसू अब भी संगमरमरके फ़र्शपर टप टप गिरते जाते थे। मानो उनके कोमल आघातसे ज्ञानदत्तका हृदय आहत हो रहा था। कहा, बिना कारण जाने मैं नहीं बैठनेका।

अब वह अपनेको न सँभाल सकी। फफक-फफककर राजो कुछ जोरसे सिसकने लगी।

ज्ञानदत्त अपनेको भूल गये। ज़रा आगे बढ़कर उन्होंने बड़े स्नेहसे राजोकी पीठपर आहिस्तेसे एक हाथ रखकर ग्लानियुक्त मधुर स्वरमें पूछा,—"बोलो न? क्या बात है? क्या किसीने कुछ—"

हाथका स्पर्श होते ही राजो प्रेम और ग्लानिमें विभोर हो गयी, और तुरन्त ही उसने अपना सिर ज्ञानदत्तकी छातीपर झुका दिया। उसके रुदनने और भी करुण-रूप धारण कर लिया।

क्या हो रहा है, कोई देखता है या नहीं, कोई देखेगा तो क्या कहेगा, यह कार्य अनुचित है या उचित आदि बातोंकी सुधि दोनोंमेंसे एकको भी नहीं रही। एकको सुध थी केवल रुदनका कारण जाननेकी, और दूसरेको किस बातकी सुध थी कहना कठिन है। राजोके

प्रणय

मस्तक झुकाते ही ज्ञानदत्तने अपना दूसरा हाथ पसारकर राजोको हृदयसे लगा लिया। उसका सुन्दर और कोमल कपोल ज्ञानदत्तकी छातीमें चिपट गया। फिर वही प्रश्न हुआ,--बोलो न? क्या बात है?"

तुरन्त ही दोनों एक दूसरेसे अलग हो गये। मानो एकाएक उन्हें किसी बातका ज्ञान हो गया; आवरणाहट जानेके कारण कपोल-वक्षस्थल-स्पर्शसे दोनोंकी हृदय-स्थित ज्वाला शान्त हो गयी। दोनों मन-ही-मन लज्जित हो उठे। किन्तु एकने भी दूसरेको अपराधी नहीं समझा। इस घटनाने दोनोंके दिलमें इतना संकोच भर दिया कि एकका दूसरेकी ओर ताकना कठिन हो गया। थोड़ी देरतक किंकर्त्त-विमूढ़ होकर दोनों खड़े रहे। उस समय उन दोनोंके हृदय-भाव क्या थे, मूक-भाषा ही इसका उत्तर देगी।

ज्ञानदत्तकी आँखें भर आयीं। कहा,--बैठ जाइये, खड़ी कबतक रहियेगा।

राजो अन्यमनस्क भावसे बैठनेके लिए कुर्सीकी ओर बढ़ी। पश्चात् दोनोंने आसन ग्रहण किये। कुछ देरके बाद ज्ञानदत्तने फिर अपने पूर्व प्रश्नकी पुनरावृत्ति की।

अबकी बार उत्तर मिला,--"आप जायें जहाँ जा रहे हैं, यह सब पूछनेसे क्या लाभ?"--किन्तु यह उत्तर सामने दृष्टि करके नहीं मिला था,--बल्कि ऐसे ढंगसे दूसरी ओर मुँह करके मिला, मानो किसी दूसरेको उत्तर दिया जाता हो।

प्रणय

किन्तु—ज्ञानदत्तने उत्तर देते समय राजोकी करुणापूर्ण, भिखारिनी आँखोंको देखा; वे डबडबाई रही थीं। बोले—मैं कहाँ जा रहा हूँ ?

राजो चुप रही। ज्ञानदत्तने फिर वही पूछा।

राजोने टेबुलके ऊपरसे समाचार-पत्र उठाकर उनके सामने रख दिया। ज्ञानदत्तको पढ़नेकी जरूरत नहीं पड़ी, और वह असली रहस्य समझ गये। बोले,—तो इसमें ऐसी कौनसी बात है ? एक हफ्ता भी तो नहीं लगेगा ?

राजोने फिर भी कुछ नहीं कहा। यदि वह अपने हृदयका भाव व्यक्त करनेमें संकोच न करती तो शायद यही कहती, "एक हफ्ता कहते हो, एक महीना लगाओगे। तुम्हें क्या मालूम कि तुम्हारे बिना मेरा एक पल कितने दुःखसे बीतेगा।" नारी-हृदयकी व्यथाको पुरुष-हृदय कभी समझ ही नहीं सकता।

बिना कुछ कहे ही ज्ञानदत्तको उसके हृदयका भाव पूर्ण रीतिसे मालूम हो गया। उन्हें भी साधारण दुःख नहीं था। किन्तु कोई चारा न था,—गये बिना काम हो न चलता। सान्त्वना देते हुए बोले,—न जानेसे ठीक न होगा। विश्वास मानो, मैं ठीक सातवें दिन आ जाऊँगा।

राजोने भर्रायी हुई आवाजमें दूसरी ओर ताकते हुए बड़े कष्टसे कहा,—यदि अखबारमें न छपा होता तो मालूम भी न होता कि कौन, कहाँ और कब जा रहा है !

प्रणय

ज्ञान—क्या तुम यह समझती हो कि मैं तुमसे अपने जानेकी चर्चा ही न करता ? तुमसे बिना कुछ कहे सुने चला जाता ?

राजो—कौन जाने ।

ज्ञान—यह मैं पहले ही समझता था कि जरूर तुम यही सोचोगी। किन्तु इसमें मेरा दोष नहीं राजो! अभी परसों मेरे जानेका निश्चय हुआ है। तबतक मुझे यहाँ आनेका अवकाश ही नहीं मिला, नहीं तो तुमसे अवश्य कहता ।

राजो—अवकाश काहेको मिलेगा! कोई मरे चाहे जिये ।

'कोई मरे चाहे जिये' राजो कह तो गयी, पर तुरन्त ही उसे लज्जाने धर दबाया। ओफ़! यह क्या किया! क्या कह डाला ?

ज्ञान—तो क्या तुम यह चाहती हो कि मैं न जाऊँ ?

इसपर राजोने एकबार तिरछी निगाहोंसे देखा, पर कुछ कहा नहीं। किन्तु ज्ञानदत्तको उत्तर मिल गया। उसकी तिरछी निगाहें उन्हें सुस्पष्ट उत्तर देकर चली गयीं। फिर भी ज्ञानदत्त उससे मौखिक उत्तर चाहते थे। बोले—बोलो, मैं न जाऊँ ?

राजो—मैं क्यों कहूँ!

वह बातें तो कर रही थी, किन्तु उसकी दृष्टि एकबारके अतिरिक्त फिर ऊपर नहीं उठी।

ज्ञान—अच्छा, यदि तुम्हें इतना दुःख है, तो मैं न जाऊँगा। बस, अब तो प्रसन्न हो न ?

प्रणय

राजो कुछ नहीं बोली। वह पूर्ववत् ही उदास भावसे नीचेकी ओर ताकती रह गयी।

ज्ञानदत्तने कहा,—क्यों क्या अब भी प्रसन्न नहीं हो?

यह सुनकर राजोकी हठात् पलकें उठीं; उसी तरह, जिस तरह मेघ-खंडसे अंशुमालीके आच्छादित रहनेपर पृथ्वी-तलपर एक ओरसे शनैः-शनैः धूप प्रसरित होती है और छाया भागती जाती है। अहा! उसकी पलकोंका धीरे-धीरे उठना कितना मनोहर था! किन्तु तुरन्त ही फिर पलकें गिर गयीं; दृष्टि अधोमुखी हो गयी। ऐसा प्रतीत हुआ मानो बिजली चमककर गायब हो गयी। ज्ञानदत्तके हृदयमें उन विशाल नेत्रोंकी पलकोंका ऊपर उठना और फिर गिर जाना अंकित हो गया। आह! उसमें कितना आकर्षण था! उसने एक बार ज्ञानदत्तकी ओर ताककर कृतज्ञता प्रकट की। फिर न-जाने क्या सोचकर बोली,—मैं मना थोड़े ही करती हूं।

शायद उसने यह सोचकर ऊपरकी बात कही कि अब न जानेसे इनकी बदनामी होगी। यदि कोई काम बिगड़ जायगा तो चाहे वह प्रकट न करें, संसार कुछ न कहे,—पर वास्तवमें उसकी असली अपराधिनी मैं ही होऊँगी।

ज्ञानदत्तने कहा,—यह न समझना कि मुझे साधारण दुःख था। किन्तु क्या करूँ, मेरे विभागमें कोई आदमी ऐसा नहीं है, जिसपर विश्वास करके भेज सकूँ। और, अब तो कोई-न-कोई प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।

प्रणय

राजोका विचार पलट गया। उसने मन-ही-मन स्थिर किया कि अपने कष्टको दूर करनेके लिए इनका अहित करना ठीक नहीं। ऐसा करना मेरा धर्म नहीं है। यह तो घातकका काम है। मुझे तो वही काम करना चाहिए, जिससे इनका हित हो, इनके मान और मर्यादाकी रक्षा हो,—गौरव बढ़े। यदि यह नहीं जायँगे तो अच्छी रिपोर्ट नहीं मिलेगी; ऐसी दशामें बहुत सम्भव है कि इनका समाचार-पत्र लोगोंकी नजरोंसे गिर जाय।

इतनेमें बारह बजेकी आवाज हुई। ज्ञानदत्त चौंक उठे। बोले,—अच्छा अब छुट्टी दो, नहीं तो नीचे फाटक बन्द हो जायगा। फिर व्यर्थ ही चिल्ल-पों मचेगा।

उन्हें खड़ा देखकर राजो भी उठकर खड़ी हो गयी,—पर नीची निगाह किये ही। प्रणाम करनेके लिए उसके हाथ उठते ही न थे। यह कार्य इस समय उसे कितना कठोर और निष्ठुर जान पड़ा, यह वही जानती है। क्योंकि वार्त्तालापके बाद प्रणाम करना ही बिदाई-की सूचना देना है। किन्तु समय सब-कुछ कराता है। लाचार होकर उसे प्रणाम करना ही पड़ा। ज्ञानदत्तका खड़ा रहना भी तो उसे सह्य न था।

अन्ततः पं० ज्ञानदत्तजी कांग्रेसमें सम्मिलित होनेके लिए नहीं गये,—यद्यपि राजोने संकोचकी रक्षा करते हुए कई बार जानेके लिए कहा, किन्तु उन्होंने स्वयं न जाकर सहायक सम्पादकको ही भेज दिया।

प्रणय

चौबीसवाँ परिच्छेद

पुलिसने मामलेको बड़ी खूबीके साथ सजाया। दारोगाने अपने सिपाहीसे पीटे गये आदमियोंमेंसे एकको उसका गला दबवाकर जानसे मरवा डाला और सिविलसार्जनसे सर्टिफिकेट ले लिया कि, 'यह आदमी कमजोर कलेजेका था, जोरसे धक्का लगनेके कारण इसकी धड़कन बन्द हो गयी। यदि बेंतसे पीटकर छोड़ दिया गया होता तो इसकी मृत्यु कदापि न होती।

डाक्टरके सर्टिफिकेट और गवाहोंकी अधिकतासे खूनका मामला पुष्ट हो गया। पुलिसने मौकेका तहकीकातका विवरण भेजते हुए अपनी रिपोर्टमें लिखा कि:—

'कुंवर बल[illegible] और सुमेर [illegible] नामके दोनों मौजे बिन्दापुरके बाशिन्दे हैं। कुंवरका यह कहना है कि [illegible]की लड़की रमासे मेरी आशनाई है, झूठ नहीं मालूम होता। क्योंकि खुफिया जाँचसे भी इस बातका पता चला है कि रमा बदचलन औरत है। वाकया होनेके दिन कुंवर फार्मसे वापस आकर करीब आठ बजे खेतीके औजारोंको रख रहा था। रमाने कुछ छेड़खानी की। कुंवर भी मजाक कर बैठा। इसपर सुमेर भी कुछ बोल उठा।

प्रणय

सदायतनने मु० रमाकी बात तो नहीं सुनी, मगर कुबेर और सुमेरके अल्फाज उनके कानोंमें पड़ गये। गुस्सेमें आकर दोनोंको बेंतसे खूब पीटा। आखिरकार जिस वक्त वह कुबेरको मार रहे थे, उस वक्त सुमेर बेंतकी चोटसे रो रहा था। उन्होंने अपनी लड़कीसे कहा, खड़ी क्या देखती है, मारती क्यों नहीं हरामजादेको। जहाँतक मालूम होता है, मु० रमाको कुबेरका तो नहीं, क्योंकि उससे उसकी आशनाई थी, लेकिन सुमेरका मजाक करना नागवार मालूम हुआ था। लिहाजा वालिदके ललकारते ही उसने सुमेरको गुस्सेमें आकर इतने जोरसे झोंक दिया कि वह धड़ामसे जमीनपर गिर पड़ा। उसी दम उसके मुँहसे खून निकल पड़ा,—मरा नहीं। ब-मुश्किल तमाम वह थानेपर आकर अधूरा इजहार लिखाते ही गुजर गया।'

बस इसी बातपर दारोगाने सुबूत इकट्ठा किया। पं० सदायतन और रमाकी जमानतपर रिहाई हुई। मैजिस्ट्रेटने सेशन सुपुर्द कर दिया। खूनका मुकदमा था, इसलिए तारीख बहुत निकटकी डाली गयी। सदायतनको अपने लिए तो कोई चिन्ता न थी, किन्तु लड़कीका भरी अदालतमें हाजिर होना उन्हें बहुत खलने लगा। रमाने पिताको आश्वासन दिया। पाठकोंको मालूम होगा कि अब रमाके विचार पहलेकेसे नहीं रह गये थे। इस अल्पावस्थामें ही उसमें बहुत बड़ी गम्भीरता अध्ययन-शीलता और सहन-शीलताका समावेश हो गया था। वह देश और जातिकी रक्षाके लिए अपने प्राणतक निछावर करनेको तैयार थी।

प्रणय

विद्यापुरमें हाहाकार मचा था। छोटे-बड़े, सब लोग पं० सदायतन-के लिए अत्यन्त दुःखी थे। मुकद्दमेका रुख देखकर लोगोंकी यह धारणा हो गयी थी कि फाँसीका दंड अवश्य मिलेगा। इसीलिए सबलोग अधीर होकर सदायतनसे कहने लगे कि कुंवरको कुछ रुपये देकर उसे मिला लेना चाहिए। किन्तु उन्होंने इस बातको किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया। कहा, ईश्वर रक्षा करेंगे, मैं यह अनुचित कार्य कभी न करूँगा। अन्ततः गाँववालोंने गुप्त रीतिसे आपसमें चन्दा करके यह तय किया कि पंडितजीको मालूम न हो और कुंवर तथा अन्य गवाहोंको मिलाकर इजहार बदलवा दिया जाय।

इन्हीं दिनों एक और कांड हो गया। जीवनमें जब कष्टोंकी बारी आती है, तब चारों ओर कष्ट-ही-कष्ट दृष्टिगत होता है। यही प्रतीत होता है कि यह संसार केवल दुःखमय है, इसे सुख-दुख-मिश्रित कहना भूल है। बेचारी रमाको अभी न-जाने क्या-क्या देखना बदा है। खूनका मुकद्दमा प्रारम्भ होते ही भावजोंने उसके सामने ही व्यंग्य बाण छोड़ना शुरू कर दिया। एक दिन तो एक भावजने यहाँतक कह डाला कि,—यदि यह ऐसी न होतीं तो यह आफत काहेको आती। इनकी इसी चालके कारण आजतक रामपुरका एक कुत्ता भी नहीं झाँक सका। चली थीं देशका सुधार करने!

ये बातें रमाको असह्य हो गयीं। मुकद्दमेकी तारीखमें केवल

प्रणय

चार दिनकी देर थी। आधी रातके समय रमा अपने डेढ़ सालके बच्चेको लेकर घरसे निकल गयी। उसे कितना कष्ट हुआ, कहना कठिन है। पति-विरहाकुला रमा बरसातकी कितनी रातें—जब रिम-झिम पानी बरसने लगता और आकशमें काले बादल गरज उठते, बिजली कौंधने लगती—बिछौनेपर करवटें बदलकर काट चुकी थी। जाड़ेकी कितनी गोधूलियोंमें वह धूमिल पश्चिम क्षितिजकी ओर चुपचाप देखा करती थी। उसके उस मौनमें कितना विषाद निहित रहता था, उस दृष्टिमें अन्तरकी कितनी वेदना रहती थी! फिर भी वह अपना समय काटती जाती थी। किन्तु आज आधी रातका बिताना उसके लिए पहाड़ हो गया। सब-कुछ सहन करने-की शक्ति उसमें थी; किन्तु भावजोंके वाग्-बाणका असह्य आघात सहन करना उसकी सहन-शक्तिसे बाहर था। इसीसे आज वह माँ-बापको छोड़कर चल पड़ी और पिताके नाम यह पत्र लिखकर छोड़ती गयी:—

"बाबूजी,

मेरे लिए आप चिन्ता न करें। तारीखके दिन मैं अदालतमें हाजिर हो जाऊँगी। यदि मेरे हट जानेमें आपका मंगल था तो मुझे बहुत शीघ्र आपका घर त्याग देना चाहिए था। किन्तु मैं ऐसा न कर सकी। कारण, पहले यह मैं नहीं जानती थी कि मेरे हटनेसे आपका कल्याण होगा,—लोगोंकी यह धारणा है। यह मैं जानती हूँ कि मेरा इस प्रकारसे चल देना आपको तथा माँको विशेष

कष्टकर होगा; किन्तु क्या करूँ मेरे लिए अब और कोई मार्ग ही नहीं! इसपर आप विश्वास करें कि आपकी हतभागिनी कन्या किसी प्रकार भी आपके नामपर कलंक न लगने देगी। इसका मुझे हार्दिक दुःख है कि मेरे ही कारण आपको इतना मानसिक कष्ट भोगना पड़ रहा है।

आपकी पुत्री

रमा।"

पत्र पढ़कर पं० सदायतनको इतना शोक हुआ कि उनका उठना-बैठना भी अपार हो गया। गाँवकी स्त्रियाँ रमाकी प्रशंसा करने लगीं। देवी न मालूम कहाँ अन्तर्धान हो गयी। अहा! माँ-बापपर रमाकीसी भक्ति रखनेवाली लड़कियाँ इस युगमें कहाँ? रमा हर समय बड़ोंके आदेशोंका पालन करनेके लिए प्रस्तुत रहती थी। यह सब सुनकर सदायतनकी मानसिक वेदना और भी बढ़ने लगी। यहाँतक कि कल तारीख है और आज दिनके लगभग दस बजे उनका प्राण-पखेरू सदाके लिए उड़ गया। लोग कहने लगे, पंडितजी बड़े भाग्यवान पुरुष थे। ऐसा दयालु होना कठिन है। उन्होंने अपने जीवनमें कोई दुःख नहीं देखा। उनकी पुत्र-वधुएँ कहने लगीं, रमाके कारण ही बाबूजीकी मृत्यु हुई। रमाने ही इस घरको चौपट किया। यदि कुछ दिनोंतक वह यहाँ और रहती तो न-जानें क्या-क्या अनर्थ हो जाता। अच्छा ही हुआ कि वह यहाँसे चली गयी; किन्तु कौन जाने अभी क्या होगा।

प्रणय

विद्यापुर गाँवके लोग अपने दयालु स्वामीकी मृत्यु होनेपर बिलकुल अनाथ हो गये। मायाधरने अपने पिताके कार्य्यको अपने हाथमें लेनेके लिए लोगोंको आश्वासन दिया, किन्तु कुबेर आदिको समझाने-बुझानेके लिए वह भी राजी न हुए। इससे गाँवके लोग शान्त न हो सके। समय बिलकुल नहीं था। सन्ध्याके समय गाँवके प्रमुख लोग शोकातुर चित्तसे बैठकर कल अदालतमें कार्य्य करनेके लिए विचार कर रहे थे, तबतक एक आदमीने आकर कहा,—बड़ा गजब हो गया।

मायाधर—क्या?

वह—एक औरतको कुछ सिपाही पीटते हुए थानेपर ले गये हैं। सिपाहियोंकी नीयत अच्छी नहीं मालूम हो रही थी। औरत बिलकुल युवती है। उसे देखा तो जरूर है, पर पहचान नहीं सका।

मायाधर सन्नाटेमें आ गये। सोचा, कहीं रमा न हो। किन्तु फिर यह सोचकर उन्हें शान्ति मिली कि रमाको यहाँ चार कोसमें ऐसा कौनसा मनुष्य है, जो न चीन्ह सके।

एक दूसरे आदमीने कहा—अरे कुबेरकी लड़कीको तो नहीं कह रहे हो?

उस आदमीने जरा सोचकर कहा,—हाँ हाँ ठीक है, वही थी। तभी तो मैं कहता था कि उसे देखा है, सुध नहीं आ रही है।

दूसरा—अच्छा है, सालेकी दुर्गति होने दो। किन्तु यह नहीं मालूम हुआ कि पुलिसवाले उसे क्यों पकड़कर ले गये हैं।

मायाधरने कहा—ऐसा न कहो। सबलोग अभी जाकर उसकी रक्षा करो। यदि हमलोग, ऐसा सोचेंगे, तो कुंवरकी और हमलोगोंकी बुद्धिमें फर्क ही क्या रह जायगा? उनकी लड़की अपनी बेटाके समान है। हमें अपने कर्त्तव्यसे च्युत नहीं होना चाहिए। चलो मैं भी तुमलोगोंके साथ ही चलता हूँ।

यह कहकर पं० मायाधर उठ खड़े हुए। सबलोग मन-ही-मन पं० मायाधरके विचारोंकी प्रशंसा करने लगे। सोचा, वास्तवमें यह अपने पिताके समान ही रक्षक होंगे। अभी दाह-संस्कार करके आये चार घंटे भी नहीं बीते थे, पितृ-शोक बासी भी नहीं हुआ था कि वह दूसरेका धर्म बचानेके लिए तैयार हो गये। फिर क्या था, जितने आदमी थे, सब उत्साहित होकर तैयार हो गये। गाँवके और भी बहुतसे आदमी बुला लिये गये। बन्दूक, तलवार, गड़ासा, बर्छा, आदि लेकर सबलोग मायाधरके पीछे-पीछे थानेकी ओर चल पड़े।

थानेके पास पहुँचकर मायाधरने एक आदमीसे सारा भेद जान लिया। कुंवरकी लड़कीपर दारोगा बहुत दिनोंसे आशिक था। वह सदायतनजीके भयसे कुछ कर नहीं सकता था। अब उसका भय छूट गया। कुंवर घरसे हटा दिया गया था, इसलिए वह जबर्दस्ती पकड़वा मँगायी गयी है। यह मालूम हुआ कि थोड़ी देर

पहले कुबेर उस लड़कीकी खोजमें आया था। किन्तु दारोगाने कहा,—वह तो यहाँ नहीं आयी। तुम जल्दी उसका पता लगाओ, मैं अभी चलकर उसपर बुरी निगाह डालनेवालेकी खाल खींच लूँगा।

यह हाल सुनकर मायाधरका रक्त खौल उठा। उन्होंने सब आदमियोंको वहीं रोक दिया। केवल एक आदमीको साथ लेकर आप थानेमें गये। जो दारोगा, पं० सदायतनके एक नौकरको देखकर काँप उठता था, वह आज उनके ज्येष्ठ पुत्र मायाधरको देखकर बोलातक नहीं। यह समयकी खूबी है। दारोगाने सोचा, कि, यह खूनवाले मामलेमें आरजू-मिन्नत करनेके लिए आये होंगे।

किन्तु मायाधरने न तो दारोगाके इस अनुचित बर्त्तावपर ध्यान ही दिया और न वह अनुनय-विनय करने ही गये थे। शिष्टता-पूर्वक बोले,—दारोगाजी, मैं आपकी सेवामें एक प्रार्थना करनेके लिए आया हूँ। आशा है, आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

दारोगाको अपने अनुमानकी सत्यतापर गर्व हुआ। रुआबके साथ बोले,—अब कुछ कहना-सुनना बेकार है। यदि ऐसा ही था तो पहले आये होते। इतने घमंडकी क्या जरूरत थी?

माया—जरूरत तो आज पड़ी है, पहले किस कामके लिए आता?

दारोगा—जिस कामके लिए आज आये हैं।

प्रणय

माया—क्या आप बतला सकते हैं कि, आज मैं किस कामके लिए आया हूँ ?

दारोगा इतनी फुरसत नहीं है।

माया—ऐसा न कहिये। बात करनेका फल अच्छा नहीं होता। नुकसान करना भले आदमीका काम नहीं।

दारोगा—तो और क्या कहूँ! आपके मनमें क्या है? क्या अपनी रिपोर्टके खिलाफ काम करके जहन्नुममें मिलूँ ?

माया—आप तो न जाने क्या सोच रहे हैं। मैं उसके लिए कुछ भी नहीं करना चाहता। वह तो ईश्वराधीन है जो कुछ होगा, देखा जायगा। मैं ऐसे कामके लिए आया हूँ जो आपके हाथमें है।

दारोगाने चकित होकर पूछा,—सो क्या ?

माया—क्या मैं यह जान सकता हूँ कि कुंवरकी लड़की किस अपराधके कारण पकड़कर मँगायी गयी है ?

दारोगाने कड़े स्वरमें पूछा,—कौन कुंवर ?

माया—वही कुंवर जिनके हाथमें इस समय आपकी नौकरी है।

दारोगाने उत्तेजित होकर कहा,—वह तो अभी-अभी फरियाद करके गया है। जान पड़ता है कि उसे आपहीने छिपा रखा है और मुझपर इलजाम लगानेका यह जरिया सोच निकाला है।

माया—जोरकी बातें करनेमें कोई लाभ नहीं है। मुझे सारी बातें मालूम हो गयी हैं, अब कृपा करके उसे छोड़ दीजिये। किसी-

की बहू-बेटीका धर्म बिगाड़ना आप-सरीखे पढ़े-लिखे और जिम्मेदार आदमीका काम नहीं है।

दारोगाने रूखी हँसी हँसकर कहा—क्या खूब! कलके लड़के होकर आये हो खेल खेलने। अरे म्यां, पुलिसमें काम करते मुझे पन्द्रह साल गुजर गये।

माया—ईश्वर करें इसी तरह आपकी जिन्दगी बीत जाय। पर मेहरबानी करके उसे छोड़ दीजिये।

दारोगाने भाव बदलते हुए कड़े स्वरमें कहा,—तुम कैसे बदतमीज आदमी हो जी? मेरे पास किस सालेकी बहन-बेटी बैठी है कि छोड़ दूँ?

मायाधरने शान्ति-पूर्वक कहा,—खैर मैं बदतमीज ही सही, पर अपनी तमीजदारी दिखलानेके लिए उसे छोड़ दीजिये। उसके छोड़नेमें ही आपकी भलाई है।

दारोगा—जबान सँभालकर निकालो, नहीं तो खैर न होगी।

मायाधर—मैं अपनी खैर चाहने नहीं आया हूँ बल्कि उस लड़कीको छुड़ाकर आपकी भलाई करने आया हूँ।

इतना सुनते ही दारोगाका चेहरा तमतमा उठा। त्योरियाँ बदलकर बोले,—ठहरिये अभी छोड़ता हूँ।

यह कहकर दारोगाने आवाज दी,—ए! कौन है, कानिष्टिबिल! इधर आओ!

'हुजुर' कहते हुए दो सिपाही आ गये।

दारोगाने कहा,—इन लोगोंको पकड़कर कोठरीके भीतर बन्द कर दो।

दोनों सिपाही पकड़नेके लिए चले। मायाधरने बड़े ज़ोरसे डपटकर कहा,—खबरदार!

उनके साथके आदमीने कहा,—आगे न बढ़ना, नहीं तो खाल खींच लूँगा।

सिपाही ठिठक गये। सोचा, कहीं ऐसा न हो कि और आदमी टूट पड़ें। दारोगाने उत्तेजित होकर कहा,—बुजदिलो, देखते क्या हो। जल्दी पकड़ो!

सिपाही लपके। मायाधर दो कदम पीछे हट गये। इतनेमें गाँवके सधे हुए लोग वहाँ पहुँच गये। उनमें अधिकांश ऐसे लोग थे, जिनकी अभी रेख भीन रही थी। एकने दारोगाका हाथ पकड़ लिया। पीटना ही चाहता था कि मायाधरने रोक दिया। अब तो थानेदारकी अक्लपर पड़ा हुआ पर्दा हट गया। सिपाही भी हक्के-बक्केसे होकर लोगोंके मुँह निहारने लगे।

मायाधरने बड़ी शान्तिके साथ गाँववालोंसे कहा,—थानेके, किसीभी आदमीको ज़रा भी कष्ट न हो। मारने-पीटनेकी ज़रूरत नहीं। दो आदमी जाकर उस दक्खिनवाली कोठरीके भीतरसे लड़की-को निकाल लाओ। यदि उस कोठरीमें ताला लगा हो, तो दारोगा-जीसे चाभी माँगो; न मिलनेपर ताला तोड़ दो। पीछे जो कुछ होगा, मैं देख लूँगा।

लोगोंने ऐसा ही किया। चाभी माँगनेपर दारोगाने मीन-मेष कुछ भी नहीं किया। सोचा, इस समय झंझट दूर हो, कल इनके ऊपर दूसरा मुकदमा कायम किया जायगा।

जब लड़की सामने आयी, तब मायाधरने दारोगासे कहा,—कहिये जनाब! यह कहाँसे आ गयी? छिः छिः आपको अपने कर्म-पर शर्म आनी चाहिए।

दारोगाने कुछ नहीं कहा। लड़की भयके मारे काँप रही थी।

मायाधरने पूछा,—क्योंरी, तू यहाँ कैसे आयी?

वह रोने लगी। बाद मायाधरके पैरों पड़कर रोती हुई बोली,—जबरजहती धइ लियायेन सरकार।

माया—क्यों पकड़ लाये? साफ-साफ कह, डर मत। मेरे रहते तेरा कोई कुछ नहीं कर सकता।

औरत—ई हम नाहीं जानित। बाकी जौ सरकार थोरिक बेर अउर न आई होतें तौ ए सभे हमैं बेइज्जति—यह कहकर उसने मुँह ढँक लिया और जोरसे विलाप करके रोना शुरू किया।

मायाधरने दारोगाकी ओर हेय दृष्टिसे देखते हुए कहा,—बड़े शर्मकी बात है दारोगाजी! पढ़े-लिखे आदमीको इतना कमीनेपनका काम नहीं करना चाहिए दारोगा साहब! जब आप ही ऐसा जुर्म कर रहे हैं, तब आप प्रबन्ध क्या करेंगे,—और क्या शान्ति स्थापित करेंगे!

दारोगाकी जबान न खुली। मायाधर उस लड़कीको उसके

घर पहुँचानेकी व्यवस्था करके अपने घर चले आये। उनके जाते ही दारोगा साहब सब सिपाहियों तथा और भी बहुतसे बाहरी आदमियोंको अपनी अक्ल और होशियारीका इस प्रकार परिचय देने लगे,—कल डाकाजनीकी रिपोर्ट भेजकर बच्चूको मजा चखा दूँगा। उस हरामजादीकी हिम्मत तो देखो। एक तो कुंवरवासे कुछ काम निकालना है, दूसरे कल ही कचहरी भी जाना है, नहीं तो अभी मैं उसे रोक लेता। देखता इस लौंडेकी हिम्मत। खैर कोई मुजायका नहीं। छिनालको अपनी बीबी बनाकर छोड़ूँगा। और मायापुरकी तो जो हालत कर दूँगा, उसे दुनिया देखेगी। वह भी क्या समझेंगे कि किसी पुलिससे काम पड़ा था।

कुंवर अन्धेरेमें बैठा सब सुन रहा था। बड़ी देरतक दारोगाकी बातें होनेके बाद जब सबलोग उठकर जाने लगे, तब कुंवर भी चुपचाप छिपकर चला आया। घर न जाकर वह सीधे उस आदमीके पास गया, जिसकी लड़कीपर उस दिन भूत चढ़ा था और जिसके कारण खूनका मुकद्दमा चलाया गया था। वहींपर बाकी दो गवाहोंको बुलाकर बातें की।

थोड़ी रात शेष रहते ही दरोगाके दो सिपाही बुलानेके लिए आये। उस समय भी वे बातें ही कर रहे थे। किन्तु कामकी बातें हो चुकी थीं। सिपाहियोंको देखते ही सबके सब खामोश हो गये और झटपट तैयार होकर चारों गवाह कचहरीमें

हाजिर होनेके लिए सिपाहियोंके साथ चल पड़े। रास्तेभर चारो गवाहोंको दारोगाजीके आज्ञानुसार सिपाहीलोग एक-एक अक्षर रटाते गये।

यथासमय जजीमें मुकदमा पेश हुआ। रमा हाजिर थी। सदायतनकी मृत्युके सम्वादपर सरकारी वकीलने कहा,—इसमें भी काररवाई की गयी है। सब-इन्सपेक्टरके पास इस बातका काफी सुबूत है।

मायाधरके वकीलने डाक्टरका सर्टिफिकेट दिखलाकर भ्रम दूर कर दिया। डाक्टरने साफ लिखा था कि सदायतनकी मृत्यु केवल गहरी चिन्ताके कारण हुई है। इन्हें दूसरा कोई भी रोग नहीं था।

पश्चात् कुबेरकी पुकार हुई। उसने इस आशयका इजहार दिया,—हम सभे सरकार कै परजा हई हजूर। कौनो काम बिगड़ेपर जरूरै रंज होथैं। कबौं मारिउ देथैं। ओहू दिन एक थवरा मारे रहैं, सुना ओकर हमें सभै माँख नाहीं बा। परवरिस तौ ओ करथैं मारी-गरियाई के?

जज—ठहरो, जो बात पूछी जाय, उसीका जवाब दो। व्यर्थकी बातें न कहो।

कुबेर—बहुत अच्छा हजूर।

सरकारी वकील—सदायतनकी लड़की रमासे तुम्हारी मुहब्बत थी न?

कुंवर—हाँ सरकार, अइसन गुद्दी और दया करैवारी बिटिया बसुधामें नाहीं हई।

वकील—यह मैं नहीं पूछ रहा हूँ। मेरे पूछनेका मतलब यह है कि रमाकी चाल-चलन खराब है न?

कुंवर—के सरवा कह थै सरकार? राम राम, अइसन लछिमी तो हम देखबै नाहीं किहा।

वकील—तो क्या उस दिन जब तुमने रमासे मजाक किया था, तब सुमेरने भी कुछ कहा था?

कुंवर सब भूठ बात हौ।

वकील—अच्छा तो क्या रमाने यों ही सुमेरको जमीनपर झोंक दिया था?

कुंवर—ओ तो घरसे बहरे निकरबै नाहीं करती सरकार झांकिहै केके गरीब परवर!

वकील—अगर रमाका धक्का न लगा होता तो सुमेर न मरता न?

मायाधरके वकीलने सरकारी वकीलके पूछनेके ढंगपर आपत्ति करते हुए कहा,—ऐसा प्रश्न करना सर्वथा अनुचित है जिसका जवाब केवल अपने पक्षमें मिलनेकी सम्भावना हो। 'मारा न!' ऐसा हुआ न!' 'चाल-चलन खराब है न!' आदि प्रश्नोंका उत्तर देहाती आदमी बहुधा 'हाँ' दे सकता है। इसलिए ऐसे ढंगसे 'फांस' न करनेके लिए सरकारी वकीलको चेतावनी दे देनेके लिए अदालतसे प्रार्थना है।

जजने ऐसा ही किया। सरकारी वकीलने जजकी आज्ञाको

मानते हुए पूछा,—अच्छा, अगर रमाका धक्का न लगा होता तो वह मरता या नहीं ?

कुबेर—हम नाहीं समझा हजूर।

सरकारी वकील—मैं यह पूछता हूँ कि अगर रमाने सुमेरको ढकेल न दिया होता, तो वह मरता या नहीं ?

कुबेर—बिधाता जानैं। उनकर लिखा के टारि सकत हैं।

वकील—अच्छा, तो आखिरकार सुमेर कैसे मरा ?

कुबेर—ई हम नाहीं जानित। काहेसे की थानेपर दरोगाजी ओके कोठरीमें बन्द कराइ दिहे रहेनि। अब भीतर कै हाल केहू देखत हो ?

वकील साहब चुप होकर बैठ गये। मायाधरके वकीलने क्रास (Cross) करके कुबेरसे यह कहलवा लिया कि यह सब दारोगाकी कारवाई है। वह पहले कुबेरको ही मरवाना चाहते थे, पर उसमें सहूलियत न होनेपर सुमेरके घरवालोंको कुछ रुपयेकी लालच दिखाकर उन्होंने सुमेरको भीतर बुलाया और उसे खतम करकर एक धनी परिवारपर इस प्रकार मामला चलाया।

ओफ! कितना स्वार्थी और कठोर संसार है कभी-कभी दूसरेको आफतमें डालनेके लिए मनुष्य अपनी प्यारीसे-प्यारी वस्तुको यहाँतक कि घरके प्राणीको भी, सदाके लिए अलग कर देनेमें नहीं हिचकता। यही कारण है कि सुमेरके भाईने कहा था,—'एक दिन तो मरना ही है।'

इसी प्रकार बाकी तीन गवाहोंके बयान भी बिलकुल सत्य और दारोगाके विरुद्ध हुए। दारोगाका कलेजा सूख गया—काटो तो खून नहीं! मायाधरके हितैषी भी उठे। सबलोग आश्चर्यमें आ गये; किन्तु रमा जैसी पहले थी, वैसी ही अब भी। उसके हृदयमें न तो पहले खेद ही था और न अब किसी प्रकारकी प्रसन्नता ही। उसमें ज्योंकी-त्यों धीरता बनी रही। लोग उसकी धीरता देखकर दंग रह गये।

मुकदमेकी सारी कार्रवाई समाप्त हो जानेपर निश्चित तारीखपर जजने रमादेवीको निरपराध छोड़ दिया। दारोगाका बाल भी बाँका भी नहीं हुआ। चाहिए तो यह था कि इतने साफ सबूतपर वह फाँसी-पर लटका दिये जाते; किन्तु वह सब, कुछ भी न हुआ। सिर्फ उनकी नौकरी छूट गयी, मायाधरपर वह बेचारे दूसरा मुकदमा दायर करनेवाला न चला सके। दिलकी हवस दिलहीमें रह गयी। लोगोंका अनुमान था कि यदि वह मुकदमा चलानेकी नौबत भी आती तो एक भी सुबूत उन्हें न मिलता, उलटी मुँहकी खानी पड़ती।

कुछ लोगोंने कहा—यह सब झूठी कल्पना है। जिस राज्यमें इतना साफ सबूत मिलनेपर भी खूनी दारोगाको छोड़कर सरेआम न्यायका दिवाला निकाला जा रहा है, उसमें पुलिसको नीचा दिखानेकी आशा करना दुराशा मात्र है।

फैसला सुनकर कचहरीसे बाहर निकलते ही कुँवर सथा सुमद्रा

दोनों आकर मायाधरके पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगे। कहा,—भैया, हमार पचके कसूर माफ होइ।

मायाधरने बड़े प्रेमसे दोनोंकी पीठपर हाथ रखकर कहा,—तुमलोगोंने कोई कसूर नहीं किया। यदि हमलोगोंने शिक्षाका प्रबन्ध किया होता, तुमलोगोंको शिक्षित बनाया होता, तो ऐसा क्यों होता? सच पूछो तो सारा दोष हमलोगोंका ही है। ऊँची जातिवालोंने ही दलित जातियोंको ऐसी निकम्मी बना डाला है कि उनमें मनुष्यत्व, आत्माभिमान, जातीय गौरव आदि कुछ भी नहीं रह गया है। उनमें निजी बुद्धि भी नहीं रह गयी है, जिस समय जिसका अधिक दबाव पड़ता है, उस समय वैसा ही उन्हें काम करना पड़ता है।

कुबेर—एतना कुलि भयेउपर ओहि दिन सरकारै हमरे बिटियाकै इज्जति बँचायेन। हाय राम, ऐसे देवताके ऊपर हम दरोगा ससुरके कहेमें आइ कै ई कुलि किहा, हमार न जानी कवन गति होई!

माया—अब इसकी चिन्ता न करो, तुमलोग अपने घरोंमें आकर रहो। मुझे कोई रंज नहीं है।

इसके बाद कुबेर भुलइयाके पैरपर गिरा। कहा,—तू जवन डाँड़ लगावा, डंड दा, ऊ सब हमके मंजूर बा। हाय! ओहि दिन हमही ओझाई करैके बहाने तोहरे घर जाइके तोहरे पतोहू कै इज्जति उतारा।

भुलइया यह हाल पहले ही सुन चुका था, अतः दुःखी भावसे

प्रणय

इसके [illegible] — [illegible] संजोग था, नूतन था। अब [illegible] नहीं [illegible]।

[illegible]। यह दूसरी आन्दोलनसे निकल [illegible]। इस समय और मुकदमेका [illegible] उसे जाने नहीं देगा। [illegible] अभिमानको छोड़कर हार [illegible]। इस प्रकार सत्यकी तो विजय हुई, पर [illegible] नहीं मिला; दयालुता और [illegible] अधिकार तो जमाया, पर पापी और [illegible]। [illegible], [illegible] पं० मायाधर तो उदा-[illegible]। [illegible], धर्म तत्परता तथा परोप-कारिताकी [illegible] नहीं बल्कि आस पासके गाँवों तक फैल गयी।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

अब पाठकगण एक बार रामपुरकी सैर करें। यहाँ प्रभाने पूर्णरूपसे अधिकार जमा लिया। रमाके लड़का पैदा होते ही उसने अपनी सत्यता पूर्णरूपसे प्रमाणित कर दी। अपनी पुत्र-वधूकी दुश्चरित्रताका स्मरण करके पं० शम्भूदयाल दुःखी रहने लगे। कुछ ही दिनोंमें वह सन्निपात-ज्वरमें ग्रस्त होनेके कारण चल बसे। देवकी भी पति-शोकको अधिक दिनोंतक सहन न करके उनकी मृत्युके महीनेभर बाद ही इस संसारसे बिदा हो गयी। किन्तु माता-पिताकी मृत्युसे धर्मदत्तको किसी प्रकारकी पीड़ा न हुई। बल्कि इससे वह प्रसन्न ही हुए। स्त्रीके कहनेमें आकर उन्होंने माँ बापकी मृत्युका समाचारतक ज्ञानदत्तके पास नहीं भेजा, रुग्णावस्थामें बुलाना तो दूर रहा।

इधर प्रभाके माँ-बापका भी प्लेगके कारण सर्वनाश हो गया। कोई पिंडा-पानी देनेवाला भी नहीं रह गया। इसलिए उन्होंने जीवितावस्थामें ही अपनी सारी जायदाद प्रभा और धर्मदत्तके नामसे बक्सीस लिख दी थी। लिखकर रजिस्ट्री करानेके दो महीने बाद वे विकराल कालके ग्रास हो गये। धर्मदत्त उस सम्पत्तिके मालिक बने। अब उन्होंने लालचमें पड़कर ज्ञानदत्त-

से अलग होनेकी ठानी। किन्तु ज्ञानदत्त कभी घर आये ही नहीं। इन्हीं दिनों यह भी समाचार मिला कि रमा घरसे निकलकर कहीं चली गयी। प्रभा प्रसन्नताके कारण नाचने लगी। समझा, अब कुछ ही दिनोंमें सारी सम्पत्ति मेरी हो जायगी। अब उसका जीवन-पथ निष्कंटक हो गया। घरकी मालकिन हो गयी। मैकेकी जायदाद मिलनेसे आर्थिक स्थिति भी अच्छी हो गयी। पति-पत्नीमें केवल ज्ञानदत्तकी चिन्ता रह गयी। यदि वह एक बार आते, और अपना हिस्सा अलग कर लेते तो दोनोंको निश्चिन्तता हो जाती। क्योंकि पीछे देश-गाँवके लोग ससुरालकी सम्पत्तिमें भी ज्ञानदत्तका भाग लगावेंगे, यह बात ठीक न होगी।

इरादा तो यह था कि किसी प्रकारसे ज्ञानदत्तका हिस्सा भी अपना हो जाय। किन्तु ऐसा करनेमें केवल बदनामी होगी, हाथ कुछ न लगेगा, यही सोचकर इसके सम्बन्धमें धर्मदत्तने किसी प्रकारका काम नहीं किया हाँ, यह अवश्य किया कि यदि गाँवमें ज्ञानदत्तके विवाहकी चर्चा चलती तो वह कह देते कि वह तो होटलमें खाते हैं। ऐसी अफवाह इसलिए उड़ायी जाती थी, जिसमें ज्ञानदत्तका विवाह कभी न हो और सम्पत्तिका मालिक चिरं० जगदीश हो।

जेठके महीनेमें दोनोंकी इच्छा पूर्ण हुई। ज्ञानदत्त घर आ माँ-बापको न देखकर बड़े चकित हुए। उनके दिलकी

उमंग जाती रही। इतने दिनोंमें बड़े यत्नसे सात हज़ार रुपये जुटाकर वह घर आये थे। सोचा था, किसीका ऋण-भार सिर-से उतारकर माँ-बापको प्रसन्न करूँगा। किन्तु हाल सुनते ही वह अवाक हो गये। बालककी भाँति फूट-फूटकर रोने लगे। कहा—भैया, आपने मुझे समाचारतक नहीं भेजा!

धर्मदत्तने कहा—मैंने तो दो पत्र दिये, किन्तु तुम्हारी ओरसे एकका भी उत्तर नहीं आया।

प्रभाने पतिकी बातको पुष्ट करनेके लिए कहा,—एक चिट्ठी तो मैंने अपने सामने लिखवायी थी।

यद्यपि ज्ञानदत्तको भाईकी बातपर विश्वास नहीं हुआ, तथापि कुछ कहना व्यर्थ समझकर नहीं बोले। सोचने लगे—अब चाहे कितनी ही सम्पत्ति कमायी जाय, बाबूजी न देख सकेंगे। हाय! उनकी अभिलाषा ज़रा भी पूरी न हुई। उनका यह कहना नहीं भूलता कि, "कोई ऐसा दिन भी आवेगा, जब मैं ज्ञानूकी कमायीसे अपनेको ऋण-मुक्त होता देखूँगा?" आज बाबूजीको इन सात हज़ार रुपयोंसे कितनी बड़ी प्रसन्नता होती! उनकी प्रसन्नतासे मुझे कितना आनन्द मिलता!

उस दिन ज्ञानदत्तने कुछ नहीं खाया। सवेरे जब स्नानादिसे निवृत्त होकर आँगनमें जलपान करने बैठे, तब धर्मदत्तने कहा,—भाई ज्ञानू, भले मौकेसे आये हो, अबकी बार तुम अपना हिस्सा अलग करते जाओ। बात यह है कि झंझटकी गृहस्थी है, लोग

यह कहेंगे, ज्ञानू यहाँ नहीं रहते थे, ये लोग सब खा गये। इस प्रकार लोकमें व्यर्थकी मेरी निन्दा होने लगेगी।

ज्ञानदत्तने आश्चर्यमें पड़कर कहा,—मैंने तो ऐसा कभी नहीं कहा भैया! लोगोंके कहनेसे क्या होता है?

धर्मदत्त—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि न तो तुमने आज तक ऐसा कहा है, और न कहोगे। लेकिन लोगोंका कहना क्या कम कलंककी बात है? इसमें हर्ज ही क्या है, सारी सम्पत्ति बाँट ली जाय, यदि तुम कहोगे तो तुम्हारी ओरसे तुम्हारा तहसील मैं ही कर दिया करूँगा।

ज्ञानदत्त थोड़ी देरतक चुप रहे। बाद बोले,—यह अत्यन्त लज्जाकी बात है। लोग कहेंगे, पिताके मरते ही दोनों भाइयोंमें नहीं पटी, अलग हो गये। जब······

धर्मदत्तने बात काटकर कहा,—किन्तु कुछ ही दिनोंतक। जब लोग हमारा और तुम्हारा प्रेम पूर्ववत् ही देखेंगे, तब स्वयं ही लोग अपनी भूल मान लेंगे।

ज्ञानदत्तने कहा,—मैं अपने जीवनमें ऐसा नहीं कर सकता। यदि आप कहें तो मैं यह लिख दूँ कि 'आप इस सारी सम्पत्तिको चाहे आज ही ले लें, मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं।

यह सुनकर धर्मदत्त बड़े पेचमें पड़ गये। अन्ततः सहोदर भाई ही तो थे, कहाँतक हृदय कठोर कर सकेंगे। कुछ भी न बोल सके। 'सिखायी बुद्धि उपजायी माया नहीं होती।'

प्रणय

स्वामीको चुप देखकर मायाविनी प्रभा बोल उठी,—सो क्या हमलोगोंको नहीं मालूम है ज्ञानू बबुआ। मैं तुमको बाबासे कम नहीं समझती। लेकिन तुम मेरा कहना मानो, जैसा कहा जा रहा है, वैसा ही करो। इससे यह न समझो कि माया कम हो जायगी।

ज्ञानदत्तने निष्कपट भावसे कहा,—मुझे पिताकी सम्पत्तिका जरा भी लोभ नही है। मैं अपना हिस्सा भैयाके नामसे बेंची कर दूँगा। तब तो लोगोंको कुछ कहनेका अवसर न मिलेगा न?

अब तो प्रभा भी निरुत्तर हो गयी। ज्ञानदत्तने फिर कहा,—चलिये कल लिख-पढ़कर रजिस्ट्री करा दूँ।

धर्मदत्तने कहा,—नहीं ऐसा करना ठीक नहीं है जिन्दगीका कोई ठिकाना नहीं; कल मेरे शरीरका कुछ हो जाय तो तुम किसी ओरके न रहोगे।

ज्ञानदत्तने बड़े ही शान्त भावसे कहा,—इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। जब मेरे दुर्भाग्यसे तुम्हीं न रहोगे, तब यह सब लेकर ही मैं क्या करूँगा?

प्रभाने स्वामीकी ओर मुख करके कहा,—जैसा ज्ञानू बबुआ कहें वैसा क्यों नहीं करते? क्या बाबाको तुम इतना नीच समझते हो? बबुआका कहना ठीक है। बेंची लिख देनेपर हमलोगोंको कोई कलंक न लगा सकेगा।

ज्ञानदत्तको भाभीका उक्त कथन नहीं जँचा। प्रभाका कपट-पूर्ण हृदय उन्हें खटक गया। फिर भी वह कुछ नहीं बोले। जलपान

करके बाहर चले आये। गाँववालोंसे बात-चीत होनेपर भाईके आन्तरिक अभिप्रायका पता चल गया। अब उनका हृदय सतर्क हो गया। यों तो वह अपनी सारी सम्पत्ति भाईको देनेके लिए तैयार थे; किन्तु जब यह सुना कि 'ससुरालका धन पाकर अपनी गृहस्थी बढ़ानेके लिए वह ऐसा कर रहे हैं, तब वह भी कड़े हो गये।

दो दिन बीत गये। ज्ञानदत्तने बँटवारा करनेकी चर्चा नहीं की। इसलिए स्वामीकी उपस्थितिमें प्रभाने फिर वही बात छेड़ी,—सब बाँट डालो न, नहीं तो बबुआ चले जायँगे।

यह बात इसलिए कही गयी कि ज्ञानदत्त फिर बँटवारा करनेके लिए कहेंगे। किन्तु उन्होंने यह कहा कि,—यदि आपकी यही इच्छा है तो फिर देर करनेकी क्या जरूरत है?

धर्मदत्त और प्रभाका हृदय स्तब्ध हो गया। थोड़ा-कालतक चुप रहनेके बाद धर्मदत्तने कहा,—आज बैठो, सब समझकर ठीक कर लिया जाय।

ज्ञानदत्तने कहा,—अच्छी बात है।

दोनों भाइयोंका बँटवारा होकर लिखा-पढ़ी हो गयी। ज्ञानदत्त अपने भतीजेको पाँच सौ रुपये देकर कलकत्ता चले गये। अब धर्मदत्तने अपनी इच्छाके अनुसार विस्तार शुरू कर दिया। ससुरालकी कुछ सम्पत्ति बेच करके उन्होंने गिरों लिखी हुई अपने हिस्सेकी सारी जायदाद छुड़ा ली। स्त्री-पुरुष प्रसन्न-चित्त होकर आपसमें सलाह करके सारा कार्य करने लगे। किसीका देना नहीं

रह गया, इस लिए गृहस्थीसे अच्छी आय होनेकी आशा करके दोनों विह्वल हो उठे। अमीरी भी खूब बढ़ गयी। लड़केकी शिक्षाका प्रबन्ध घरपर ही किया गया; ताकि वह नजरोंसे ओझल न रहे।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

उस दिन पिताके घरसे निकलकर दो दिनमें रमा शान्तिपुर नामक गाँवमें पहुँची। यह गाँव पहाड़ी हिस्सेमें था। उसने वहाँ पहुँचने तथा रहनेका प्रबन्ध उसी समय कर लिया था, जब भावजोंके दिलमें उसके प्रति बुरा भाव पैदा हुआ; किन्तु यही सोचकर वह कहीं नहीं हटी कि जबतक निभ सके, निर्वाह करना चाहिए—संसारमें घबरानेसे काम नहीं चलता। इसलिए वहाँ पहुँचनेमें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं पड़ी। मार्गमें उसने बहुतसी नवीन बातोंका अनुभव किया। जब वह सड़ककी ओर जा रही थी, तब बहुतसे मदान्ध युवक ही क्यों अधेड़ बुड्ढ भी बोली बोलते थे, गन्दे शब्दोंका प्रयोग भी कर बैठते थे। जब वह रेलपर बैठी, तब उसकी गाड़ीमें बैठे हुए कितने ही मनुष्य तेजीसे दौड़ती हुई गाड़ीके बाहर हाथ

निकालकर जमीनपर खड़ी हुई स्त्रियोंको सुनाते और गला फाड़कर चिल्लाते थे। समाजकी यह कुत्सित दशा देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। यहाँतक कि एकबार उसका चेहरा तमतमा उठा; किन्तु शान्त और मधुर शब्दोंमें ही बोली,—क्यों मेरे भाई! आप ऋषियोंके वंशमें जन्म लेकर ऐसा कर रहे हैं? भला बतलाइये तो, इससे किसकी हानि हो रही है? आपकी या किसी दूसरेकी? ऐसी गन्दी हरकतोंसे मन पापी हो जाता है।

यह सुनकर वह आदमी बड़ा लज्जित हुआ। सोचा, सचमुच ही इससे क्या लाभ है? कहाँ तो रमा हवामें बातें कर रही है और कहाँ ये बातें। उसे पा भी तो नहीं सकते।

फिर तो और लोग भी इन बातोंकी निन्दा करने लगे। रमाने कहा,—ऐसी आदतोंसे प्रत्येक मनुष्यको दूर रहना चाहिए और दूसरोंको भी दूर रखनेका प्रयत्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कड़ी जबान भी अपने मुखसे कभी न निकालनी चाहिए।

इस प्रकार देशकी दशाका अनुभव करते हुए शान्तिके भेजे हुए विश्वासी आदमियोंके साथ रमा शान्तिपुर गाँवके क्षत्रिय जमींदारकी स्त्री शान्तिके यहाँ आकर ठहरी। विधवा शान्ति अपने घरमें अकेली थी और वही मालकिन थी। एकबार रमाकी कथामें वह भी कहींसे आ गयी थी, अतः रमापर उसकी बड़ी श्रद्धा हो गयी। उस समय अपने यहाँ चलनेके लिए उसने रमासे अनुरोध भी किया था, पर उस समय वह न आ सकी। आज रमाके आनेपर उसने

बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। रमा भी उत्तमोत्तम कथाएँ उसे सुनाने लगी। तारीखके दिन कचहरी आते समय उसके साथ पालकी-में बैठकर शान्ति भी आयी। मुकदमा समाप्त होते ही रमा उसी पालकीमें जा बैठी और चली गयी। अतः किसीको इस बातका पता न चला कि वह कहाँ गयी।

उसी दिन शान्तिने अपना एक गाँव रमाके नाम दानपत्र लिखकर रजिस्ट्री करा दिया। किन्तु यह भेद रमाको मालूम नहीं था। एक दिन रमाने शान्तिसे कहा,—मुझे इस प्रकार बैठकर खाना अच्छा नहीं लग रहा है आप अपने इलाकेमें कहीं सौ दो सौ बीघेका पट्टा कर दें, मैं मालगुजारी दिया करूँगी और उसीसे उपार्जन करके निर्वाह करूँगी।

शान्तिने कहा,—मैंने तो आपको एक गाँव ही लिख दिया है।

यह कहकर उठी और सन्दूक खोलकर रजिस्ट्री किया हुआ कागज उठा लायी। रमा उसे पढ़ते ही अवाक् हो गयी। बोली,—इसे मैं कभी न लूँगी। मुझे गाँवकी जरूरत नहीं है।

शान्तिने कहा,—लेना ही पड़ेगा। मेरे कौन है, जिसके लिए संचय करके रक्खूँ?

रमाने कहा,—ऐसा न करो। लोग कहेंगे, इसने फुसलाकर गाँव ले लिया।

शान्ति,—किन्तु सूर्य्यपर धूलि-प्रक्षेप करना बेकार है।

प्रणय

रमा,—सो तो ठीक है, पर यह भी एक बन्धन है। अब मैं सम्पत्तिके बन्धनमें अपनेको नहीं जकड़ना चाहती।

शान्ति,—इससे आपके काममें बाधा न पहुँचेगी।

रमा बड़े फेरमें पड़ी। किसीकी दमड़ीकी चीज भी यों ही लेना उसके स्वभाव-विरुद्ध था। किन्तु संकोचवश वह अपने भावको शान्तिसे कह न सकी। बड़ी देरतक वाद विवाद होनेके बाद अन्तमें रमाने यह सोचा कि,—न लेनेसे शान्तिको बड़ा दुःख होगा। अब कोई उपाय नहीं है। मैं इस दानको स्वीकार कर लूँ। और इसकी सारी आय धर्म-कार्य्यमें व्यय कर दिया करूँगी। लेनेमें हानि ही क्या है।

यही सोचकर उसने दानपत्रको स्वीकार कर लिया। उसने उसी गाँवके बाहरी हिस्सेमें एक सुन्दर किन्तु छोटासा मकान अपने रहनेके लिए बनवाया। बेकार पड़ी हुई पर्ती जमीनमें बेर, केला, अमरूद, आम, कटहल आदिके कई बगीचे लगवा दिये, जिनसे कुछ ही दिनोंमें बहुत अच्छी आय होने लगी। अपने गाँवको कौन कहे आस-पासके गाँवोंमें उसने अपने रुपयेसे उत्तम शिक्षाका प्रबन्ध कर दिया। दिनभरमें एकबार शान्ति उससे मिलनेके लिए अवश्य आती थी। कभी-कभी रमा भी शान्तिके पास चली जाती थी। गाँवकी विलक्षण उन्नति देखकर शान्ति तो उसे साक्षात् देवी समझने लगी। शान्ति ही क्यों चार-छः कोसके लोगोंका ऐसा ही भाव हो गया। लोगोंकी

सेवा करनेके लिए रमाने एक चिकित्सालय भी खोल दिया। उसका निरीक्षण स्वयं करती थी।

कुछ ही दिनोंमें वहाँके लोगोंकी इतनी श्रद्धा बढ़ गयी कि कोई उसका नामतक नहीं लेता था। सबलोग उसकी पूजा करने लगे। कोल-किरात आदि जातियाँ उसके इशारेपर अपना सर्वस्व निछावर करनेके लिए तैयार हो गयीं। रमाने बिदापुर-की भाँति यहाँके प्रत्येक गाँवमें कार्यारम्भ कर दिया। जब सब जगहका काम सुचारु रूपसे चलने लगा, तब वह आगे बढ़ी। जगह-जगह व्याख्यान देकर शिक्षाका प्रचार करने लगी। उसने अपने कामसे देशके बड़े-बड़े नेताओंकी आँखें खोल दीं। नेताओं-को यह कहकर उसने फटकारना शुरू किया कि,—"यह सभी लोग जानते हैं कि श्रमके पीछे सम्पत्ति है; फिर भी नेतालोग कोई काम करनेसे पहले चन्दा करते हैं। यह बड़े ही दुःखकी बात है। मैं संसारको अपने कामोंसे—कोरे उपदेशोंसे नहीं—यह दिखला देना चाहती हूँ कि श्रमके पीछे सम्पत्ति किस तरह चेरी बनी फिरा करती है।" इस प्रकार वह घूम-घूमकर लोगोंको उपदेश देने लगी। वह जहाँ भी जाती, कोलों और भीलोंकी बड़ी सेना उसके साथ हो लेती। धीरे-धीरे भारतके कोने-कोनेमें रमा विख्यात हो गयी। बड़ी-बड़ी सार्वजनिक संस्थाओंमें उसकी बुलाहट होने लगी। देशकी विद्वन्मंडली उसे आदरकी दृष्टिसे देखने लगी।

रमाने अपने गाँवको ऐसे ढंगसे सजाया और उसकी इतनी

उन्नति की कि यदि उस गाँवकी सीमा चहारदीवारीसे घेर दी जाती तो वह एक बड़ा ही रमणीक स्थान कहलाता। बस्तीमें यदि सड़कें निकाल दी जातीं और कुछ पक्की इमारतें बन जातीं, तो वह एक नन्हा-सा नगर हो जाता। आवश्यकताकी ऐसी कोई वस्तु ही नहीं रह गयी, जो रमाके सुप्रबन्धसे इस गाँवमें न मिल सके। अब उसका निवास इस गाँवमें बहुत कम होने लगा। पहले तो उसे बालक विनयकी देख-रेख करनी पड़ती थी, किन्तु अब वह शान्तिके साथ इतना हिल-मिल गया कि उसकी वह चिन्ता भी बहुत-कुछ दूर हो गयी।



सत्ताईसवाँ परिच्छेद

उस दिनके बाद कई दिनोंतक लज्जावश कोई एक दूसरेके सामने न हो सका। यहाँतक कि जब एक दिन राजा साहिबके बुलानेपर पं० ज्ञानदत्तजी गये भी, तो रानी नहीं आयी। इससे उन्हें अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। सोचने लगे, इसके लिए रानीसे क्षमा माँगना आवश्यक है। किन्तु जब एक दिन रानीका सामना हुआ, तब उनके मुखसे शब्द ही न निकला। माना कि वहाँपर राजा साहिब भी उपस्थित थे, अतः ज्ञानदत्तके लिए खुले शब्दोंमें क्षमा-

प्रार्थी होना असम्भव था; किन्तु क्या प्रेमी-प्रेमिकाको केवल स्पष्ट शब्दोंमें वार्त्तालाप करनेकी आवश्यकता है? क्या वे मौनाभिनय नहीं करते? यदि हाँ, तो फिर ज्ञानदत्त सहस्रों मनुष्योंके बीचमें भी राजोके सामने प्रार्थी बन सकते थे। उनका प्रार्थी न बनना इस बातको प्रमाणित करता है कि वे संकोचवश संज्ञा-हीन हो गये।

किन्तु यह बात केवल ज्ञानदत्तके ही लिए नहीं कही जा सकती; राजोकी दशा तो उनसे भी बुरी हो गयी थी। उससे तो ज्ञानदत्तके सामने आया ही नहीं जाता था। वह यह भी समझती थी कि न चलनेसे बाबूजी सोचेंगे कि पहले तो इनके आते ही सब काम छोड़कर आ बैठती थी, अब क्या हो गया कि नहीं आती; फिर भी वह सामने नहीं हो सकती थी। उस दिन यदि वह पहलेहीसे पिताके पास बैठी न होती तो सम्भवतः आज भी वह उनके सामने न आती; आज क्या इस जीवनमें वह कभी भी ज्ञानदत्तके सामने न होती;—सम्मिलनके लिए मन-ही-मन छटपटाती, उनकी मानसिक पूजा करती, पहलेकी भाँति लुक-छिपकर प्रत्यक्ष दर्शन भी करती, किन्तु सामने कदापि न आती।

धीरे-धीरे कुछ ही दिनोंमें दोनोंके हृदयका संकोच फिर दूर हो गया। दोनोंकी हिचकिचाहट भी दूर हो गयी। प्रेम उस स्थानपर पहुँच गया, जहाँके आगे उसकी गति नहीं है। परन्तु अब राजोसे मिलनेके लिए पं० ज्ञानदत्त बहुधा चोर दरवाजेसे

आने लगे। यह चोर दरवाजा मकानके पिछवाड़ेकी ओर था और हमेशा बन्द रहा करता था। केवल खास-खास अवसरों पर ही खोला जाता था।

आज आनन्दके आनेकी बात थी। राजो प्रतीक्षामें बैठी थी। करीब दस बजे रातको पं० आनन्द अपने मित्र गौरी बाबूकी मोटरसे आकर अपने मकानके फाटकके सामने उतरकर खड़े हुए। राजोने देख लिया। स्वर-हीन भाषामें बातें हुईं। ड्राइवरके चले जानेपर आनन्द राजा साहिबके मकानके पिछवाड़े गये। यद्यपि वह गली दिनमें भी भयावनी प्रतीत होती थी, किन्तु प्रेमके पागल-को तो ऐसे स्थान सदा ही अमरपुरीसे बढ़कर आनन्द-दायक होते हैं। उसके दिमागमें तो ऐसे ही स्थानोंकी चाह रहती है। दरवाजा खुला और उनके भीतर जाते ही फिर पूर्ववत् बन्द हो गया। नीचे-ही नीचे युगल मूर्ति दोनों चौक डाँक आयी। फिर एक आलमारीका दरवाजा खोला गया। यह आलमारी दीवारमें लगी थी। इसी आलमारीके भीतर एक सीढ़ी थी जो दीवारके बीचमें बनी हुई थी और चोर दरवाजेकी भाँति भीतरसे हमेशा बन्द रहती थी। राजो इसे पहले ही खोलकर बाहर आयी थी। अतः धक्का देते ही वह खुल गयी और भीतरसे वह फिर बन्द कर ली गयी। अब यहींसे निष्कंटक मार्ग था, इसलिए बिजलीबत्तीके प्रकाशमें राजोके साथ आनन्द दीवारके बीचोबीच लगी हुई सीढ़ीसे उतरकर नीचे आये। यहाँ एक बड़ा लम्बा-चौड़ा कमरा था,

जो कि जमीनके नीचे गर्मीके दिनोंमें रहनेके लिए बनवाया गया था। यह राजोके अधिकारमें था और उसीके कमरेकी दीवारके बीचसे इस कमरेमें आनेके लिए रास्ता था। यह कमरा भी साधारणतया हरवक्त सजा रहता था; किन्तु इसमें धरी हुई सारी वस्तुएँ निर्धन धनाढ्यकीसी प्रतीत होती थीं। पलँगपर धूल जमी रहती थी, शीशेदार आलमारियाँ पोंछी न जानेके कारण सदा मलिन रहती थीं। फिर दूसरी सीढ़ीसे ऊपर चढ़ना शुरू किया। चढ़ाई समाप्त होनेपर राजोका राजसी सामान-से सुसज्जित कमरा मिला।

इस कमरेमें पहुँचकर दोनों प्रेममें विभोर हो गये। राजोने जरा रूठकर कहा—इस प्रकार नित्यकी चोरी मुझे अच्छी नहीं लगती।

ज्ञानदत्तने कहा,—चोरीमें आशातीत धन प्राप्त होने पर कुछ लोगोंको इसी प्रकार विराग उत्पन्न हो जाता है।

यह सुनकर राजोने मुस्कराते हुए ज्ञानदत्तकी ओर देखा। कहा,—जाओ, तुम बात टालते हो तो अब मैं कुछ न कहूँगी।

ज्ञानदत्तने कहा,—अच्छा सुनो, नाराज न हो; तुम्हीं बतलाओ कि और उपाय ही क्या है?

राजो—रोज रोज वही पाठ किया करूँ?

राजो कई बार ज्ञानदत्तसे विवाह करके अपने प्रेम-सम्बन्धको प्रकट करनेके लिए अनुरोध कर चुकी थी। किन्तु ज्ञानदत्तने कोई

उत्तर नहीं दिया था। इसीसे आज उसने कुछ रुककर उसकी कही।

ज्ञानदत्तने उसके कोमल और विकसित कपोलोंपर हाथ फेरते हुए कहा,—तुम्हारा कहना मुझे भी मालूम है; किन्तु देखो रानी, आज मैं तुमसे अपने दिलकी बात कहता हूँ। क्या तुम सुनना चाहती हो? सच बोलो, और समझकर बोलो! मैं साधारण बात नहीं कहने जा रहा हूँ। क्या तुम उसे सुननेके लिए तैयार हो?

रानीका पूर्व भाव दूर हो गया। उत्सुकतापूर्ण कोमल स्वरमें पूछा,—वह कौनसी बात है? ज़रूर सुनूँगी।

ज्ञानदत्तने कहा,—बात यह है कि तुम्हें कष्टमें मैं तनिक नहीं देखता। क्योंकि मैं एक साधारण स्थितिका मनुष्य हूँ। जितना तुम महीने भरमें व्यर्थ खर्च कर डालती हो, उतनी मेरी महीनेभरकी बीन-बटोरकर कुल आय नहीं है। ऐसी स्थितिमें तुम्हें आर्थिक कष्ट होगा, जोकि मेरे लिए असह्य हो जायगा। मैं तुम्हें कभी भी कष्टमें नहीं देखना चाहता। यदि मेरी संगतिमें तुम्हारा किसी प्रकार अहित होगा, तो मुझे पाप लगेगा। उससे मेरी अन्तरात्मा सन्तुष्ट न रहेगी। मैं—

ओफ! नारी हृदय कितना महान है! उसकी विशालताका पारावार नहीं। पुरुष तो अपने ज्ञान बलसे भी काम लेना चाहता है, अतः कुछ अन्तर अवश्य रह ही जाता है; पर स्त्री तो जिस वस्तुको चाहती है, उसको या तो वह अपनेमें मिला लेना चाहती है

और या स्वयं उसमें मिलकर अपने अस्तित्वको मिटा देती है। किन्तु पुरुषमें यह बात कहाँ? यदि होती तो क्या ज्ञानदत्त अपनी प्रणयिनीकी बातको विचारकी कसौटीपर कसते? नारी जिस वस्तुमें लग जाती है, उसमें अपनेको विलीन कर देती है—फिर वह इधर उधर कहीं नहीं देखती। यह है नारी हृदयकी अपूर्व निष्ठा! जिसको उसने पकड़ लिया, उसीमें वह अपनेको लीन कर देती है।

राजोने बात काटकर कहा,—दुःख है कि आप इतने बड़े विद्वान होकर ऐसी बातें कर रहे हैं। प्रेम रुपये-पैसे, धन-दौलत या मान-मर्यादाका भूखा नहीं। प्रेम, सम्पत्तिसे नहीं खरीदा जा सकता है। प्रेमको संसारमें किसी भी वस्तुकी चाह नहीं, वह केवल अपनेको चाहता है। प्रेमका सम्बन्ध केवल हृदयसे है, नकि रुपये-पैसेसे। प्रेम-लोक-निवासीके हृदयमें, अभाव क्या है,—इसकी भावना ही कभी उत्पन्न नहीं होती मेरे प्यारे! प्रेमको सुख और दुःख पहुँचानेवाला केवल प्रेम है। वह प्रेम, प्रेम ही नहीं, जो अपने प्रेमीके साथ भूखों रहकर दर-दरकी ठोकरें खाकर भी स्वर्ग-सुखको तुच्छ न समझे। प्रेम, नेत्रहीन है। उसे संसारकी अलभ्यसे भी अलभ्य वस्तु अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। रही मेरे अहितकी बात, सो आप ही सोचें कि मेरा अहित किसमें है? क्या समाजकी आँखोंमें धूल झोंककर इस प्रकार गुप्त सम्बन्ध रखना उचित है? और फिर यह बात क्या अधिक दिनोंतक छिपी रहेगी?

ज्ञानदत्त थोड़ी देरके लिए निरुत्तर हो गये। उन्होंने पहले

भी इस बातपर विचार किया था; किन्तु गम्भीरता-पूर्वक नहीं। आज राजोकी बात सुनकर उन्होंने बहुतसी बातोंका विचार किया। सोचते-सोचते एक बातपर आकर अटक गये। कहा,—देखो राजो, समझदार मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि वह कोई काम करनेके पहले भलीभाँति आगा-पीछा सोच ले। मेरा अनुमान है कि हमारे-तुम्हारे ब्याहको राजा साहिब स्वीकार न करेंगे। ऐसी दशामें हम-दोनोंको यहाँसे निकल जाना पड़ेगा। फिर समाज हमलोगोंको हेय दृष्टिसे देखने लगेगा। यह तुम जानती ही हो कि संसारमें जातीय अपमान सबसे अधिक कष्टदायक होता है।

राजोने घबराहटके साथ कहा,—तो क्या तुम मुझे इसी चिन्तामें रखना पसन्द करते हो और मेरे संकटके समय अलग हो जाना चाहते हो? मुझे किसी ओरकी न रहने दोगे?

इतना कहते ही राजो रो पड़ी। उसका हृदय ग्लानिसे भर गया। आगे वह एक शब्द भी न बोल सकी।

उसकी यह दशा देखकर ज्ञानदत्त भी व्याकुल हो उठे। उसको हृदयसे लगाते हुए सान्त्वना-पूर्ण शब्दोंमें कहा,—यह तुम क्या कह रही हो राजो? क्या तुम्हें विश्वास है कि मैं तुम्हें संकटमें छोड़कर—किसी ओरकी न रखकर—वेहा करके भी पृथक हो सकता हूँ?—प्यारी राजो, तुम्हारा यह समझना मेरे लिए डूब मरनेकी बात है। हमारा तुम्हारा असली विवाह

जो उसी दिन हो चुका, जिस दिन हम-दोनोंने एक दूसरेको अपनाया।

इतना कहते ही ज्ञानदत्तका गला भर आया। उन्होंने दुःख पूर्ण एक लम्बी साँस ली। राजोके हृदयपर गहरी चोट लगी। ज्ञानदत्तका दुःख उसे असह्य हो गया। तुरन्त ही करुणा-पूर्ण हृदयसे बोली,—मैंने यों ही पूछा है। भला ऐसा कभी मुझे विश्वास हो सकता है? क्या यह मैं नहीं जानती कि मेरा विवाह तो हो चुका?

ज्ञानदत्तको शान्ति मिली। बोले,—तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो। मैं तुम्हारे भविष्यको कभी भी अन्धकारमय न होने दूँगा। समय आनेपर मैं सब-कुछ करूँगा; किन्तु अभी कोई काम करना ठीक नहीं है।

राजोने कहा,—लेकिन बदनामी हो जानेके बाद समाजमें प्रतिष्ठा स्थापित करना बड़ा ही दूरूह काम है। यद्यपि हम-लोगोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका पाप नहीं है क्योंकि वैवाहिक सम्बन्ध तो प्रेम-सूत्रद्वारा ही सम्बद्ध होना चाहिए,—तथापि यदि कोई बात खुल जायगी तो निष्कलंक होते हुए भी हमलोगोंको चोर बनना पड़ेगा। इसीलिए मैं इतना कह रही हूँ और कोई बात नहीं है। जहाँतक मेरा अनुमान है, बाबूजी इसे कभी अस्वीकार न करेंगे और उन्हें इसमें कोई बात अनुचित भी न जँचेगी।

प्रणय

ज्ञानदत्त—किन्तु सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनसे कहना क्या चाहिए। यहींपर मेरी बुद्धि अटक जाती है।

राजो—अंड-बंड गम्भीर विषयोंका तत्वानुसन्धान करनेवाले व्यक्तिके लिए यह बतलानेका कोई प्रयोजन नहीं है और न तो उसके लिए यह कोई असम्भव ही है।

राजोकी वाक्-चातुरीसे पं० ज्ञानदत्तको हँसी आ गयी। बोले,—अच्छी बात है, अब मैं कोई यत्न सोचूँगा।

इस प्रकार बातोंका सिलसिला जारी ही था कि, बाहरसे किसीने दरवाजा खटखटाया। दोनोंका हृदय सन्न हो गया। ज्ञानदत्तके शरीरमें तो मानो प्राण ही नहीं रह गया। राजो झट उठी और दीवारके भीतरकी सीढ़ीका दरवाजा खोलकर ज्ञानदत्तको नीचे भेज दिया। पश्चात् उस दरवाजेमें ताला बन्द करके कमरेका दरवाजा खोलने गयी। उस समय उसका कलेजा धकधका रहा था। दरवाजा खोलते ही आवाज आयी,—इतना दिन चढ़ आया, अभीतक सोयी थी बेटी ? तेरी तबीयत तो अच्छी है न ?

यह बात सुनकर राजोके हृदयकी धड़कन कुछ कम हो गयी। दयामयी माँका दर्शन हुआ। बोली,—तबीयत तो ठीक है माँ। कमरेके सब दरवाजे बन्द थे, इसलिए भीतर मैं बत्तीके प्रकाशसे पुस्तक पढ़ रही थी, दिन चढ़ आनेका पता ही न चला। जान पड़ता है, घंटेसे ऊपर दिन चढ़ आया है। क्यों माँ ठीक है न ?

बातचीत करती हुई माँ-बेटी दोनों कमरेमें आकर बैठ गयीं।

प्रणय

माँने कहा,—अभी घंटेसे अधिक दिन नहीं चढ़ा है। तूने घड़ीकी आवाजपर भी ध्यान नहीं दिया ?

राजो—घड़ी तो मरम्मतके लिए गयी है न ? रिस्टवाच तो थी, किन्तु आलस्यवश मैंने उसे नहीं देखा।

माँ—खैर कोई हर्ज नहीं। क्योंरी राजो, तू तो कहती है कि तबीयत ठीक है, फिर तेरा चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों देख रही हूँ—यह कहकर माँने राजोके माथेपर हाथ रक्खा।

रति-मर्दिता राजोने कहा,—नहीं तो। तू तो हमेशा इसी तरह कहा करती है।

माँ—माथा भी तो गर्म है। जान पड़ता है, आज तू अधिक राततक पढ़ती रही है, तुझे मैं कितना समझाऊँ ? मैं तो हार गयी। तेरा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, क्योंकि तू तो चारपाई पकड़ेगी, और मरना होगा मुझे। दवा दो, डाक्टर बुलाओ, यह करो, वह करो, नाकमें दम हो जायगा। समझाती हूँ, मानती नहीं। हैरान हो गयी भगवान !

राजो नीचा सिर किये मातृ-स्नेहका आनन्द लेती रही। इतनेमें टेबुलपर उसकी दृष्टि गयी। जी झन्नसे हो गया। दरवाजेके पास पायन्दाजपर नजर पड़ी, प्राण सूख गये। कुछ सोचने लगी। तबतक माँने ध्यान भंग कर दिया। वह जो कुछ सोच रही थी, वही हुआ। माँने दरवाजेकी ओर ताककर पूछा,—यह जूता किसका है री बेटी ! कल तो पंडितजी नहीं आये थे न ?

प्रणय

राजोने झट गढ़कर उत्तर दिया,—पंडितजीका ही जूता है। यह परसोंका ही पड़ा हुआ है। अँगूठेमें दर्द था, इस लिए बाबूजीकी स्लीपर पहनकर इसे यहीं छोड़कर चले गये। जल्दीमें टोपी भी भूल गये। वह टेबुलपर पड़ी है।

माँ—हैं बड़े भोले आदमी। तूने भेजवा क्यों नहीं दिया? बेचारोंका हर्ज हुआ होगा न?

इस बातसे राजोके मानसने एक साधारण वेदनाका अनुभव किया। सोचा, माँ समझती है कि उनके पास एक ही टोपी है। माँकी दृष्टिमें वह गरीब हैं। कल उनके लिए चार-पाँच टोपियाँ, चार-छः जोड़े जूते, दस-पाँच सूट अच्छे कपड़े मँगवाकर रख छोड़ूँगी। किन्तु ऊपरसे उसने यही कहा,—इन्हें समझते तब तो मँगवा ही लेते। देखती नहीं, भिन्न-भिन्न तरहकी टोपियाँ लगाकर आया करते हैं?

माँने कहा,—अच्छा जाकर मुँह-हाथ धो, देर हो रही है।

राजो चली तो गयी, किन्तु उसका जी आनन्दके ऊपर लगा था। यद्यपि उन्हें वह सुरक्षित स्थानमें छोड़ आयी है, तथापि मानव-स्वभावानुसार उसे सन्तोष नहीं। कहीं ऐसा न हो कि कोई उन्हें देख ले। माँ अभीतक वहीं बैठी है। झटपट स्नानादिसे निवृत्त होकर फिर वह ऊपर आ गयी। देखा, उसकी माँ दो-तीन स्त्रियोंके साथ बैठी बातें कर रही है। बड़े फेरमें पड़ी। अभीतक वह शौच भी नहीं हुए। थोड़ी ही देरमें आफिस जानेका समय हो जायगा। है

परमात्मा ! इस संकटसे मुक्त करो। अब ऐसी भूल कभी न हो पावेगी।

नौ बज गये, रानी साहिबा नहीं हटीं। अब राजो व्याकुल हो गयी। कहा,—माँ, जरा कमरा धुलवानेका विचार है। बड़ा गन्दा हो गया है। कहो तो पानी मँगाऊँ।

लड़कीकी बात सुनते ही रानी साहिबा उठकर खड़ी हो गयीं। बोलीं,—सर्दीका दिन है, धुलवानेकी जरूरत नहीं है बेटी, सिर्फ गीले कपड़ेसे पोंछवा डाल। लेकिन तूने कुछ जलपान किया या नहीं ? मैं तो बातोंमें फँसी रह गयी।

राजोने कहा,—दाईसे कह आयी हूँ, लाती होगी।

एक स्त्रीने कहा,—कुँवरिको पूछनेकी क्या जरूरत ? यह तो उनका घर है।

रानी—नहीं जी, यह ऐसी भोली और पगली लड़की है कि अपने खाने-पीनेकी कुछ भी सुध नहीं रखती। अच्छा चलो उस कमरेमें बैठें।

इसके बाद सब स्त्रियोंको साथ लेकर वह अपने कमरेमें चली गयीं। राजोके सिरसे बला टली। अब अवकाश मिला। पानी लेकर नीचे गयी। चिन्तित ज्ञानदत्त धूलि-धूसरित पलँगपर पड़े राजोकी बातोंपर विचार कर रहे थे।—सचमुच ही यह निन्द्य बात है। इस प्रकारकी चोरीसे आत्मा पतित हो जायगी।

राजोको यह सुनकर सन्तोष हुआ कि आज समाचार-पत्रकी

आफिस बन्द रहेगी । इसलिए नीचे शौचादिका प्रबन्ध करके वह फिर ऊपर चली आयी । राजा साहिबका मकान इतना प्रकांड था कि ज्ञानदत्तको किसी चीजसे अड़चन नहीं पड़ी । राजो उनको शौच-स्नानादिके लिए एक ऐसे सुरक्षित और एकान्त स्थानमें पहुँचा आयी थी, जहाँ स्वप्नमें भी किसीसे मिलने या देखनेकी सम्भावना न थी । वह ज्यों ही सन्ध्यामें निरत होकर बैठे, त्यों ही राजो हलवा, दूध तथा कुछ नमकीन चीजें लेकर पहुँच गयी । इस प्रकार पालतू जानवरकी भाँति खाना-पानी चुगकर ज्ञानदत्त कठघरेमें पड़े पुस्तकावलोकन करते रहे । आज उन्हें विश्वास हो गया कि राजो अपनी प्रवीणतासे हर समय मेरी रक्षा कर सकती है ।

अवसर पाकर लगभग दो बजे ज्ञानदत्त बाहर निकले । फिर सदर फाटकसे होकर अपने कमरेमें आये । कमरेके दरवाजेपर ही गौरी बाबू खड़े थे । इन्हें देखते ही बोले,—तुम्हारे दिन भी पता नहीं लगता ।

ज्ञानदत्तने कहा—इम्पीरियल लाइब्रेरीमें कुछ काम था ।

गौरी—वहाँ आज क्या काम था ?

ज्ञानदत्त—दो-तीन पुस्तकें देखनी थीं । हाँ गौरी बाबू, कल उस पुस्तकके सम्बन्धमें मैंने नार्वे पत्र भेजा है ।

गौरी—किस पुस्तकके सम्बन्धमें ?—अच्छा हाँ, ठीक है । मुझे दृढ़ विश्वास है कि सवा लाखका 'नोबेल प्राइज' तुम्हें अवश्य मिलेगा ।

प्रणय

ज्ञान—जो कुछ होगा, देखा जायगा, अभीतक तो कुछ समाचार नहीं मिला।

गौरी—अच्छा सुनो, जिस कामके लिए मैं आया हूँ।

ज्ञान—कहो।

गौरी—आसाममें एक विराट् सभा होनेका आयोजन हो रहा है। क्या तुम्हारा भी चलनेका विचार है?

ज्ञान—अरे हाँ भाई, यह तो मैं तुमसे पूछनेहीवाला था। यह देवीजी कौन हैं? सुनते हैं, बड़ी साध्वी और प्रतिभाशालिनी हैं।

गौरी—सो तो मैं भी नहीं जानता कि वह कौन हैं। पर इतना मैंने भी सुना है कि वह बड़ी अपूर्व पंडिता हैं, उनके व्याख्यान बड़े ही ओजस्वी होते हैं। इस समय भारतके करोड़ों आदमी उनके झंडेके नीचे हैं। एक स्त्रीका इतना नाम पैदा कर लेना यार वास्तवमें आश्चर्यकी बात है।

ज्ञान—तभी तो आसाम-निवासी इतने समारोहके साथ उन्हें बुला रहे हैं। किन्तु इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है? भाई देखो, मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि किसी कामको जितनी तत्परताके साथ स्त्रियाँ कर सकती हैं, उतनी लगनके साथ वह काम पुरुषोंका किया नहीं हो सकता।

गौरी बाबूने चकित होकर पूछा,—अच्छा क्या आसामकी सभामें देवीजी भी आवेंगी? यह मुझे नहीं मालूम था। तब तो भाई, जरूर चलना चाहिए। क्यों, चलोगे न?

प्रणय

ज्ञान—जब तुम जा ही रहे हो तो मुझे ले चलकर क्या करोगे ? व्यर्थ ही कामका हर्ज होगा।

गौरी—तुम चलते तो और भी आनन्द आता। लेकिन इस समय तुम्हें फ़ुरसत मिलना ही कठिन है। खैर, कोई हर्ज नहीं। मैं रिपोर्ट भेज दूँगा।

ज्ञान—अच्छा एक काम और करना। उनसे एकान्तमें मिलकर भी बातें करना।

गौरी—अच्छी बात है।

ज्ञान—बड़े हर्षकी बात है कि हमारे प्रान्तमें ऐसी देवीका पदार्पण हुआ। उनके विलक्षण कार्योंको सुनकर आश्चर्यमें पड़ जाना पड़ता है। सचमुचमें ऐसी ही देवियोंसे देशका उद्धार होगा।

गौरी—इसमें क्या सन्देह। स्त्री-समाजके आगे बढ़े बिना देश और जातिकी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। मेरा विश्वास है कि कुछ ही दिनोंमें ऐसी असंख्य देवियाँ हो जायँगी और तभी देशका कल्याण होगा।

ज्ञान—अतः उनके आन्तरिक जीवनकी बातें जाननेके लिए भी प्रयत्न करना गौरी बाबू। क्योंकि अभीतक उनके सम्बन्धकी कोई भी बात किसी समाचार-पत्रमें नहीं निकली है।

गौरी बाबूने कहा,—चेष्टा करूँगा। मुश्किल यह है कि ऐसे लोगोंसे बातें करनेके लिए अवसर बहुत कम मिलता है। फिर भी मैं किसी-न-किसी तरह उनसे मिलूँगा अवश्य।

इसके बाद कुछ इधर-उधरकी बातें करके गौरी बाबू चले गये। ज्ञानदत्त अपने स्थानपर ही रह गये, क्योंकि उन्हें कुछ आवश्यक काम करना था।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

गौरी बाबू निश्चित समयपर आसाम पहुँच गये। सड़कें बन्दनवार और ध्वजा-पताकाओंसे सुसज्जित थीं। चारों ओर अपूर्व समारोह दिखायी पड़ रहा था। छोटे-छोटे बालकोंका उत्साह रोके नहीं रुकता था, मानो वह दल शासकोंको इस बातकी सूचना दे रहा था कि अब देशकी जागृति रोकी नहीं जा सकती। देवीजी जिस मकानमें ठहरेंगी, वह पुष्प-मालाओंसे गुँथा हुआ था। फाटकपर स्वयंसेवकोंके पहरेका खासा प्रबन्ध था। वहाँ पूछनेपर मालूम हुआ कि देवीजीके आनेमें अब केवल दो घंटेकी देर है।

यह सुनकर गौरी बाबू भी स्टेशन पहुँचे। प्लेटफार्म आदमियोंसे ठसाठस भरा था। कहीं तिल रखनेकी भी जगह नहीं थी। फिर भी दर्शकोंका आना बन्द नहीं। समयपर गाड़ी आ गयी। 'वन्दे मातरम्' की ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। चारों ओरसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। देवीजीके गाड़ीसे उतरते ही देवीजीकी जय-ध्वनि शुरू हो

गयी। उसी ध्वनिको साथ लिए हुए देवीजी स्टेशनके बाहर आयीं। वहाँ एक सुन्दर सजी हुई मोटर खड़ी थी। उसीपर वह जा बैठीं। उनके गौर वर्ण, सुन्दर दिव्य रूप शान्तपूर्ण तेजमान चेहरा, सादी और शुद्ध खादीकी पोशाक, गलेमें फूलोंकी मालाओं, और निश्छल गाम्भीर्यको देखकर बरबस दर्शकोंके मनमें श्रद्धा उत्पन्न होती थी। भजन-मंडलीके साथ उनका जुलूस नगरकी खास-खास सड़कोंसे होता हुआ निश्चित स्थानपर पहुँचा।

अवसर पाकर गोरे बाबू मिलनेकी अनुमति लेकर भीतर गये। भीड़ बहुत थी, इसलिए इस समय कोई विशेष बातें न हुईं। देवीजीने संध्याके समय मिलनेके लिए कहा। गोरे बाबू अपने स्थानपर चले आये। भोजनादिसे निवृत्त होकर सभा भवनमें गये। अन्यान्य वक्ताओंके बाद तालियोंकी कड़कड़ाहट और 'वन्दे मातरम्' तथा जय-घोषके साथ देवीजी मंचपर खड़ी हुईं। 'अंग्रेजीमें' 'बँगलामें' आदि आवाजें होने लगीं। देवीजीने अत्यन्त नम्र शब्दोंमें कहा,—दुःख है कि मैं अंग्रेजी और बँगला दोमेंसे एक भी भाषकी ऐसी जानकारी नहीं रखती कि उसमें व्याख्यान दे सकूँ। आशा करती हूँ कि दर्शक-बन्धु मुझे संस्कृत अथवा हिन्दीमें बोलनेकी आज्ञा देंगे।

इसके बाद जनताकी रुचिसे संस्कृतमें उनका व्याख्यान हुआ। अंग्रेजी और बँगलामें भी अनुवाद करके सुनाया गया। देवी-जीने ग्रामीण उन्नति और स्त्री-जाति-सुधारकी आवश्यकता बतलायी।

भाषण ऐसा पाण्डित्य-पूर्ण हुआ कि बड़े-बड़े विद्वानोंको हक्का बक्कासा रह जाना पड़ा। सबलोगोंने एक स्वरसे देवीजीकी बातें स्वीकार कीं। कुछ आदमियोंकी एक नगर कमेटी बनायी गयी और उसके जिम्मे देहातोंमें प्रचार करनेका भार सौंपा गया। यह निश्चय हुआ कि प्रत्येक गाँवके लोग अपनी आवश्यकताके अनुसार सारी चीजें तैयार करें। जो वस्तु वे तैयार करेंगे, वही काममें ला सकेंगे,—बाहरकी बनी हुई चीजको काममें लानेका अधिकार किसीको नहीं होगा। प्रत्येक बच्चेको स्वावलम्बनकी शिक्षा देना इस सभाका मुख्य काम होगा। इस कामके लिए सभामें ही एक लाखसे अधिक रुपया देनेके लिए बहुतसे लोग बचन-बद्ध हुए। गौरी बाबूने दस हजार रुपयेका बचन दिया। देवीजीने अपने मुखसे गौरी बाबूको बधाई दी और कहा कि यद्यपि मेरी बतलायी हुई कार्य-प्रणालीमें रुपयेकी कोई आवश्यकता नहीं है तथापि दाताओंके द्रव्यसे उस कार्यकी अधिकाधिक उन्नति नहीं होगी,—यह बात नहीं कही जा सकती।

तदुपरान्त सभाके कार्योंसे छुट्टी पाकर वह अपने स्थानपर आयीं। प्रतिदिनकी भाँति आज भी वह पूजनपर बैठ ही रही थीं कि गौरी बाबू आ गये। देवीजी बिना कुछ बोले दत्तचित्तता-से अपने काममें प्रवृत्त हो गयीं। गौरी बाबू बैठकर देखने लगे। ऐसा भक्ति-पूर्ण और अद्भुत निष्ठा-युक्त हृदय देखकर गौरी

प्रणय

बाबूको बड़ा ही आह्लाद हुआ। देवीने यौगिक प्राणायाम किया, केबिनेट साइजके एक चित्रका धूप-दीप नैवेद्यादिसे विधि-पूर्वक पूजन करके ध्यान किया। दो घंटेके बाद निश्चिन्त हुईं। गौरी बाबू कुछ दूर रहनेके कारण यह नहीं जान सके कि चित्र किसका है। उन्हें इतनी बात मालूम हो गयी कि यह सधवा हैं। इसीसे हाथमें सुहाग-सूचक-चूड़ियाँ हैं और माथेमें सिन्दूर-विन्दु। देवीने कहा,—आपको बड़ा कष्ट हुआ।

गौरी बाबूने श्रद्धा-पूर्वक कहा,—जी नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। हाँ, यदि मेरे आनेसे आपके कार्यमें कोई विघ्न पड़ा हो तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

देवी—मेरे कार्य्यमें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित होता ही नहीं। कारण यह, कि मैं अपना कार्य्य समाप्त किये बिना छोड़ती ही नहीं।

गौरी—क्या आप यह बतलानेकी कृपा करेंगी कि उपासनासे क्या लाभ होता है?

देवीने गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा,—हृदयको शान्ति मिलती है, आत्मिक शक्ति बढ़ती है।

गौरी—पर मुझे ऐसा नहीं हुआ। इसीसे मैंने अपने आराध्य देवताकी उपासना करनी छोड़ दी।

देवी—आपने भूल की। सफलता प्राप्त करना, अपनी दृढ़तापर निर्भर है। मनोभिलाषा पूर्ण न होनेके कारण अपने उपास्य देवको

छोड़ देना, कमजोर विचारवालेका काम है। सच्चे उपासकका धर्म यह है कि वह बारम्बार असफल होनेपर भी अपनी यह धारणा रक्खे कि किसी-न-किसी दिन सफलता अवश्य प्राप्त होगी। देखिये, मेरे उपास्य देव मुझसे रूठे हुए हैं। फिर भी मुझे आशा है कि वह किसी दिन अवश्य प्रसन्न होंगे। और फिर यदि वह न प्रसन्न हों तो इससे मेरा क्या? मैं अपना कर्त्तव्य-पालन तो करूँगी ही। यदि उपास्य देव प्रसन्न न हों तो समझना चाहिए कि उपासनामें कुछ-न-कुछ त्रुटि है।

गौरी—क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप किसकी उपासना करती हैं?

देवी—यद्यपि अपने उपास्य देवको गुप्त रखना चाहिए, तथापि मैं आपसे बतलाये देती हूँ कि मैं उसीकी उपासना करती हूँ जिसकी उपासना स्त्री-जातिको करनी चाहिए।

गौरी—किन्तु ऐसा हृदय सबका नहीं हो सकता। असफल होनेपर मैं तो झुँझला पड़ा था।

देवी—ऐसा करना ठीक नहीं। किसी कार्यमें असफल होना अपने ही कार्यकी त्रुटिका फल है। अकृत-कार्य होनेपर मनुष्यको और भी अधिक दृढ़तासे उस काममें तत्पर होना चाहिए। उससे विमुख होना, कायरता और भीरुता है। 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'—जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह उसी रूपका हो जाता है। इसलिए अपनी श्रद्धा बढ़ानी चाहिए। जैसा कि आपने अपने बारेमें

अभी कहा है, कितने ही लोग मनोकामना के पूर्ण न होनेपर ईश्वरपर रूठ जाते हैं, तथा उनको निष्ठुर प्रवंचक आदि अपशब्दोंसे विभूषित करने लगते हैं; कहते हैं कि अब ईश्वराराधन कभी न करूँगा, उनका मुख न देखूँगा, उन्हें मानूँगा भी नहीं। बहुतसे लोग हताश होकर नास्तिक हो जाते हैं और यह निश्चय कर लेते हैं कि यह संसार दुःख, अन्याय और अत्याचारका राज्य है, ईश्वर कुछ नहीं है, उसे मानना व्यर्थ है। किन्तु मैं कहती हूँ कि इस प्रकारकी भक्ति अज्ञ भक्ति है। ईश्वर-भक्ति अपेक्षणीय नहीं। यह निश्चय है कि क्षुद्र ही महान होता है। ईश्वरके अकृपा-पात्र उपासक ही किसी दिन उनके कृपा-भाजन बनते हैं। अविद्या-साधन विद्याकी प्रथम सीढ़ी है। देखिये, बालक भी अज्ञ है, पर उसकी अज्ञतामें एक प्रकारका विचित्र माधुर्य है। माताके समीप बालक रोता, दुःखका प्रतिकार चाहता, और दौरात्म्य करता है, पर माँ उसे फुसलाती ही रहती है।

गौरी—यह युग ऐसा है कि स्त्री-पुरुषमें ही विरोध पैदा हो जाता है। जरा……

देवी—किन्तु यह दोष युगका नहीं है। साधारण जीवनमें स्त्री-पुरुषके बीच जिस आनन्दका अभिनय तुम देख रहे हो, वह भीतरके पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे जो आनन्द होता है, उसीका अन्धा अनुकरणमात्र है। स्वामी और स्त्रीका जो सम्बन्ध है, वह सदा ही पवित्र और आनन्ददायक है। शरीरका शरीरके

साथ भोग करना ही भोग नहीं है। भोगके अर्थमें दैहिक भोग है ही नहीं। स्वामी अपनी स्त्रीमें ही संसारका दृश्य देखना चाहता है और स्त्री संसारके आनन्दको अपने स्वामीसे ही पाना चाहती है। प्राणके साथ प्राणका, मनके साथ मनका, बुद्धिके साथ बुद्धिका, ज्ञानके साथ ज्ञानका और देहके साथ देहका भोग होता है, बस यही सच्चा मिलन है और इसीका नाम दाम्पत्य जीवन है। आजकल लोग दाम्पत्य-जीवनकी परिभाषा ही नहीं जानते। इसीसे ऐसी दशा हो रही है। हृदयकी विशालतासे सब बातोंके असली अर्थका स्पष्टी-करण होता है। आजकल तो लोग स्त्री-जातिको पुरुषोंसे सर्वथा भिन्न समझते हैं। इसीसे स्त्रियोंके अधिकारपर इतने ग्रह मँडरा रहे हैं। लोगोंको यह मालूम ही नहीं है कि वास्तवमें स्त्री है क्या वस्तु। स्त्री पुरुष दोनों ही एक सत्तासे उत्पन्न हुए हैं; दोनों उसीके प्रतिरूप हैं। यद्यपि स्त्री और पुरुषकी शिक्षा और साधनाका एक ही उद्देश्य है, और वह है मनुष्यत्वका उद्बोधन तथा उसकी सार्थकता; पर एक ही उद्देश्य होते हुए भी दोनोंका गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेका मार्ग एक नहीं है। ससारकी एकता जिस तरह सत्य है; उसकी विचित्रता या अनेकता भी उसी तरह सत्य है। बल्कि यों कहिये कि इस संसारकी विचित्रताने ही संसारको संसार कहलानेके योग्य बनाया है। पार्थक्य और विशेषताहीमें विश्वका रहस्य है और इसीमें उसकी सार्थकता भी है। मैं

प्रणय

बहुत ही गम्भीर बात कह रही हूँ, आप ज़रा ध्यानसे सुनियेगा।

गौरी बाबू खिसककर देवीजीके अत्यन्त निकट जा बैठे और बोले,—जी हाँ, आप कहिये, मेरा ध्यान आपके शब्दोंके लक्ष्यकी ओर ही है।

देवीने कहा,—पुरुष और स्त्रीकी विशेषता क्या है, इसे समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए। मनुष्यकी सत्ताका कौन भाव और कौन अंग पुरुष है तथा कौन भाव और कौन अङ्ग स्त्री? वास्तवमें मनुष्य सत्ताके दो भाग हैं, ज्ञान और शक्ति। मनुष्य पहले तो जाननेकी चेष्टा करता है, फिर करनेकी। जाननेकी चेष्टा ज्ञान है और करना शक्ति है। एक वस्तु और भी है जिसे प्रेम कहा जाता है। यही प्रेम दोनोंका आश्रय-स्थान है। दोनों इसी प्रेमके सहारे चलते हैं। ज्ञानका प्रकाश मन या बुद्धिद्वारा होता है और इसका केन्द्र मस्तिष्क है तथा शक्तिका प्रकाश आत्मामें होता है। इससे सिद्ध होता है कि पुरुष ज्ञान है और स्त्री शक्ति। ज्ञानमें बल है और शक्तिमें सत्ता। इसीसे किसी कामका संपादन पुरुष अपने बलद्वारा करता है, किन्तु स्त्री अपनी स्वाभाविक चतुराईद्वारा। देखिये न, इस स्थूल संसारसे संग्राम करनेके लिए नेपोलियनको स्कूलमें व्यायाम आदिद्वारा अपनी ताकत बढ़ानी पड़ी थी, पर झाँसीकी महारानी लक्ष्मी बाई या आर्ककी देवी जोनको इस तरहकी कोई भी बात करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी। जो लोग इस निगूढ़ रहस्यको नहीं जानते, वे ही उलटी बातें करते हैं।

प्रणय

गौरी बाबूने गद्गद होकर कहा,—आपके उपदेशोंसे मुझे बहुत-कुछ शान्ति मिली। इस......

देवीने बात काटकर कहा—वास्तविक शान्ति तब मिलेगी, जब आप गम्भीरता-पूर्वक सारी बातोंको समझनेकी चेष्टा करेंगे। गम्भीरता-पूर्वक विचार किये बिना शब्दार्थका असली रहस्य नहीं मालूम होता।

इतनेमें गौरी बाबूकी दृष्टि उस चित्रपर पड़ी, जिसकी देवीजी पूजा करती थीं। अत्यन्त निकट होनेके कारण उन्होंने उस चित्रको एकबार गौरसे देखा; न-जानें क्यों उनका हृदय धकधका उठा। थोड़ी देरतक चुप रहे। सोचने लगे, ओफ्! नारी-हृदय इतना महान होता है और पुरुष-हृदय इतना कठोर!—शोक!!

बाद बोले,—अच्छा, आपको अपने उपास्य-देवका रूठना कैसे मालूम हुआ? क्या ये बातें भी किसी संकेतसे जानी जाती हैं? कृपा करके स्पष्ट शब्दोंमें बतलाइये, इसे मैं जानना चाहता हूँ।

"इसके लिए कोई खास संकेत नहीं है", यह कहकर देवीजी चुप हो गयीं। उनके तेज-पूर्ण मुख-मण्डलपर शोक और चिन्ताकी एक हलकीसी आभा दौड़ गयी। उन्होंने एकबार बड़े गौरसे स्नेह-भरी चितवनसे गौरी बाबूकी ओर देखा, बाद आँखें बन्द कर लीं। गौरी बाबू टकटकी लगाकर देवीजीकी ओर देखने लगे। उस प्रभा-पूर्ण मुख-मण्डलपर अश्रु-बिन्दु दिखलायी पड़े—किन्तु आँखें बन्द ही थीं। गौरी बाबूने अपने प्रश्नपर मन-ही-मन पश्चात्ताप किया।

प्रणय

बड़ी देरके बाद देवीकी आँखें खुलीं। शान्त मुद्रा धारण करके बोलीं,—क्या मेरे आराध्य देवके रुष्ट होनेका हाल जानना चाहते हैं? अच्छा, मैं बतलाती हूं। यद्यपि यह बात आजतक मैंने किसीसे भी नहीं कही, तथापि आपसे कहूंगी। किसीसे न कहनेका कारण यह नहीं है कि मैं कहना ही नहीं चाहती थी, बल्कि यह कि किसीने मुझसे पूछा ही नहीं।

इसके बाद देवीजी फिर चुप हो गयीं। क्षण-कालके बाद बोलीं,—मुझे कितना कष्ट हुआ, साधारण उपासक इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। ओफ्! उसके स्मरणसे आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं—कलेजा काँप उठता है। (आँसू पोंछकर) किन्तु यह मैं कहूंगी कि आराध्य देवने मुझे एक भी दुःखदायक शब्द कभी नहीं कहा—और न तो कोई मेरा अनिष्ट ही किया।

गौरी—फिर आपको इतना कष्ट क्यों हुआ?

देवी—केवल यह जानकर कि वह मुझसे नाराज होकर खिंचेसे हैं।

गौरी—उनकी नाराजगी आपको कैसे मालूम हुई?

देवी—उनके मौन रहनेसे।

गौरी—क्या आपने उन्हें प्रसन्न करनेकी भी कभी कोई चेष्टा की?

देवी—हाँ, पहले कुछ साधारण चेष्टाएँ अवश्य की गयी थीं; किन्तु उस समय, जब मेरा हृदय निर्बल था—उपासनाके क्या रहस्य-

से अनभिज्ञ था। अब मैं किसी प्रकारकी कोई चेष्टा नहीं करती और न करूँगी ही।

गौरी—कारण?

देवी—उनमें इच्छाका अभाव।

गौरी—यह मैंने नहीं समझा, दया करके स्पष्ट कर दीजिये।

देवी—कारण यह कि उनकी इच्छा नहीं है कि मैं उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करूँ। ऐसी दशामें सम्भव है कि मेरे प्रयत्नसे उन्हें किसी प्रकारकी असुविधा हो अथवा कष्ट हो। मेरा धर्म तो केवल इतना ही है कि जिसमें वह प्रसन्न रहें, वही मैं करती जाऊँ। यदि वह कहेंगे कि तुम नीच हो, तो मैं यह कभी न कहूँगी कि 'नहीं, मैं नीच नहीं हूँ।' यदि वह पूछेंगे कि 'क्या तुम नीच नहीं हो?' तो मैं अवश्य कहूँगी कि, 'मैं नीच नहीं हूँ।' यदि वह प्रमाण माँगेंगे तो दूँगी और न माँगेंगे तो मैं अनुरोध भी न करूँगी। आराध्य देव जिस स्थितिमें रखना चाहें, उसी स्थितिमें प्रसन्नता-पूर्वक रहना ही सच्चे उपासक या उच्च-कोटिकी उपासिका-का धर्म है। अब मैं उपासना और उपासकके कर्त्तव्योंको अच्छी तरहसे समझ गयी हूँ, अतः पहलेकीसी भूल नहीं कर सकती।

गौरी बाबूने देवीजीकी उक्त बातोंमें लोहेके समान दृढ़ता देखी; उनके उच्च-विचारोंमें अत्यन्त पवित्र और समुन्नत विचारों-का अनुभव किया; और अनुभव किया—उनके हृदयमें ज्ञान-विवेक-वैराग्यसे आच्छादित एक छिपी हुई शुष्क और क्रमशः

नष्ट होती हुई सूक्ष्म वेदनाका। किसी पुरानी बातकी स्मृतिने उस वेदनाके रूपको गौरी बाबूके हृदय-पट पर अंकितसा कर दिया। उन्होंने अपनेको सँभालनेकी बहुत चेष्टा की, पर किसीके ऊपर महान घृणा, विषाद और तिरस्कार-भाव उत्पन्न होनेके कारण उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऊपरकी बात कहकर देवीजी चुप हो गयीं। गौरी बाबू भी इसके आगे और कुछ पूछनेका साहस न कर सके, मन-ही-मन उनकी अनन्य भक्तिका लोहा मान गये। उनका हृदय ज्ञानदत्तसे मिलनेके लिए अनायास उत्सुक हो गया।

इसके बाद वार्त्तालाप बन्द हो गया। देवीजीने कलकत्ता-सभाके निमंत्रणका सुसम्वाद सुनाया। गौरीने हर्षित होकर अवश्य पधारनेके लिए जोर दिया। देवीने अत्यन्त कोमल और गम्भीरता-पूर्ण शब्दोंमें स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त गौरी बाबू आज्ञा लेकर वहाँसे बिदा हुए।

शीघ्र कलकत्ता पहुँचकर ज्ञानदत्तसे मिलनेके लिए गौरी बाबू इतना व्यग्र हो उठे कि उन्हें मिनटका समय भी युगके समान प्रतीत होने लगा।—चिन्ता और ग्लानिने उन्हें अशान्त कर दिया था।



उनतीसवाँ परिच्छेद

सन्ध्याका समय था। ज्ञानदत्त आफिससे आकर बरामदेमें बैठे थे। तबतक गौरी बाबू आ गये। कहा,—आइये गौरी बाबू, अभी आपहीकी याद कर रहा था।

गौरी बाबूने पश्चात्ताप भरे स्वरमें कहा,—तुम कितने कठोर हो ज्ञानदत्त! मुझे तुम्हारी कठोरता देखकर पुरुष होते हुए भी पुरुष-जातिसे घृणा हो गयी। जो मनुष्य संसारकी विचित्रतापर ध्यान न देकर सत्यासत्यका गम्भीरता पूर्वक निर्णय किये बिना छल प्रपंचमें अपने विचारोंको निमग्न कर देता है, उसे हम क्या कहें, समझमें नहीं आता। निश्चय जानो, तुमने इतना बड़ा अपराध किया है कि जन्म-जन्मान्तरमें भी तुम्हारा उद्धार नहीं होनेका। तुम्हारी दशा देखकर तरस आता है।

इतना कहते ही गौरीके करुणा पूर्ण हृदयने नेत्रोंद्वारा अश्रुवर्षा करनी शुरू कर दी। ज्ञानदत्त अवाक् हो गये। सोचने लगे, "इन्होंने मेरी कौनसी कठोरता देखी? मैंने ऐसा कौनसा काम किया, जिसके कारण मेरे प्रति इनके हृदयमें इतनी घृणा हो गयी?" बहुत-कुछ माथा लड़ानेपर भी वह कुछ स्थिर न कर सके। बोले,—मैंने कौनसा अपराध किया है, गौरी बाबू? गौरी बाबूने करुणा-कातर

स्वरमें कहा,—अभी भी कहते हो, कौनसा अपराध किया है?—ज्ञानदत्त! ओफ्!! (कुछ सोचकर) खैर जाने दो। मैं इसके आगे कुछ भी नहीं कहूँगा। समय अपने-आप इसका उत्तर तुम्हें देगा।

पश्चात् गौरी बाबूने एक लम्बी साँस ली। कहा,—देवीजी वास्तवमें देवी ही हैं। ओफ्! उनके कितने उच्च विचार हैं, कितना अपूर्व त्याग है, वह हम-तुम-सरीखे पामर पुरुषोंकी समझमें आ नहीं आ सकता। कलकत्तेवालोंने निमंत्रण दिया है, आनेपर देखना।

ज्ञानदत्त फिर कुछ पूछना ही चाहते थे कि इतनेमें एक स्त्री आ गयी और ज्ञानदत्तका पाँव पकड़कर रोने लगी। देखनेसे मालूम हुआ कि स्त्री किसी उच्च कुलकी है। दोनों मित्र आश्चर्यमें पड़ गये। वह स्त्री केवल इतना ही कह रही थी कि मुझे क्षमा करो। आज इतने दिनोंके बाद ज्ञानदत्तके हृदयमें गड़ी हुई आग फिर भभक उठी। सोचा, अवश्य यह वही कुलटा प्रभा है। अभीतक यह जीवित है। ओफ्! सहजमें यह मेरा पीछा न छोड़ेगी। इसका इतना साहस! मेरे पास कौन बैठा है, कौन नहीं, इसका इसने कुछ भी विचार नहीं किया। पढ़ी-लिखी होकर ऐसी मूर्खता!!

वह कुछ कहना ही चाहते थे कि उस स्त्रीने ऊपर मुख उठाया, करुणा-कातर शब्दोंमें कहा,—बबुआ ज्ञानू! मैं पापिनी हूँ, मुझे क्षमा प्रदान करो!

ज्ञानदत्तने प्रभाको पहचान लिया। पूछा,—कौन, भाभी! तुम यहाँ कैसे आयी?

प्रणय

प्रभाने विलाप करते हुए कहा,—हाँ, तुम्हारे घरको और तुम्हारे सुखी जीवनको चौपट करनेवाली यह पिशाचिनी तुम्हारी भाभी ही है। पहले इस चांडालिनीको क्षमा प्रदान करो, पीछे आनेका कारण पूछो। हाय! अब पश्चात्तापकी व्यथा असह्य हो रही है!

ज्ञानदत्तने एक बार गौरी बाबूके मुखकी ओर निहारकर पीछे भाभीकी ओर देखते हुए कहा,—तुमने अपराध ही कौनसा किया है जिसके लिए क्षमाकी आवश्यकता है? जल्दीसे घरका हाल सुनाओ, मेरा जी घबरा रहा है।

प्रभाने अधीर होकर कहा,—क्षमा किये बिना मैं कुछ भी बोल न सकूँगी, निश्चय जानो। मैं आन्तरिक वेदनासे मरी जा रही हूँ।

ज्ञान—अच्छा, यदि ऐसा ही है तो क्षमा करता हूँ; अब जल्दी सब हाल कहो।

प्रभाने उन्मादिनीकी भाँति पर्दा हटाकर कहना प्रारम्भ किया,—कहते हो, अपराध कौनसा किया है? तुम्हीं बतलाओ कि मुझसे बढ़कर अपराधिनी संसारमें कौन है? स्वार्थमें पड़कर मैंने ही तुम दोनों भाइयोंको जुदा कराया। सोचा, मैकेका धन पाकर मैं सुख भोगूँगी और तुम आजन्म पर-मुखापेक्षी बने रहोगे। यह क्या मामूली पाप है? यदि मुझसे साधारण पाप हुआ होता तो मेरे सामने तुम्हारे भाई और भतीजेकी चार घंटेके भीतर

मृत्यु न हो जाती,—मुझे विधवाका रूप न धारण करना पड़ता ! हाय राम ! मैंने ही उस लक्ष्मीका स्वर्गमय जीवन मिट्टीमें मिला दिया । बेचारी दर-दरकी ठोकरें खा रही है—इतना कहते ही वह फूट-फूटकर फिर रोने लगी । आगे बोल ही न सकी ।

ज्ञानदत्तने चकित होकर पूछा,—क्या भैया......

प्रभा बीचहीमें बोल उठी,—अब अधिक न पूछो बबुआ । आः ! कलेजा फटा जाता है । मैं तो उन्हींके पीछे जा रही थी, पर तुमसे क्षमा माँगनेके लिए यहाँ आ गयी ।

ज्ञानदत्तकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे । गौरी बाबूने प्रभा-से पूछा,—क्या वह बीमार थे ?

प्रभा—रामपुर गाँवमें एक तरहकी नयी बीमारी बड़े जोरोंपर थी । उसीमें वह भी चले गये । साथ ही अपने प्यारे बच्चेको भी लेते गये । हाय ! यदि मैंने उस लक्ष्मीका जीवन नष्ट न किया होता तो आज मेरी यह दशा कदापि न होती ।

गौरी बाबूने पूछा,—किसका जीवन ?

प्रभा—देवी रमाका ।

गौरी—उसके जीवनको तुमने क्या नष्ट किया ?

प्रभाको इस बातकी सुध ही न थी कि ज्ञानदत्तके स्थानपर कोई दूसरा आदमी प्रश्न कर रहा है । उसने आर्त होकर कहा,—उस दिन रातको मैंने ही तुम्हें धोखेमें डाला था । दिवाकरको बुलाने-वाली राक्षसी भी मैं ही थी ।

ज्ञानदत्त चौंक उठे। बोले,—क्या कहा? क्या दिवाकरको तुमने बुलाया था?

प्रभा,—हाँ, मैंने ही बुलाकर रमाके घरमें उसे सुलाया था। रमाके नामपर नकली चिट्ठी दिखलानेवाली हतभागिनी और पापिनी भी मैं ही हूँ।

ज्ञानदत्त तमतमा उठे। बोले,—सो क्यों?—तुम्हारे ऐसा करनेका कारण?

इसके बाद प्रभाने एक-एककर सारा हाल कह सुनाया। ज्ञानदत्त स्तब्ध और अस्थिर हो गये। गौरी बाबूने ज्ञानदत्तकी ओर एकबार तीक्ष्ण दृष्टिसे देखा। मूक भाषामें कहा,—अब कहो? उस समय मेरा कहना तुम्हें विषकी तरह मालूम होता था। संसारमें जो मनुष्य समझ-बूझकर नहीं चलता, उसे तुम्हारी ही तरह पछताना पड़ता है। उस निरपराधिनीको तुमने बड़ा कष्ट दिया ज्ञानदत्त! तुम नहीं जानते कि संसार कितना भयंकर है।

ज्ञानदत्तकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। रमापर किये गये अन्यायसे वह व्याकुल हो उठे। अपनी की हुई निष्ठुरताके आघातसे छटपटाने लगे। उनके मुखसे एक शब्द भी न निकला—थोड़ी देरके बाद विलाप-युक्त स्वरमें बोले,—क्या तुम यह बतला सकती हो भाभी कि इस समय वह कहाँ है?

प्रभा रोती हुई बोली,—मैं अभागिनी उस लक्ष्मी रमाका कुछ भी पता न पा सकी। पर इतना मुझे अवश्य मालूम हुआ है कि

वह जीवित है। हाय! यदि उसका दर्शन मिल जाता तो मैं उससे क्षमा माँगकर सुखसे मरती।

ज्ञानदत्तने एक लम्बी साँस ली। सोचने लगे "हाय! क्या अब वह न मिलेगी? मैंने उसके साथ कितना बड़ा अन्याय किया! जन्म-जन्मान्तरमें भी इस पापसे मेरी रिहाई नहीं हो सकती। प्राणाधिके! एकबार तू फिर अपनी झलक दिखा जा! सिर्फ एक बार! और कुछ नहीं, मैं सिर्फ इतना चाहता हूँ कि तुम्हारे सामने मैं अपनी भूल स्वीकार कर लूँ—क्षमा माँग लूँ! क्या तुम मुझे पतित समझकर न आओगी—प्रिये? नहीं नहीं, तुममें इतनी कठोरता नहीं आ सकती। भाभीका हृदय इतना कपटपूर्ण था, यह मैं नहीं जान सका!"—इसी प्रकार बड़ी देरतक मन-ही-मन सोचने-विचारनेके बाद बोले—भैयाके साथ ही जगदीश भी चल बसा?

प्रभाने बड़े कष्टसे कहा,—उसे कोई बहका ले गया। बहुत ढूँढ़ा, पर कुछ भी पता न चला।

ज्ञानदत्त—क्या कहा, जगदीशको कोई बहका ले गया?

प्रभा—हाँ।

ज्ञान—यह कैसे मालूम हुआ?

प्रभा—उसीके साथ दो लड़के और गये थे। एक तो उसके साथ ही है, लेकिन दूसरा लड़का किसी प्रकारसे भागकर चला आया। वही यह हाल कह रहा था।

ज्ञान—कितने दिन हुए?

प्रणय

प्रभा—महीने भरसे अधिक हुआ।

गौरी—तब तो सम्भव है कि पता लग जायगा। अच्छा, ज़रा मेरे साथ चलोगे?

ज्ञानदत्त उठकर खड़े हो गये। आगे पैर रखने भी न पाये थे कि प्रभाने पकड़ लिया। शायद उसने गौरी बाबूकी बात नहीं सुनी। बोली,—ठहरो, थोड़ा और सुन लो। अब मैं इस संसारमें अधिक देरतक न रहूँगी।

ज्ञानदत्त रुक गये। वह चाभीका गुच्छा देकर बोली,—यह लो चाभी। एक लाखसे अधिक नकद है और कुछ जेवर भी है। इसे अपने काममें लाना। अब यही मैं विनती करती हूँ कि निरपराधिनी रमाको जैसे भी हो और जहाँ भी वह हो, बहुत जल्द घर बुलानेका प्रबन्ध करो। यदि हो सका तो मैं उससे भी क्षमा माँगकर अपना कार्य्य समाप्त करूंगी; नहीं तो मेरे न रहनेपर मेरी ओरसे तुम्हीं उस देवीसे क्षमा माँगना!

ज्ञानदत्तने चाभीका गुच्छा प्रभाके हाथमें देनेका उपक्रम करते हुए कहा,—अभी इसे अपने ही पास रक्खो। मैं जगदीशका पता लगाने जाता हूँ। जो होना था, सो तो हो गया; अब घबरानेसे कोई लाभ नहीं।

प्रभाने कहा;—बेकार है। मेरे ही पापसे गोदका वह लाल खो गया। अब वह नहीं मिल सकता। चाभी अपने पास ही रहने दो। मुझे इसकी जरूरत नहीं है। हाय! मैंने उस भोली

रमाको कितना कष्ट पहुँचाया ! सम्पत्तिके लोभमें पड़कर कितना जुल्म किया ! भाई-भाईको अलग किया ! बस, अब नहीं सहा जाता ! मेरी इच्छा पूरी करो, अब मैं अधिक समयतक यह यंत्रणा नहीं सहन कर सकती ।

ज्ञानदत्तने सान्त्वना देते हुए कहा,—दुःखके समय धीरता-से काम लेना चाहिए भाभी ! अभी तो मैं तैयार हूँ न; तुम्हें किस बातकी चिन्ता है ? जो होनेवाला होता है, वह होकर ही रहता है; इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं !

प्रभाने विलापके साथ कहा,—हाय, मैंने तुम्हारा मुँह देखकर भी दया नहीं की ! राक्षसी बनकर तुम्हारे राज्यमय जीवन को बर्बाद करनेमें कुछ भी उठा नहीं रक्खा । फिर भी तुम मुझ डाइनसे इतने प्रेमके साथ बातें करते हो ? नहीं बबुआ, मेरे साथ ऐसा व्यवहार न करो; इससे मेरी वेदना बढ़ती जा रही है । यदि तुम मेरा कल्याण चाहते हो, तो मेरी लाशपर मुझे खूब धिक्कारो, कठिनसे कठिन दंड दो—तभी मुझे कुछ शान्ति मिल सकती है । मैं इतना आदर पानेकी अधिकारिणी नहीं !

ज्ञान—इस तरह अपने दिलको छोटा करना ठीक नहीं । बीती बातोंपर अफसोस करना उचित नहीं । तुम स्थिर होकर थोड़ा आराम करो, तबतक मैं जगदीशका पता लगाकर आता हूँ ।

इसके बाद ज्ञानदत्त अपनी भाभीके लिए अन्न आदिका प्रबन्ध करके गौरी बाबूके साथ चले गये । थानेमें आकर दुखिया कराती ।

अखबारोंमें लड़केके गुम होनेकी सूचना प्रकाशनार्थ भेज दी। दो-चार सन्देह-जनक स्थानोंसे होकर गौरी बाबूके साथही उनके घर आये। कहा,—मिर्च देशकी भर्ती तो सन १९१७ में ही बन्द कर दी गयी थी, फिर भी उस मकानपर मिर्च देशकी भर्तीका साइनबोर्ड क्यों लगा हुआ है?

गौरी बाबूने कहा,—मैं कह नहीं सकता। पूछनेपर कुछ मालूम भी तो नहीं हुआ।

ज्ञानदत्तने कहा,—इसका पता कैसे लगेगा? जिस तरह भी हो सके, इसका पता लगाना जरूरी है।

यह सुनकर गौरी बाबू थोड़ी देरतक चुप रहे। बाद कुछ सोचकर बोले,—ठहरो मैं अपने एक परिचित खुफिया विभागके इन्स्पेक्टरको फोन करता हूँ; सम्भव है उन्हें कुछ मालूम हो।

इसके बाद ही गौरी बाबू बगलके कमरेमें चले गये। रिसीवर उठाकर खुफिया विभागके इन्स्पेक्टरको टेलीफोन किया। इन्स्पेक्टरसे उन्हें मालूम हुआ कि नं २३ अमहर्स्ट स्ट्रीटमें जिस मकानपर मिर्च देशकी भर्तीका साइनबोर्ड लगा हुआ है, उस मकानमें कुछ मुसलमान गुंडे रहते हैं। सुना गया है कि वे यही काम भी करते हैं; पर अभीतक ठीक-ठीक कोई बात मालूम न होनेके कारण खुफिया पुलिस पता लगानेमें लगी हुई है।

तुरन्त ही दोनों आदमी मोटरपर सवार होकर फिर उक्त स्थान-पर गये। बहुत छान-बीन करनेके बाद आस-पासके लोगोंसे इतना

आभास मिला कि पुलिसका अनुमान गलत नहीं है।—इनके बहुतसे आदमी देहातों और शहरोंमें घूमा करते हैं, तथा मौका पाते ही बच्चोंको भुलावा देकर यहाँ ले आते हैं। जब कुछ बच्चे एकत्र हो जाते हैं, तब वे उन्हें किसी दूर देशमें भेज देते हैं।

ज्ञानदत्तने कहा,—मेरा तो अनुमान है कि जगदीश अभी इसी मकानमें है गौरी बाबू!

गौरी बाबूने कहा,—हाँ, हो सकता है।

ज्ञानदत्त—तो फिर अब कौनसा उपाय करना चाहिए?

गौरी—मेरी समझमें तो यह आता है कि पुलिस कमिश्नरके पास एक दरख्वास्त देनी चाहिए और दफ्तरके किसी आदमीको लालच देकर फँसाना चाहिए।

ज्ञानदत्तको यह बात जँच गयी। तुरन्त ही दोनों कार्रवाई कर दी गयी। बाद गौरी बाबू अपने घर चले गये और ज्ञानदत्त अपने डेरेपर आये। प्रभा अभीतक ज्यों-की-त्यों बैठी थी। ज्ञानदत्तने बड़े आग्रहसे उसे खिलाया-पिलाया। उसके साथ आये हुए आदमीको भी कुछ खिलाकर नौकरके साथ समाचार पत्रकी आफिसमें सोनेके लिए भेज दिया।



तीसवाँ परिच्छेद

कई दिन बीत गये, रमाका कुछ भी पता न चला। बिंदापुरसे भी जो समाचार आया, वह सन्तोष-जनक नहीं। किस प्रकार पता लगाया जाय, यह समझमें न आता था। इधर प्रभा रात-दिन रमासे मिलनेके लिए आतुरताके साथ ज्ञानदत्तसे कहा करती थी, वह नहीं मिलेगी, अब मेरा जीना व्यर्थ है। रमाका हाल सुनकर राजोको भी बहुत दुःख हुआ। वह भी मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगी। उसने तो ज्ञानदत्तसे यहाँतक कह डाला कि,—आपका हृदय इतना कठोर है, यह मुझे आज ही मालूम हुआ। राजोकी बात सुनकर बेचारे ज्ञानदत्त लज्जित होनेके सिवा और कहते ही क्या?

आज ठीक नौ बजे सभामें जाना था। इसलिए लगभग साढ़े आठ बजे ही भोजन करके ज्ञानदत्त चले गये। ठीक समयपर देवीजीका व्याख्यान शुरू हो गया। यद्यपि पं० ज्ञानदत्त गये तो थे रिपोर्ट लिखनेके लिए, किन्तु किसी कारणवश वह अपने काममें असमर्थ हो गये। टकटकी लगाकर देवीको निहारने लगे। रिपोर्ट लिखनेकी सुध ही न रही। गौरी बाबूके कई बार पूछनेपर भी कुछ नहीं बतला सके। थोड़ी ही देरके

बाद उनकी आँखोंसे पानीकी बूँदें भी झड़ने लगीं। अब तो वहाँ एक मिनटका रहना भी उनके लिए कठिन हो गया। झट उठकर बाहर चले आये।

किन्तु यहाँ भी शान्ति न मिली। अपने प्राणोंमें वह एक त्रुटिका अनुभव करने लगे। देवीजीका दर्शन करनेके लिए वह फिर भीतर आये। वही दशा फिर हो उठी। किसी प्रकार देवीजीका ओजस्वी व्याख्यान समाप्त हुआ। तुमुल-घोषके साथ वह अपने निर्दिष्ट स्थानपर चली गयीं। ज्ञानदत्त एक जगह खड़े ताकते रह गये। बड़े-बड़े लोग देवीजीको पहुँचानेके लिए उनके साथ गये; ज्ञानदत्तकी ओर किसीने दृष्टि भी नहीं डाली। इन बड़े लोगोंके साथ पं० ज्ञानदत्तको भी जाना चाहिए था, पर न-जाने क्यों वह नहीं गये। सब लोग व्याख्यानकी सुन्दर आलोचना-प्रत्यालोचना करते हुए अपने-अपने घरकी ओर चले। किन्तु ज्ञानदत्त भकुआ बने ज्योंके-त्यों खड़े रहे। इतनेमें काशी बाबूकी दृष्टि पड़ी। आकर बोले,—कहिये पं० ज्ञानदत्तजी, अकेले कैसे खड़े हैं? गोरी बाबू कहाँ गये?

ज्ञानदत्तने उदासीनताको छिपाते हुए कहा,—शायद देवीजीके साथ गये।

काशी—देवीजीका पाण्डित्य देखकर दंग रह जाना पड़ा। भाई सभी तो आज समूचा देश उनकी मुट्ठीमें हो रहा है। वास्तवमें देशका उद्धार स्त्री-जाति ही कर सकती है।

प्रणय

ज्ञानदत्तने अन्यमनस्क भावसे कहा,—इसमें क्या सन्देह।

काशी—श्री भी अपूर्व ही है; वाह! कितनी सौभाग्य मूर्त्ति है!

ज्ञान—त्याग ऐसी ही चीज है।—चलिये घर चलते हैं?

काशी—और यहाँ काम ही क्या है।

दोनों आदमी टैक्सीपर बैठकर चल पड़े। समाचार-पत्रकी आफिसके सामने पहुँचते ही एक अपरिचित आदमीने हाथ उठाया। मोटर रुकी। उस आदमीने एक पत्र दिया। पढ़नेपर मालूम हुआ कि अभीतक जगदीशका पता नहीं लगा है।

पं० ज्ञानदत्तजी सीधे राजा साहिबकी बैठकमें गये। जी बहलानेकी बहुत चेष्टा की, पर फल कुछ न हुआ। धीरे-धीरे सूर्य्य भगवान अस्तगामी हो चले। सन्ध्या अपना अलस पग बढ़ाती हुई एकाएक आ पहुँची। राजो स्त्री-सभामें जानेकी तैयारी करने लगी। शामको छः बजे देवीजीका एक भाषण स्त्रियोंके लिए होनेवाला था। प्रभा भी उसके साथ ही गयी। वह तो जाना नहीं चाहती थी, पर राजोने इतना अनुरोध किया कि धनाढ्य कन्याका मान उसे रखना ही पड़ा। अब ज्ञानदत्तका अकेले रहना पहाड़ हो गया। यदि ऐसा जानते तो शायद राजोके आग्रह करनेपर उसके साथ ही चले गये होते। अब वह बड़े संकटमें पड़ गये। सोचने लगे, चलनेसे राजो कहेगी, मेरे कहनेसे नहीं आये, और अपने-आप आये हैं।

कोई कुछ भी कहे, ज्ञानदत्त चल पड़े। सभा-भवनमें

प्रणय

पहुँचनेपर मालूम हुआ कि देवीजीका भाषण प्रारम्भ हो गया है। भवन ठसाठस भरा हुआ था। देखा, एक ओर पर्देके भीतर भारत-ललनाएँ बैठी हैं, और दूसरी ओर आर्य्य वंशजों-की धक्का-धुक्कीका बाजार गर्म हो रहा है। ज्ञानदत्त भी इधर-उधर धक्का खाने लगे। इतनेमें एक स्वयं-सेवककी नजर इन-पर पड़ी। वह तुरन्त हाथ पकड़कर भीड़को चीरता हुआ आगे ले गया। देवीजीके बिलकुल समीप जाकर ज्ञानदत्त बैठ गये। उनके बैठते ही देवीजीका व्याख्यान बन्द हो गया। सबलोग आपसमें कहने लगे,—हैं, यह क्या? देवीजी बोलते-ही बोलते चुप क्यों हो गयीं?—बिना कुछ कहे-सुने आ कहाँ रही हैं?

लोगोंमें यह चर्चा हो ही रही थी कि देवीजी मंचसे उतर-कर ज्ञानदत्तके पास आ गयीं। गौरी बाबू भी पीछे लगे थे। ज्ञानदत्तकी क्या दशा हुई, शब्दोंमें व्यक्त करना कठिन है। तब-तक देवीजी ज्ञानदत्तके पैरोंपर गिर पड़ीं। ज्ञानदत्त सहम उठे—क्षणभरके लिए अकर्मण्य हो गये; उनके ओठ हिलने लगे; उसी प्रकार, जिस प्रकार अत्यधिक ग्लानिके समय हिला करते हैं। आँखोंसे भी आँसू छलछला पड़े! कंठ नहीं खुला; पर मूक भाषामें उन्होंने कहा,—प्रिये! मैं अपने किये कर्मोंसे लज्जित होते हुए भी निर्लज्जता-पूर्वक तुमसे क्षमाकी भीख माँग रहा हूँ।

वह दृश्य अपूर्व था। वह बड़ा ही निराली थी। प्रेमका समाँ बँध गया। देवीने भरी सभामें शान्त भावसे कहा,—

प्रणय

प्राणनाथ ! मैं अपना काम करती हूँ, आप अपना काम करें। मेरे मोहमें पड़कर, अथवा मेरे कुसंस्कारोंकी याद करके आप किसी प्रकारके भी कष्टोंका अनुभव न करें। मेरी तपस्या सफल हुई। आज्ञा दीजिये, मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूँ। आशा है, मेरे इस कार्यसे आप किसी प्रकारके कष्टका अनुभव न करेंगे। पापी भी तो देवताओंका दर्शन करता है; पर क्या उससे देवताओंको दुःख होता है ?

ज्ञानदत्तको कुछ भी कहनेका अवसर न मिला। देवी फिर अपने स्थानपर जाकर पूर्ववत् बोलने लगीं। बहुत देरतक यह रहस्य किसीकी समझमें नहीं आया। बाद मालूम हुआ कि देवीजीका पं० ज्ञानदत्तके साथ कोई नातेदारीका सम्बन्ध है। किसीने कहा—भाई-बहनका नाता है। जान पड़ता है कि देवीकी पूरी बात किसीने नहीं सुनी। नहीं तो 'प्राणनाथ' शब्द सुनकर किसीको अटकल लगानेकी क्या जरूरत थी ? किसीने कहा,—देवीजी सबके साथ आत्मीयकासा ही बर्त्ताव करती हैं। किसीको सच्ची बात भी मालूम हो गयी।

पाठकगण समझ गये होंगे कि रमा ही देवीजीके नामसे विख्यात हो रही है। ज्ञानदत्त गहरी चिन्तामें पड़ गये। सोचने लगे,—हाय ! ऐसी सर्व-गुण-सम्पन्ना स्त्रीको मैंने अपनी मूर्खताके कारण इतना कष्ट पहुँचाया। देशमें इतना बड़ा सम्मान प्राप्त करके भी वह मुझे नहीं भूली, अपने धर्मानुसार ही आकर

प्रणय

पैरोंपर गिरी। मेरी नीचतापर ध्यानतक नहीं दिया। धन्य है, नारी हृदय! अब मैं कैसे कहूँ कि प्रिये! तू मेरे अपराधोंको भूल जा? इतना कहनेसे वह भूलेगी ही कैसे? क्या मैंने साधारण अपराध किया है? ऐसी क्षमाशीला देवी क्या मेरे किये अपमानोंको इतने शीघ्र भूल जायगी? क्या मानव-हृदय कभी इतना उदार भी हो सकता है? नहीं नहीं, यदि इसमें इतनी महानता न होती तो मेरे पैरोंपर गिरनेके लिए आती ही क्यों? और फिर इसकी गुणावलियोंका वर्णन करते-करते मेरे भावुक नेत्र अश्रु-पूर्ण क्यों हो गये होते?

आनन्द इसी प्रकारकी विचार-तरंगोंमें निमग्न हो थे कि देवीका भाषण समाप्त हो गया। आनन्द साहस करके देवीके पास गये और हाथ बाँधकर बोले,—मैं अपने स्थानपर ले चलना चाहता हूँ।

देवीने स्नेहके साथ कहा,—अहोभाग्य! आपकी इच्छाके विरुद्ध मेरी रुचि हो ही कैसे सकती है नाथ! चलिये, मैं वहीं चलूँगी। वह स्थान तो मेरे लिए देव-मन्दिर है! भला, उसमें न चलूँगी?

इतना कहकर वह आनन्दके साथ चल पड़ी। लोगोंने सवारी-पर बैठनेके लिए उससे बहुत अनुरोध किया; किन्तु उसने यही उत्तर दिया कि आराध्य देवके मन्दिरमें पैदल ही जाना उचित है।

यह सुनकर आनन्द लज्जाके मारे गड़ गये। देवीको पैदल चलते देखकर शहरके अमीरलोग भी पैदल ही चल पड़े। रास्तेमें

प्रणय

ज्ञानदत्तके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकला। थोड़ी ही देरमें सब-लोग पं० ज्ञानदत्तके मकानपर जा पहुँचे। भीड़का कोई ठिकाना न रहा। धीरे-धीरे बहुत रात बीत गयी, पर भीड़ कम न हुई। ऐसा प्रतीत होता था मानो लोग देवीको छोड़ना ही नहीं चाहते थे।

किन्तु समय भी बड़ा बलवान है। घड़ीमें 'टन् टन्' की आवाज हुई। दो बजेकी सूचना मिलते ही धीरे-धीरे सबलोग जाने लगे। कुछ ही देरमें मकान खाली हो गया। ज्ञानदत्त और रमाके सिवा उस कमरेमें और कोई भी न रहा।

अब अधिक देरतक अपने हृदयकी व्यथाको रोक रखना उनके लिए असह्य हो गया। उन्होंने रमाको हृदयसे लगाकर क्षमा माँगी।

रमाने कहा,—आपने अपराध ही कौनसा किया है नाथ! यह सब तो मेरे पूर्व कर्मोंका फल है। इसमें आपका क्या दोष? मैं तो आपकी अर्धांगिनी हूँ, मुझसे क्षमा कैसी? शरीरके एक अङ्गका दूसरे अङ्गसे क्षमा माँगना, क्या न्याय-संगत है?

ज्ञानदत्त कुछ कहना ही चाहते थे कि प्रभा विलाप करती हुई आकर रमाके पैरोंसे लिपट गयी। बोली,—बहन, इस दुःखिनीपर दया करो—दया करो। हाय! तुम्हारे जीवनको मिट्टीमें मिलाने-वाली मैं ही हूँ!

रमा शान्त और गम्भीर भावसे बोली,—तुम्हारी रक्षा परमेश्वर करेंगे बहन। अधीर होनेकी जरूरत नहीं है।

यह कहकर रमाने प्रभाको उठा लिया। पहचानकर बोली,

ओहो, तुम यहाँ कबसे हो बहन ? इधर बहुत दिनोंसे तुम्हारा कोई समाचार ही नहीं मिला था। आज अचानक तुम्हारा दर्शन पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

सारा हाल सुनानेसे पहले प्रभाने फिर क्षमा-याचना की।

देवीने ऐसा ही किया। आज उसका हृदय बिलकुल सन्देह निर्मूल हो गया। जेठानीका इतना कुटिल व्यवहार होते हुए भी रमाकी क्षमा-शीलता दूर न हुई। उसने बड़े स्नेहसे प्रभाको गलेसे लगा लिया। बोली,—बहन, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें, मेरे मनमें तुम्हारे प्रति किसी प्रकारका मनो-मालिन्य नहीं है, यह मैं शपथ पूर्वक कहती हूँ। तुम मेरे लिए किसी प्रकारका दुःख न करो। तुम्हारा कोई दोष नहीं। सब मेरे अदृष्ट कर्मोंका फल है। मेरी जीवन-नौका इसी पथसे पार लगनेवाली थी, उसे तुम कैसे घुमा सकती थी ?

इतनेहीमें जगदीशको साथ लिए गौरी बाबू आ गये। बच्चेको देखते ही ज्ञानदत्त आदिका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो गया। प्रभामें नवीन प्राणका संचार हुआ। उसके हृदयकी वह उत्कण्ठा और वह उल्लास अवर्णनीय है। समय बड़ा ही बलवान है; समय ही सबको यथार्थ उत्तर और उचित शिक्षा देता है। इतने दिनोंकी सूनी गोदमें आज फिर वह लाल आकर जगमगा उठा। जिस देवरको प्रभा पहले शत्रुसे भी भयंकर समझती थी, जिसके जीवनको बर्बाद करनेमें उसने कुछ भी उठा नहीं रक्खा था, उसीकी अनुपम अनुकम्पासे आज उसका खोया

हुआ अनमोल पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। इसके लिए यद्यपि वह मुखसे तो कुछ नहीं बोली, किन्तु उसके शरीरका रोम-रोम पुलकित होकर आशीर्वाद देने लगा—कृतज्ञता प्रकाश करने लगा। वह मन-ही-मन अपनी पूर्व कृतिपर लज्जित होने लगी। वाह री ईश्वरीय लीला! तेरे शासनमें हर्ष और शोककी कैसी विचित्र होड़ है कि समझते ही बनता है। इस समय यदि प्रभा अपने प्यारे पुत्र जगदीशकी प्राप्तिके आनन्दमें विभोर न हो गयी होती तो क्या वह रमा और ज्ञानदत्तके स्वाभाविक क्षमा-दानके भारसे कभी जीवित रह सकती?

जगदीशसे पूछ-तांछ हो ही रही थी कि अपनी एक दाई-के साथ राजो भी आ पहुँची। ज्ञानदत्त उसे देखते ही अवाक् हो गये। राजो आजसे पहले कभी भी यहाँ नहीं आयी थी, और न तो उसका यहाँतक इस प्रकारसे आना सम्भव ही था। उसने मकानके भीतर घुसते ही अपनी दाईसे कहा,—तुम यहीं बैठ जाओ—थोड़ी देरके बाद चलूँगी। इस प्रकार दाईको बिठाकर राजो ऊपर गयी। उसने वहाँ पहुँचते ही ज्ञानदत्त और रमाको नम्रता-पूर्वक प्रणाम किया। ज्ञानदत्तने बैठनेका संकेत किया। वह शान्तिके साथ एक जगह बैठ गयी। कमरेमें शान्ति निष्कंटक शासन कर रही थी।

प्रभा किसी कार्यवश जगदीशको लेकर दूसरे कमरेमें चली गयी। इस समय उसने रमा और ज्ञानदत्तको हार्दिक बातें करनेके

लिए थोड़ासा अवसर देना उचित समझा। उसने सोचा कि मेरे जानेपर राजो भी भेंट करके हट जायगी, पर राजोने वैसा नहीं किया।

आह, वह कितना मनोहर, कारुणिक और विचित्र दृश्य था! स्तब्धताका अटल साम्राज्य था। सबका मन किसी अज्ञात शब्दके सुननेकी प्रतीक्षामें रत था। सहसा राजोने स्तब्धता भंग कर दी। बड़े कष्टसे अपनी आन्तरिक वेदनाको छिपाकर रमाकी ओर मुख करके मधुर स्वरमें बोली,—इस निस्सहायाके लिए क्या आज्ञा है? मैं आपहीके मुखसे अपना भाग्य-निर्णय कराना चाहती हूँ। मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे क्षमाकी दृष्टिसे देखेंगी। क्योंकि मैंने जो कुछ किया है, वह जान बूझकर नहीं—प्रारब्ध-चक्रमें पड़कर किया है!

अहा! राजोके शब्दोंमें कितनी कोमलता थी—कितना ओज था! किन्तु बेचारी रमा इस बातको कुछ भी न समझ सकी; उसे तो राजोकी बात एक पहेलीसी मालूम हुई। किन्तु उसके हृदयने स्वाभाविक ही उन शब्दोंमें एक गम्भीर वेदनाका अनुभव किया। इससे वह विचलित हो उठी। करुणा-पूर्ण स्वरमें बड़े आदरके साथ पूछा,—तुम निस्सहाया क्यों हो, मेरी प्यारी बहन?

राजोने संकोचकी रक्षा करते हुए संक्षेपमें सारा हाल कह सुनाया। अन्तमें यह भी कहा कि,—अब मेरा जीवन आपहीके

हाथमें है ! यद्यपि मैंने आपके साथ भारी अन्याय किया है, तथापि मुझे विश्वास है कि आप मेरे हृद्गत भावोंको टटोलकर मुझे अपराधिनी न ठहरावेंगी ; क्योंकि इसमें मेरा दोष नहीं ! अब आप जैसा उचित समझें मुझे आज्ञा दें; मैं उसी आज्ञाको शिरपर चढ़ाऊँगी ।

रमा कुछ कहना ही चाहती थी कि ज्ञानदत्तने शोक-पूर्ण निःश्वास छोड़कर कहा,—मैं बड़ा ही अधम हूँ, मुझे क्षमा करो ! मैं अपने कुत्सित कर्मोंके लिए केवल तुम्हींसे नहीं, बल्कि समूचे संसारसे—जगन्नियन्ता जगदीश्वरसे क्षमा चाहता हूँ । यह कहते ही ज्ञानदत्तकी आँखोंसे आँसू छलछला पड़े; दृष्टि अधोमुखी हो गयी ! अभी वह बहुतसी बातें कहना चाहते थे, किन्तु गला रुँध आनेके कारण बड़े ही कष्टके साथ राजोसे सिर्फ इतना ही कह सके कि,—प्यारी राजो ! यदि क्षमा कर सको तो तुम भी मुझे क्षमा कर दो ! मेरी अक्षम्य नीचता या तो तुम भूल जाओ,—और या पैरोंसे ही ठुकरा दो ! मुझे दोनों बातें स्वीकार हैं । यदि तुम पैरोंसे ठुकराओगी, तो भी मुझे कोई ग्लानि नहीं । मैं उसीके योग्य भी हूँ !—नाथ ! तुम्हारी सृष्टिमें कितना अन्यान्य होता है ? क्या ऐसी देवीको मेरे-जैसे पामर और अधम मनुष्य—नहीं नहीं, मैं मनुष्य नहीं हूँ, प्रबल राक्षस हूँ—राक्षसके हाथमें सौंपना ही तुम्हें अच्छा लगता है ? इस वैषम्यका क्या रहस्य है स्वामिन् !

इस प्रकार बात-ही-बातमें रमाको सारा रहस्य मालूम हो गया ।

उसने स्वामीको सान्त्वना देते हुए कहा,—अधीर होनेकी कोई आवश्यकता नहीं स्वामिन् ! बीती बातोंपर शोक करना व्यर्थ है। "गतासून गतासूंश्च नानु शोचन्ति पंडिताः" क्या आप भगवान श्रीकृष्णके इस वाक्यको भूल गये ?

ज्ञानदत्त—ओफ् ! तुम्हारी-जैसी देवीके योग्य यह अधम नहीं था। अब मुझे क्या करना चाहिए, समझमें नहीं आ रहा है। इसलिए अब तुम्हीं बतलाओ कि मैं क्या करूँ ? इस अधमको तुम जो भी दंड दोगी, बिना मुखसे उफ़ निकाले यह पतित उसे शिरोधार्य करेगा। किन्तु तुम्हारे कुछ कहनेके पहले मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि दंड देनेमें किसी तरहको भी दयाका भाव मनमें न लाना। कठोर दंडमें ही मेरे हृदयकी शान्ति निहित है।

रमाने राजोकी कही हुई सारी बातोंको बड़े ध्यानसे सुना था। ज्ञानदत्तकी बात सुनकर वह गहरे विचारमें निमग्न हो गयी। सोचने लगी,—सचमुच ही इसमें राजोका कोई दोष नहीं। यदि उसमें किसी प्रकारका स्वार्थ होता, यदि वह किसी प्रकारके प्रलोभनमें पड़कर इस ओर झुकी होती, अथवा उसके दिलमें किसी प्रकारकी पाप-वासना उत्पन्न हुई होती तो अवश्य ही उसे अपराध लगाता; किन्तु जब स्वाभाविक ही एक क्षणमें दोनोंके शुद्ध हृदयका झुकाव एक दूसरेकी ओर हो गया, किसीने उस झुकावमें किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं की, तब इसमें किसीको दोषी ठहराना अन्याय है—सहृदयताके विरुद्ध है। किन्तु उनके लिए मुझे क्या कहना

चाहिए ? यदि निराशा-पूर्ण उत्तर दिया जायगा, तो अवश्य ही यह माया-त्याग कर बैठेगी, और यदि आजन्मके लिए सम्बन्ध कर लेनेको कहा जाय तो समाजकी मर्यादा भंग हो जाती है। तो फिर क्या करना उचित है ? माना कि वैवाहिक सम्बन्ध हुए बिना इनका इस प्रकारसे सम्मिलन हो जाना ठीक नहीं हुआ; पर राजा दुष्यन्तने भी तो ऐसा ही किया था ? कौन कह सकता है कि दुष्यन्त और शकुन्तलाने अनुचित किया था ? यदि नहीं तो फिर इस युगल मूर्तिके प्रणय-बन्धनको किस प्रकार दूषित ठहराया जा सकता है ? अच्छा तो क्या यह पवित्र है ?—पवित्र न होते हुए भी प्रारब्ध चक्रानुवर्ती कार्य क्षम्य ही कहा जायगा।—हाँ दुष्यन्तने तो मदान्ध होकर शकुन्तलाको अपनाया था और पीछे उसको दुत्कार भी दिया था; पर यहाँ वह बात कहाँ ? ओ ! अब समझ गयी। यहाँ यह सब सोचनेकी आवश्यकता नहीं ! शुद्ध प्रेमी और प्रेमिकाका तो संसार ही दूसरा होता है। ऐसोंके लिए सांसारिक नियम लागू नहीं हो सकते। इसीसे तो धर्मशास्त्र भी देश, काल और पात्रके अनुसार प्रत्येक बातका विचार करनेकी आज्ञा देता है। धर्मके किसी भी नियमको कभी भी सदाके लिए कोई निश्चित रूप नहीं दिया जा सकता। क्योंकि ऐसा करनेसे धर्मकी सजीवता ही लोप हो जाती है और उसके स्थानपर उसमें जड़ता आ जाती है। इसलिए भविष्यमें यदि कोई इस मामलेको सामने रखकर बहु-विवाहका समर्थन करेगा, जातीय भावोंको उच्छृंखलता-पूर्वक

प्रणय

मिटानेकी चेष्टा करेगा अथवा और किसी तरहका अनुचित लाभ उठावेगा या लाभ उठानेका प्रयत्न करेगा, तो वह उसकी कृतघ्नता और अदूरदर्शिता होगी—रानीको ऐसा कदापि न होना पड़ेगा,—वह सदा निष्पाप है और रहेगी।

इस प्रकार बड़ी देरतक उधेड़-बुन करनेके बाद गम्भीर और शान्त मुद्रा धारण करके रमा बोली,—एक ही देवताके बहुतसे उपासक हुआ करते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी देवतापर केवल अपना अधिकार रखनेकी चेष्टा करे तो उसकी धृष्टता है। मेरी ओरसे तुम्हें कोई रुकावट नहीं है बहन। जिस प्रकार मैं पूजा करूँगी, उसी प्रकार तुम भी करना। अब मुझे ऐहिक सुखकी तनिक भी इच्छा नहीं। मैं तुम्हारे इस पवित्र भाव और स्पष्ट भाषणसे अत्यन्त प्रसन्न हुई। ईश्वर करे तुम्हारे विचार सदा इसी प्रकार समुन्नत बने रहें। तुम सांसारिक सुखोपभोग करती हुई अपनी पारमार्थिक उन्नति करना, मैं तुम्हारे सुखको देखकर आनन्द मनाती हुई स्वामीकी और देशकी सेवा करके जीवन-यापन करूँगी। मैं बहुत सोच-विचारके बाद इसी परिणामपर पहुँची हूँ कि तुम्हारे होनहार और त्यागी जीवनको किसी प्रकार भी उस वस्तुसे वंचित करना उचित नहीं है, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व परित्याग कर चुका है।

रानीने ऐसे निर्णयकी आशा नहीं की थी। वहाँसे जाते समय उसके हृदयमें कितनी व्यथा थी, कहना कठिन है। उसी

व्यथासे अचेत होकर आज उसने इतने बड़े साहसका काम किया। नहीं तो वह ज्ञानदत्तके वियोगमें मर जाती, उन्मादिनी बनकर चारों ओर भटकती फिरती, और भी न-जानें क्या-क्या करती, पर दूसरेके घर आकर एक अपरिचिताके सामने, उसके सामने, जिसके सामने वह अपराधिनी है—जिसकी वह सौत है—अपना कच्चा चिट्ठा कभी मरते दमतक न कहती—न कहती। किन्तु रमाके कथनसे वह गद्गद् हो उठी। कृतज्ञताके भारसे उसका मस्तक झुक गया। संकोचके कारण कुछ भी न बोल सकी। उसने मूक-भाषामें अपने हृदयका भाव व्यक्त कर दिया। यदि वह बोल सकती, तब भी शायद यही कहती कि,—धन्य हो देवि, धन्य हो! तुम्हारा हृदय इतना महान है, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। तुम्हारे इस उपकारको मैं जन्मभर न भूलूँगी। गौरी बाबूके मुखसे जो कुछ सुननेमें आया था, कहीं उससे भी बढ़कर आज मैंने तुम्हें अपनी आँखों देखा।

राजोका उक्त हार्दिक भाव रमासे छिपा न रहा। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि, इस समय लज्जा और संकोचके कारण यह एक शब्द भी न बोल सकेगी। अतः कहा,—प्यारी बहन, रात अधिक हो गयी है, जाओ सो रहो।

रमाकी आज्ञाको वह कदापि न टालती, पर बातोंका सिलसिला ही न टूटा। धीरे-धीरे सवेरा हो गया। तब वह उठी, और अपने मकानमें चली गयी। अपने कमरेमें पहुँचकर फिर वह गहरी

चिन्तामें पड़ गयी। उसी चिन्ता मग्न हृदयसे उसने बड़े यत्नसे एक पत्र लिखा और साहस करके अपने पिताके पास भेज दिया। यह काम कर चुकनेपर उसकी चिन्ताका बोझ बहुत-कुछ हलका हो गया।

राजा साहिब अपने कमरेमें बैठे वह पत्र पढ़ रहे थे, जो कि इस प्रकार था:—

"श्रद्धेय राजा साहिब,

सम्भवतः आपको यह पढ़कर आश्चर्य और क्रोध होगा कि मेरा और राजोका विवाह हो गया। यह काम मेरी इच्छासे हुआ या राजोकी, अथवा दोनोंकी सम्मिलित इच्छासे, यह कहना कठिन है। मेरे खयालमें तो यह काम प्रारब्धानुसार दैवेच्छासे ही हुआ है।" अब आप यदि उचित समझें तो हमलोगोंके इस सम्बन्धको समाजके सामने स्पष्ट कर दें। आशा है, मेरी यह ढिठाई क्षमाकी दृष्टिसे देखी जायगी।

विश्वासपात्री—

आनन्द।"

राजा साहिब इस पत्रको पढ़कर अवाक् हो गये। उनकी कुछ समझमें ही नहीं आता था कि यह सब क्या हो गया है। बहुत माथापच्ची करनेपर भी कुछ तय न हुआ। इतनेमें राजोका पत्र आ पहुँचा। बड़ी उत्सुकतासे उन्होंने इस पत्रको खोला। उसमें लिखा था:—

प्रणय

"पूज्यवर बाबूजी,

इधर कुछ दिनोंसे मैं अपने हृदयकी एक बात आपसे कहनेके लिए विशेष उत्सुक थी, पर कहनेका साहस ही न होता था। अब देखती हूँ बिना प्रकट किये काम नहीं चलता; अतः इस पत्र-द्वारा वह बात प्रकट करनेकी धृष्टता करना ही मैंने उचित और अपना धर्म समझा। मैंने अपना विवाह पं॰ ज्ञानदत्तजीके साथ करना तयकिया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप-सरीखे उदार और दूर-दर्शी पिता मेरी इन पंक्तियोंमें किसी प्रकारके अनौचित्यका अनुभव न करेंगे। यदि आप मेरे इस कार्यको प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार करेंगे, तो इस चिन्तिताको शान्ति मिलेगी।

प्रार्थिनी पुत्री—

राजो।"

उक्त पत्रको पढ़कर राजा साहिब थोड़ी देरके लिए गम्भीर विचारमें निमग्न हो गये। उन्होंने राजोके इस कार्यको शास्त्र-विरुद्ध नहीं माना। वह मन-ही-मन यह सोचकर प्रसन्न हुए कि यदि आर्य-कन्याएँ हमारी राजोकी भाँति ही मिथ्या संकोच न करके अपने हृदयके भावको स्पष्ट प्रकट करने लग जायँ, तो आज ही समाजमें फैला हुआ पापाचार समूल नष्ट हो जाय। फिर क्या था, दूसरे दिन राजा-साहिबने अपनी इकलौती लड़कीको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ पं॰ ज्ञानदत्तके हाथोंमें समर्पण कर दिया। सब-लोगोंने राजा साहिबको बधाई दी। ज्ञानदत्तके विच्छिन्न परिवारका

प्रणय

सारा आनन्दित हुआ, मालिन्य जीवनभरके लिए दूर हो गया। जाति-गत प्रचलित नियमोंपर प्रणयकी विजय हुई।

अब पुत्रको देखनेके लिए ज्ञानदत्तका हृदय लालायित हो उठा। घर जानेकी तैयारी होने लगी। चलते-चलाते ज्ञानदत्त-लिखित पुस्तकके ऊपर उन्हें नारवेसे एक लाख रुपयेका 'नोबेल प्राइज' मिलनेका आनन्दप्रद शुभसमाचार भी मिल गया। यह पुस्तक पं० ज्ञानदत्तने नारवे भेजी थी।

इस प्रकार ज्ञानदत्त, रमा और राजकुमारी उपनाम राजोका मनोरथ सम्यक्-प्रकारसे सिद्ध हो गया। समाजके विचारवान पुरुषोंने नव-दम्पतिको आह्लादित हृदयसे आशीर्वाद दिया; 'देवी' रमाके उदार और महान हृदयका परिचय पाकर जनताने एक स्वरसे कहा,—'धन्य! धन्य!!'

समाप्त